नया मानव नया विश्व

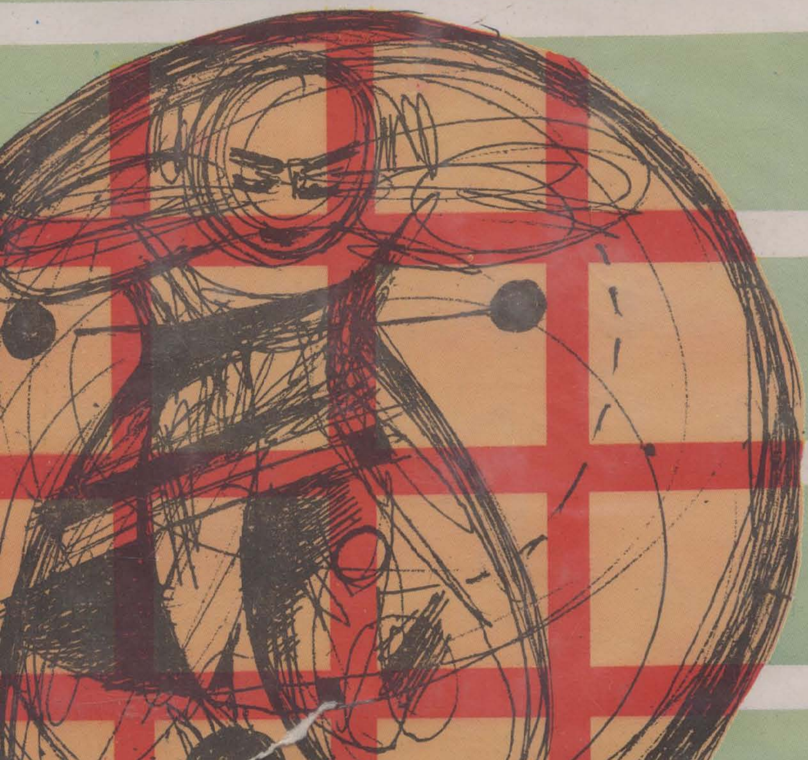

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नए मानव की आचार संहिता अहिंसा की आचार संहिता है। अहिंसा की आचार संहिता अणुव्रत की आचार संहिता है। अणुव्रत की आचार संहिता ही नए मानव की आचार संहिता हो सकती है। प्रेक्षा एक प्रयोग है मानव को उस आचार संहिता में ढालने का। जीवन-विज्ञान एक प्रक्रिया है सिद्धान्त और प्रयोग के समन्वय की। अणुव्रत, प्रेक्षा-ध्यान और जीवन-विज्ञान के द्वारा नए मानव का निर्माण संभव है, प्रस्तुत पुस्तक का प्रतिपाद्य यही है।

मानवता का भविष्य श्रम, अर्थ और संयम—इन तीनों के सामंजस्यपूर्ण विकास पर निर्भर है। श्रम और अर्थ जीवन के मौलिक पक्ष हैं। संयम जीवन का आध्यात्मिक पक्ष है। शिक्षा अथवा प्रशिक्षण यदि इन तीनों पर आधारित नहीं है तो जीवन की समरसता की कल्पना नहीं की जा सकती। जीवन-विज्ञान के प्रयोग जीवन की समरसता के प्रयोग हैं, मूल्यपरक शिक्षा और योगशिक्षा के समन्वय के प्रयोग हैं। इन प्रयोगों की पृष्ठभूमि जानने के लिए अपेक्षित है प्रस्तुत ग्रन्थ 'नया मानव : नया विश्व' का अध्ययन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नया मानव : नया विश्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नया मानव नया विश्व

आचार्य महाप्रज्ञ

संपादक
मुनि धनंजयकुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

© आदर्श साहित्य संघ, चूरू

श्री फतेहचैन भंसाली
ट्रस्टी—श्रीमती झमकूदेवी भंसाली मेमोरियल ट्रस्ट, सुजानगढ़—कलकत्ता
सी. आर. बी. कैपिटल मार्केट्स लि., ३१ मर्जबन रोड, बम्बई के सौजन्य से

प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक : आदर्श साहित्य संघ, चुरू (राजस्थान)
मूल्य : चालीस रुपये, तीसरा संस्करण १९९९ मुद्रक : पवन प्रिंटर्स दिल्ली-३२

NAYA MANAV : NAYA WISHAV Edited byMuni Dhananjay Kumar
Rs. 40.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वचन

यह एक सचाई है कि आज का मानव पुराना पड़ गया, जीर्ण-शीर्ण हो गया। पुराने और जीर्ण-शीर्ण मकान की मरम्मत की जाती है अन्यथा वह किसी भी समय खतरा पैदा कर सकता है। पुराना मानव भी कभी-कभी खतरनाक बन जाता है। इसलिए नए मानव की कल्पना हृदयग्राही और आकर्षक है। मानव नया होगा तो विश्व अपने आप नया हो जाएगा। 'नया मानव' सुधार या रूपान्तरण से नहीं बनेगा, उसका नए सिरे से निर्माण करना होगा। इस चिन्तन ने लोगों में जिज्ञासा जगाई कि वह नया मानव कैसा होगा ?

मैंने आचार्य महाप्रज्ञ को नए मानव का मॉडल प्रस्तुत करने के लिए निर्देश दिया। निर्देश मिले और उसकी क्रियान्विति न हो, यह 'महाप्रज्ञ' के स्वभाव के अनुकूल नहीं है। वे मुझे बार-बार कहते हैं—**'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि'**—आप मुझे जिस काम में नियुक्त करते हैं, मैं वही करता हूं। नियोक्ता और प्रयोक्ता का यह एक दुर्लभ योग है। तीन सप्ताह की प्रवचन माला उसी नियोजन की निष्पत्ति है। 'नया मानव : नया विश्व' पुस्तक को एक मॉडल का रूप माना जा सकता है।

नए मानव की आचार संहिता अहिंसा की आचार संहिता है। अहिंसा की आचार संहिता अणुव्रत की आचार संहिता है। अणुव्रत की आचार संहिता ही नए मानव की आचार संहिता हो सकती है। प्रेक्षा एक प्रयोग है मानव को उस आचार संहिता में ढालने का। जीवन विज्ञान एक प्रक्रिया है सिद्धान्त और प्रयोग के समन्वय की। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवनविज्ञान के द्वारा नए मानव का निर्माण संभव है, प्रस्तुत पुस्तक का प्रतिपाद्य यही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ लोग आचार्य महाप्रज्ञ को दूसरे विवेकानन्द के रूप में देखते हैं। मेरे मन में विवेकानन्द के प्रति बहुत ऊंचे भाव हैं। फिर भी मैं चाहता हूं कि महाप्रज्ञ को महाप्रज्ञ ही रहने दें। महाप्रज्ञ शब्द अपने आप में इतना गरिमापूर्ण है कि इसके लिए किसी दूसरी उपमा की अपेक्षा नहीं है। महाप्रज्ञ ने अपनी प्रज्ञा से नए मानव और नए विश्व का जो मॉडल प्रस्तुत किया है, उसके अनुरूप मानव का निर्माण करने की दिशाएं खुलें, यही इस प्रयोग या पुस्तक की मूल्यवत्ता है।

गणाधिपति तुलसी

अध्यात्म-साधना-केन्द्र
छतरपुर रोड, मेहरोली
नयी दिल्ली-११००३०
१ अगस्त १९९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुति

पहले क्षण कल्पना और दूसरे क्षण उसका स्पष्ट आकार, ऐसा उसी व्यक्ति के लिए संभव है, जिसने तप तपा हो। महान् तपस्वी गुरुदेव श्री तुलसी ने एक सपना देखा—तीन सप्ताह एक प्रवचन माला चले। स्वप्न का संप्रेषण हुआ, योजना बन गई, क्रियान्विति हो गई।

प्रवचन के आधार पर स्तंभ तीन हैं—

- अणुव्रत
- प्रेक्षाध्यान
- जीवनविज्ञान।

अणुव्रत अहिंसा की आचार संहिता है, सम्प्रदायातीत धर्म अथवा मानव धर्म की आचार संहिता है। हिंसा के अनेक कारण हैं, अनेक परिस्थितियां हैं और अनेक अवधारणाएं हैं। जातीय उन्माद के पीछे अहंकार के अभिनिवेश की अवधारणा है और साम्प्रदायिक अभिनिवेश के पीछे अपने मत को सर्वश्रेष्ठ मानने की अवधारणा है। इस अवधारणा ने व्यक्ति को हिंसा की भूमि पर खड़ा कर रखा है। आक्रामक हिंसा से समाज भयभीत है और अनावश्यक हिंसा से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। मादक वस्तुओं का सेवन अपराध चेतना को मुक्त निमंत्रण है। क्या कोई भी समाज प्रामाणिकता को तिलांजलि देकर स्वस्थ रह सकता है ? निस्संदेह हिंसा बढ़ रही है, आतंक और भय बढ़ रहा है, आक्रामक मनोवृत्ति अपने पांव फैला रही है। अणुव्रत हिंसा से अहिंसा की ओर प्रस्थान करने का एक पवित्र संकल्प है। व्यक्ति और समाज को बदलने का पहला सूत्र है संकल्प। संकल्प शक्ति का विकास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते ही आंतरिक परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

व्यक्ति और समाज को बदलना सरल काम नहीं है। व्यवस्था को बदलना कठिन है किन्तु व्यक्ति और समाज को बदलना अति कठिन है। इस कठिनाई ने प्रेक्षाध्यान का नया आयाम खोला। हमने देखा—लम्बे समय तक व्यवस्था और दण्डशक्ति की छत्रछाया में पलने वाला व्यक्ति और समाज बाहर से सुन्दर लगता रहा किन्तु उसका भीतरी रूप सुन्दर नहीं बन सका। आदमी भीतर में सुन्दर बने। उसके लिए आवश्यक है हृदय-परिवर्तन, विज्ञान की भाषा में रासायनिक परिवर्तन।

प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोग अन्तःसौन्दर्य के प्रयोग हैं। आत्मविश्वास, सहिष्णुता, धैर्य, संवेग-संतुलन के लिए प्रेक्षाध्यान का अभ्यास बहुत मूल्यवान् है। यदि हमने एकाग्रता का मूल्यांकन किया होता तो समाज का धरातल बहुत ऊंचा होता। चंचलता और विक्षेप ने दुःख और दौर्मनस्य की परंपरा को आगे बढ़ाया है। समाधि और मानसिक शान्ति का मूल्य आंकने वाला स्वयं को ही नहीं बदलता, बदलने के पूरे चक्र को गति देता है।

बदलने की प्रक्रिया कब से शुरू होनी चाहिए, यह प्रश्न जितना गंभीर है, उतना ही महत्त्वपूर्ण है। यदि विद्यार्थी को बदलने का गुर मिल जाए, प्रशस्त संस्कार के निर्माण और अप्रशस्त संस्कार के उन्मूलन का सूत्र हाथ लग जाए तो वह हर क्षेत्र में सफलता का जीवन जी सकता है। इस संकल्पना के साथ जीवन-विज्ञान का प्रयोग शुरू हुआ। **विद्या ददाति विनयम्** तथा **'सा विद्या या विमुक्तये'** जैसे घोष इतिहास की वस्तु बनते जा रहे हैं। उन्हें वर्तमान के पीठ पर आसीन करना, यह युग मांग रहा है। विनम्रता और सहिष्णुता, धैर्य और सौहार्द, करुणा और संवेदनशीलता के अभाव में क्या कोई भी व्यक्ति और समाज तनावमुक्ति का जीवन जी सकता है ?

आर्थिक विकास और उपभोक्ता सामग्री की प्रचुरता, हिंसा और अपराध में कमी नहीं ला सकते, उन्हें बढ़ाने में योगभूत बन सकते हैं। मानवता का भविष्य श्रम, अर्थ और संयम—इन तीनों के सामंजस्यपूर्ण विकास पर निर्भर है। श्रम और अर्थ जीवन के मौलिक पक्ष हैं। संयम जीवन का आध्यात्मिक पक्ष है। शिक्षा अथवा प्रशिक्षण यदि इन तीनों पर आधारित नहीं है तो जीवन की समरसता की कल्पना नहीं की जा सकती। जीवन विज्ञान के प्रयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन की समरसता के प्रयोग हैं, मूल्यपरक शिक्षा और योगशिक्षा के समन्वय का प्रयोग है। इन प्रयोगों की पृष्ठभूमि जानने के लिए अपेक्षित है, प्रस्तुत ग्रन्थ—**नया मानव : नया विश्व** का अध्ययन।

पूज्य गुरुदेव की पावन सन्निधि में जो कुछ प्रस्फुट हुआ, वह एक नया उन्मेष बन सकेगा। प्रस्तुत ग्रंथ के संपादन में मुनि धनंजय कुमार ने निष्ठापूर्ण श्रम किया है।

आचार्य महाप्रज्ञ

अध्यात्म-साधना-केन्द्र
छतरपुर रोड मेहरोली
नयी दिल्ली ११००३०
१ अगस्त १९९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा संस्करण

नया और पुराना—सापेक्ष शब्द है। इसके साथ अच्छा और बुरा होने की व्याप्ति नहीं है। पुराना अच्छा हो सकता है, नया बुरा। नया अच्छा हो सकता है, पुराना बुरा। इसलिए नए पुराने की चर्चा अपेक्षित नहीं है। अपेक्षा यह है कि वर्तमान मानव मानवीय मूल्यों के प्रति बहुत उदासीन हो रहा है, उससे मानव की गरिमा कम हो रही है, उसे बदलने की जरूरत है। उस नए मानव के जन्म की जरूरत है, जो मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित हो। प्रस्तुत पुस्तक का यह दृष्टिकोण पाठक को आकृष्ट कर रहा है।

जैन विश्व भारती **आचार्य महाप्रज्ञ**
लाडनूं
२५ दिसंबर १९९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादकीय

- धरती के आंचल पर
उतरती है भास्वर
सूरज की पहली किरण
विकसित प्रांगण
अंगड़ाई लेकर उठता हुआ मानव
संजोता है आशा, आशंका के भाव
आज क्या होगा ?
आज कैसा होगा ?
क्या कल आएगा ?
आज सुरक्षित बीत जाएगा ?
समाधि और शान्ति के साथ
धृति और क्षान्ति के साथ।

- प्रतिदिन यह चिन्तन
करता है मानव-मन
सुनहले भविष्य की कल्पना
न रह जाए सपना
समस्याओं का गहन अरण्य
न शरण है, न शरण्य
प्रवल है भय, दुश्चिन्ता, असुरक्षा
खतरे में है अपनी ही रक्षा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

● उभरता है यह प्रश्न
क्या पूरा होगा शान्ति का स्वप्न ?
छटेंगे भय के बादल ?
सूखेगा दुश्चिन्ता का दलदल ?
जीवन धारा का निर्मल
बहेगा स्रोत कल-कल ?

● महाप्रज्ञ देते हैं समाधान
जिसका स्रोत है गहन संधान—
नए मनुष्य की रचना
नए विश्व की संरचना
जिसकी वैयक्तिक अभिधा है
मानव और विश्व
सामुदायिक अभिधा है
विश्व मानव।
जो न केवल आध्यात्मिक है,
न केवल वैज्ञानिक
किन्तु है आध्यात्मिक वैज्ञानिक
जिसकी संरचना के हैं तीन प्रस्थान
अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवनविज्ञान।

● पूज्य गुरुदेव का अनुग्रह
महाप्रज्ञ का अभिग्रह
इक्कीस दिवसीय प्रवचन माला
नए मानव की आधारशिला
जिस पर खड़ा हो सकता है
मानवता का भव्य प्रासाद
एक नया आशावाद
समाज और विश्व के लिए
व्यक्ति और समष्टि के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो बन सकता है त्राण
गति, प्रतिष्ठा और प्राण।

- इक्कीसवीं शताब्दी का मनुष्य
कैसा हो उसका भविष्य
प्रस्तुत पुस्तक 'नया मानव : नया विश्व'
एक प्रकल्प
एक संकल्प
एक अभिनव उपक्रम है
विजय के लिए अभिक्रम है।
'नया मानव : नया विश्व' पढ़ें,
अपना उज्जवल भविष्य गढ़ें।

मुनि धनंजयकुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

अणुव्रत १-५७

१. मानव और संबंध ३

२. पारिवारिक सामंजस्य १२

३. नए मनुष्य का जन्म २६

४. अहिंसा प्रशिक्षण : एक सार्वभौम आयाम ३६

५. कहां से आती है अपराध चेतना ? ४८

प्रेक्षाध्यान ५९-१६३

६. व्यक्तित्व का निर्माण ६१

७. तनाव-विसर्जन ७२

८. समय का प्रबंधन ८३

९. स्व-प्रबन्धन ९३

१०. शारीरिक स्वास्थ्य १०३

११. मानसिक स्वास्थ्य ११२

१२. भावात्मक स्वास्थ्य १२२

१३. कार्य-कौशल १३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. जीवन-दर्शन १४२
१५. प्रेक्षाध्यान के मूलस्रोत १५३

जीवन-विज्ञान १६५-२२४

१६. आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण १६७
१७. कार्यक्षेत्रीय कौशल १७५
१८. शिक्षा का नया आयाम १८४
१९. स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प १९५
२०. जीवन विज्ञान के प्रयोग २०५
२१. नया मानव : नया विश्व २१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुव्रत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानव और संबंध

अणुव्रत-अनुशास्ता ने मानव जाति के लिए जिस मानवधर्म का प्रतिपादन किया है, वह समाजव्यापी समस्याओं के लिए समाधान है। ऐसा समाधान, जो नई समस्या पैदा न करे। चिकित्सा के क्षेत्र में उस औषध का मूल्य है, जो रोग को मिटाए, नया रोग पैदा न करे। हिंसा आज अनिवार्य नहीं रही। एक समस्या बन गई है। उसके नाना रूप समाज को आतंकित और भयभीत कर रहे हैं। मानवीय संबंधों में बढ़ रही कटुता भी हिंसा की एक समस्या है।

इस सन्दर्भ में मानव और संबंध-इन दो शब्दों पर विमर्श करें। पहले मानव को समझना जरूरी है। मानव की व्याख्या सामाजशास्त्रियों, मानसशास्त्रियों, दार्शनिकों तथा चिन्तन की अनेक शाखाओं ने की है। मानव को समझने का प्रयत्न किया है। समाज शास्त्र के अनुसार मनुष्य मौलिक रूप में एक सामाजिक प्राणी है। मानसशास्त्रियों ने मुनष्य और उसकी गतिविधियों की व्याख्या अचेतन और उसकी मौलिक मनोवृत्तियों के आधार पर की है। दार्शनिकों ने कर्म के आधार पर मनुष्य की व्याख्या की है। अध्यात्म के आचार्यों ने चेतना के आधार पर उसे परिभाषित किया है। अरस्तू ने कहा--मनुष्य विवेकशील प्राणी है। वह विवेक अन्य किसी जीव में नहीं मिलता। मुझे लगता है कि कोई भी व्याख्या इनमें से गलत नहीं है तो कोई भी इनमें से पूर्णरूप से सही भी नहीं है। जहां एकांगी दृष्टिकोण होता है, वहां कोई भी एक मत सही नहीं होता और न सर्वथा त्रुटिपूर्ण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैयक्तिकता : सामुदायिकता

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, यह सत्य है, किन्तु वह केवल सामाजिक प्राणी नहीं है। जितना सामाजिक प्राणी है, उतना ही वैयक्तिक भी है। अस्तित्ववादी विचारक मनुष्य में सार्वभौम या सामान्य गुण पर नहीं, वैयक्तिक गुण की खोज पर बल दे रहे हैं। उनका मत है—मनुष्य में अपनी कुछ विशेषता है। वह वैयक्तिकता है। उसको गौण कर मनुष्य को कभी समझा नहीं जा सकता। उसका विकास समाज के संदर्भ में होता है। वह समाज में रहता है, समाज में जीता है। सामजशास्त्री कहते हैं—जैसे मछली पानी के बिना जी नहीं सकती, वैसे ही मनुष्य भी समाज़ के बिना जी नहीं सकता, अपना विकास नहीं कर सकता। दोनों कोण हमारे सामने हैं—अस्तित्वादी विचारकों की वैयक्तिकता और समाजशास्त्रियों की सामुदायिकता। दोनों को मिलाकर देखें, तभी पूर्ण बात होगी।

मानसशास्त्र का मत

मानसशास्त्रियों ने कहा—'मनुष्य अचेतन के द्वारा संचालित होता है। उसकी सारी प्रवृत्तियां, सारा व्यवहार अचेतन के द्वारा संचालित है। इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है किन्तु अचेतन के द्वारा ही संचालित है, यह अधूरा तथ्य है। इसके पीछे भी कुछ है और आगे भी कुछ है। हमारी जागृत चेतना का भी अपना कुछ अर्थ है, विशेषता है। अचेतन के पीछे भी एक आत्मा की प्रेरणा है, उसका भी अपना कुछ महत्त्व है। हम अचेतन को मध्यवर्ती बिन्दु मान सकते हैं। उसके पीछे आत्मा की प्रेरणा है और आगे चित्त की अभिव्यक्ति। इन दोनों के बीच में हमारी अचेतन चेतना काम करती है। मनुष्य के नाना रूप हैं। वह इतना विशाल है कि उसे कुछ शब्दों में परिभाषित करना बहुत कठिन है।

समाज और सम्बन्ध

अव हम संवंधों के स्वरूप पर विचार करें। समाज संवंधों की श्रृंखला है। सम्वन्ध का अर्थ है समाजाभिमुखता। जो समाजाभिमुखी है, वह सम्वन्धाभिमुखी है। बच्चे के जन्म के साथ ही सम्बन्धों की श्रृंखला प्रारंम्भ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो जाती है—माता-पिता, भाई-बहन आदि। जो संबंध से अतीत है, वह संन्यासी या मुमुक्षु कहलाता है। उत्तराध्ययन सूत्र में मुनि का पहला लक्षण बताया गया है योग से विप्रमुक्त होना। किन्तु सामाजिक धरातल पर बच्चा जन्म के साथ ही सम्बन्धों के घेरे में आ जाता है। सम्बन्ध द्वैत पर आधारित होता है।

संदर्भ दर्शन का

भारतीय दर्शन में तीन विचारधाराओं का विकास हुआ—

- अद्वैतवाद
- द्वैतवाद
- द्वैताद्वैतवाद।

आद्य शंकराचार्य तथा उनके गुरु गौड़पाल ने अद्वैतवाद को जन्म दिया। इस विचारधारा के अनुसार एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है। द्वैतवादी विचारध्रारा के समर्थक हैं बौद्ध, सांख्य और नैयायिक। इनके अनुसार चेतन और अचेतन—दोनों का अस्तित्व है। यदि केवल अद्वैत को ही स्वीकार करें तो हमारा व्यवहार कैसे चलेगा ? व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध कैसा होगा ? अद्वैत में न व्यवहार है, न भाषा है, न विचार है, न चिन्तन है, कुछ भी नहीं। ऐसी स्थिति में अद्वैतवादियों को माया की कल्पना करनी पड़ी। उन्होंने कहा—माया के द्वारा व्यवहार चल रहा है किन्तु वह वास्तविक नहीं है। इस प्रकार अचेतन की स्वीकृति ने माया को सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। यह आदर्शवादी दार्शनिकों का चिन्तन है।

यथार्थवादी दार्शनिकों के अनुसार माया की कल्पना करना आवश्यक है। चेतन और अचेतन—ये दोनों तत्त्व यथार्थ हैं। यहां भी एक समस्या है—यदि हम द्वैत को मानें तो भेदानुभूति प्रबल हो जाएगी। इसलिए आवश्यक है कि हम द्वैत के पीछे अद्वैत को तथा अद्वैत के पीछे द्वैत को स्वीकार करें।

अद्वैत और द्वैत का समन्वय

अनेकान्त दर्शन न तो द्वैतवादी है और न अद्वैतवादी। उसमें अद्वैत और द्वैत—दोनों का समन्वय है। हम केवल अद्वैत के आधार पर संबंधों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या नहीं कर सकते, केवल द्वैत के आधार पर भी संबंधों की व्याख्या नहीं कर सकते। संबंधों की व्याख्या करने के लिए अद्वैत और द्वैत—दोनों का सहारा लेना आवश्यक है। यदि द्वैत ही है तो फिर सम्बन्ध सदा कटुतापूर्ण रहेंगे, भेदानुभूति और दूरी बनी रहेगी। उसे कभी मिटाया नहीं जा सकेगा। द्वैत की पृष्ठभूमि में अद्वैत छिपा हुआ है। आत्मौपम्य, आत्मानुभूति प्रत्येक प्राणी के सुख-दुःख को समान देखना, एक तराजू में दोनों को तोलना—यह सारी अध्यात्म की परंपरा अद्वैत के आधार पर चलती है। केवल अद्वैत से काम नहीं चलता, द्वैत का सहारा लेना जरूरी है। अब दूसरा कोई है तो फिर द्वैत की व्याख्या करनी होगी और उसी के आधार पर मनुष्य को, उसकी प्रवृत्ति और व्यवहार को समझना होगा।

अहं और मम

अद्वैत और द्वैत—इन दोनों के आधार पर हम सम्बन्धों को सुधारने की चर्चा करें। सम्बन्ध बनने के कारण हैं मौलिक मनोवृत्तियां। हमारी दो मौलिक मनोवृत्तियां हैं—अहं और मम, मैं और मेरा। 'मैं'—यह स्वार्थ का प्रतीक है और 'मेरा' सम्बन्ध का प्रतीक। सारे सम्बन्ध इस मम की वृत्ति के आधार पर बनते हैं। मम का विस्तार होता है, उतना ही सम्बन्धों का विस्तार हो जाता है। यदि मम नहीं होता तो दुनिया में कोई संबंध ही नहीं होता। ममकार का विस्तार सम्बन्धों का विस्तार है। अगर एक ही वृत्ति होती और अहं नहीं होता तो सम्बन्धों की समस्या नहीं होती। आज जो सम्बन्धों की समस्या है, उसके पीछे अहं काम कर रहा है। जहां 'मैं' यह वृत्ति काम करती है, वहां व्यक्ति में स्वार्थ का विकास होता है, स्वार्थ की चेतना प्रबल बन जाती है। मम की अनेक कोटियां बन जाती हैं। यदि मेरा पुत्र है तो वह मेरे लाभ में भागीदार है यदि मेरा परिवार है तो वह भी हिस्सेदार है। किन्तु मेरा नौकर है तो वह मेरे धन का भागीदार नहीं है। सम्बन्धों की इस कोटि के पीछे अहं की वृत्ति काम कर रही है। जहां मम या अहं का विस्तार होता है, वहां ये समस्याएं समाप्त हो जाती हैं। किन्तु जहां अहं और मम एक संकुचित सीमा में रहते हैं, वहां सम्वन्ध कटु बन जाते हैं, समस्याएं उलझ जाती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा के हेतु

आज हिंसा और अपराध—ये दो बड़ी समस्याएं हैं। हिंसा के अनेक रूप हमारे सामने आते हैं। मनुष्य ज्यादा लेना चाहता है और दूसरे को कम देना चाहता है, यह हिंसा का एक बड़ा कारण है। इससे दूसरे में प्रतिक्रिया होती है और वह हिंसा या आतंक का रूप धारण कर लेती है। मनुष्य आजीविका में लगा है। अपनी आजीविका को वह उन्नत बनाना चाहता है और दूसरे की आजीविका का शोषण करना चाहता है। हिंसा का यह एक बड़ा कारण है। चोरी, डकैती, अपहरण, हत्या जैसे अपराध क्यों होते हैं ? हम मूल कारण पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि एक मनुष्य की प्रवृत्ति दूसरे मनुष्य की हिंसा की प्रवृति को बढ़ा रही है, जागृत कर रही है। लोभ वैयक्तिक विशेषता है, स्वार्थ वैयक्तिक विशेषता है। लोभ और स्वार्थ क्रूरता पैदा करते हैं। एक की क्रूरता दूसरे में संक्रांत होती है, उसको भी क्रूर बना देती है। यदि लोभ न होता, अपनी आवश्यकता के अनुसार आदमी अपना काम चलाता तो इतनी प्रतिक्रिया नहीं होती। हिंसा भी इतनी नहीं बढती, आतंक भी नहीं बढ़ता और अपहरण की घटनाएं भी न होतीं। किन्तु मनुष्य ने अपनी दो वृत्तियों को ठीक से नहीं समझा, अहंकार और ममकार का सही-सही अंकन नहीं किया। इन दो वृत्तियों को इतना बढ़ाया कि शेष वृत्तियां गौण हो गईं।

पदार्थ और शांति एक नहीं है

हम इसकी समीक्षा करें। यदि कोई शान्ति का जीवन जीना चाहता है और सुख से समाज में रहना चाहता है तो समीक्षा आवश्यक है। समाज इसीलिए बना कि उसमें मनुष्य शान्ति के साथ निश्चिंत होकर जी सके, आश्वस्त होकर जी सके। शान्ति नहीं है तो सुख कहां से होगा ? सुविधा के साधनों का अंबार लगाया जा सकता है, किन्तु सुख और शान्ति का नहीं। हम इस सचाई को कभी न भूलें कि पदार्थ और शान्ति एक नहीं है। पदार्थ और सुख एक नहीं है। इस सचाई को भी याद रखें—समस्या और दुःख एक नहीं हैं। समस्या और मानसिक समाधान एक नहीं है। समस्या भौतिक जगत् के स्तर पर होती है या मन के स्तर पर होती है। किन्तु चेतना उससे ऊपर है, जो समाधान में रहती है, वहां कोई समस्या नहीं है। हम समस्या को पकड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेते हैं, समाधान नहीं होता। अगर मानवीय सम्बन्धों में सुधार करना है, तो अहं और मम का परिष्कार करें, स्वार्थ की चेतना प्रबल न बनें, दूसरे की स्वतंत्रता का अपहरण न हो। मेरा है, इसका अर्थ यह नहीं है कि उसका कोई अस्तित्व नहीं है, कोई स्वतंत्रता नहीं है। प्रत्येक प्राणी को स्वतंत्रतापूर्वक जीने का अधिकर है। सम्बन्ध मात्र इतना है कि उपयोगिता रहे।

जीवन की सापेक्षता

हमारा जीवन सापेक्ष है। अकेले का जीवन नहीं चलता। हर आदमी को एक दूसरे की अपेक्षा है। एक आदमी जीता है तो हजारों आदमियों के श्रम की बूंदें उसके साथ जुड़ती हैं। जहां बीज बोया जाता है, वहां से लेकर रसोई में पकने तक न जाने कितने-कितने लोगों का श्रम उसके साथ जुड़ता है तब कोई रोटी खाता है। इतना सापेक्ष है मनुष्य और फिर वह सम्बन्धों की समीक्षा न करे, उन्हें मधुर न बनाए, इससे बड़ी कोई नासमझी क्या हो सकती है ? जीवन की सापेक्षता से जुड़े कितने लोग हैं, उन सबकी समस्याओं पर विचार करना, इसका अर्थ है सम्बन्धों की समस्या पर विचार करना, सबके प्रति संवेदनशीलता और करुणा का दृष्टिकोण अपनाना, सम्बन्धों को मधुर बनाना, उनका परिष्कार करना।

संकल्पजा सृष्टि

बड़ा जटिल प्रशन है कि सम्बन्ध कैसे सुधरें ? उनमें मधुरता कैसे आए ? जटिल इसलिए है कि अहं जो पीछे बैठा वह जब तक सीमित नहीं होता, तब तक स्वार्थ इतना प्रबल होगा कि वह सम्बन्धों के जल को मीठा नहीं बना पाएगा। वह समुद्र का खारा पानी ही रहेगा, चीनी घोल कर भी उसमें मिठास पैदा नहीं की जा सकती।

अहं को सीमित करने के लिए अध्यात्म के आचार्यों ने कुछ उपाय खोजे हैं। अणुव्रत ने इस दिशा में एक दर्शन दिया है। सबसे पहले संकल्प करें। व्रत हमारी बहुत बड़ी शक्ति है। जब संकल्प की चेतना जागती है, परिवर्तन का क्रम शुरू होता है। हमारी सृष्टि संकल्पजा सृष्टि है। जैसा संकल्प करते हैं, वैसे ही सृष्टि बन जाती है। संकल्पजापूर्वक किसी की हिंसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं करूंगा, अनावश्यक हिंसा नहीं करूंगा। यह एक बहुत बड़ा संकल्प है। जीवन-यात्रा को चलाने के लिए थोड़ी-बहुत हिंसा अनिवार्य हो सकती है किन्तु यदि हिंसा करने का संकल्प टूट जाए और अहिंसा का संकल्प जाग जाए तो संबंधों की मधुरता का एक मजबूत आधार बन जाता है।

सूत्र आत्मतुला का

चेतना को जागृत करने के लिए महावीर का सूत्र है—आयतुले पयासु—सब जीवों को अपनी तुला से तोलो। व्यास का सूत्र है—**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत्**। जो काम अपने लिए प्रतिकूल है, वह हम दूसरों के लिए न करें। इन सूत्रों का प्रायोगिक स्तर पर अभ्यास करने पर करुणा की चेतना जागती है। कष्ट यदि हमें इष्ट नहीं है तो सामने वाले को भी इष्ट नहीं हैं। मैं दूसरे की रोटी छीनता हूं। यदि उसी प्रकार वह मेरी रोटी को छीने तो कैसे लगेगा ? तराजू के दोनों पलड़ों पर बैठकर चिन्तन करें तो वृत्ति का काफी परिष्कार होता है, अहं सीमित होता है। यदि मैं अकेला होता तो मेरा अहं विस्तृत बन जाता और सारे संसार पर आधिपत्य जमाने का अधिकार मिल जाता। किन्तु अहं की एक सीमा है—मैं हूं और मेरे जैसा दूसरा भी है—जब इस चिन्तन पर जाएंगे तो अपने आप अहं एक सीमा में रहेगा।

प्रश्न है परिष्कार का

करुणा और संवेदनशीलता की चेतना को जगाने के लिए करुणा की अनुप्रेक्षा का उपयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है। परिवर्तन के लिए अभ्यास जरूरी है। यह हमारी वैयक्तिकता है, आंतरिक परिवर्तन है। हम उसे गौण न करें, केवल सामाजिक और परिस्थितिवादी न बनें। हम परिष्कार के लिए समाजीकरण का बहुत उपयोग नहीं कर सकते। जहां व्यवस्था का प्रश्न है, वहां समाजीकरण का उपयोग होता है किन्तु जहां परिष्कार का प्रश्न है, वहां व्यक्तीकरण का सिद्धान्त ही कारगर होगा। अभ्यास एक लंबी प्रक्रिया है। एक दिन में कोई परिवर्तन नहीं होता। एक वृत्ति को बदलने और दूसरी वृत्ति का निर्माण करने में लम्बा समय लगता है। महर्षि पतंजलि ने ठीक कहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—संस्कार परिवर्तन का अभ्यास दीर्घकाल तक निरंतर करो और श्रद्धा के साथ करो। इस प्रक्रिया से हम क्रूरता की वृत्ति का विलय और करुणा की वृत्ति का पुनर्स्थापन कर सकते हैं।

संविभागिता का प्रयोग

शुमेकर ने एक पुस्तक लिखी है—स्माल इज ब्युटीफुल। थोड़ा भी सुन्दर होता है। वह दिशादर्शक बन सकता है। स्कॉटलैण्ड में वार्डेड कंपनी ने कुछ प्रयोग किए और उनका अच्छा परिणाम आया। अगर समाज में संविभागिता का प्रयोग होता है, उद्योग में हिस्सेदारी का प्रयोग होता है तो शायद क्रूरता में कमी आएगी। यदि एक आदमी बहुत कमाता है और सामान्य से आयोजन में भी करोड़ों रुपये फूंकता है तो क्या यह हिंसा को बढ़ावा देना नहीं है। ? क्या यह किसी प्रतिक्रिया को जन्म देना नहीं है ? यदि संविभागिता का सूत्र पकड़ में आए तो मानवीय संबंधों में सुधार की बात सोची जा सकती है।

कौन सुरक्षा देगा ?

हम व्यवस्था परिवर्तन, आध्यात्मिक प्रयोग, अभ्यास आदि पद्धतियों को अपनाएं । हिंसा के परिणामों को समझें। बढ़ती हिंसा और भविष्य में उसके भयावह परिणामों को देखें तो शायद कोई सचाई हाथ में आ सकती है, परिवर्तन की संभावना बन सकती है। हिंसा बढ़ती जा रही है। आदमी कहीं भी सुरक्षित नहीं है। अपने घर में भी सुरक्षित नहीं है, बाहर भी सुरक्षित नहीं है। आज एक ही व्यक्ति की सुरक्षा के लिए करोड़ों रुपये का खर्च हो रहा है। कभी यह न हो जाए कि हर व्यक्ति की सुरक्षा के लिए कमाण्डों की जरूरत पड़ जाए और पूरा देश ही सुरक्षा की मांग करने लग जाए। फिर कौन सुरक्षित होगा, कौन सुरक्षा देगा ? इस भयंकर चक्र की मात्र कल्पना की जा सकती है। गांव और नगर में जंगल का-सा माहौल न हो जाए, जंगली पशुओं की तरह एक दूसरे को मारने न लग जाएं। अगर इस बात पर ध्यान नहीं दिया, सन्बन्ध सुधार की बात गहराई से नहीं सोची गई तो हो सकता है कि ऐसा दुर्दिन भी आदमी को देखना पड़ जाए। ऐसा न हो, इससे पहले हम समझदारी से काम लें। अकेली ही इतना न भोंगे कि स्वयं का भोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हजारों व्यक्तियों की पीड़ा और मानसिक कुंठा का कारण बन जाए।

समाधान की दिशा

इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अणुव्रत ने जो सूत्र दिए हैं और प्रेक्षाध्यान ने जो प्रयोग दिए हैं, वे वर्तमान की समस्या को सुलझाने वाले हैं। इस वैज्ञानिक युग में जहां प्रतिदिन नए-नए आविष्कार हो रहे हैं, पदार्थों को बदला जा रहा है, वैसी स्थिति में एक चेतन मनुष्य, समझदार मनुष्य नहीं बदलता है, न बदलने की बात सोचता है तो इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा ? हम इस भूमिका में आश्चर्य की बात को गौण करें, यथार्थ की बात को ध्यान में रखकर कुछ ऐसे कदम उठाएं, जिससे मानवता का भविष्य उज्ज्वल बन सके और मानव मानवता के धरातल पर जी सके। सम्बन्ध सुधार के लिए न केवल व्यवस्था परिवर्तन जरूरी है और न केवल वृत्ति का परिष्कार। दोनों के परिवर्तन से ही समस्या का समुचित समाधान हो सकता है। यह सब चिंतन, संकल्प और प्रयोग के द्वारा संभव होगा, इसलिए अपेक्षित है—नई दिशा की ओर हमारे चरण गतिमान् बनें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारिवारिक सामंजस्य

एक समय था, जब यौगलिक युग था। एक युग्म–जोड़ा जन्म लेता और उसी के आधार पर सारी व्यवस्था चलती। समाज नहीं बना था। न कोई प्रबंधन था और न कोई नियोजन था। वर्तमान में समाज बन गया। आबादी बहुत बढ़ गई, परिवार नियोजन के उपाय किए जा रहे हैं। उस समय प्रकृति का संतुलन था किन्तु आज वह नहीं है। अनेक देशों में ऐसी समस्या पैदा हो गई है–लड़के ज्यादा हो गए हैं, लड़कियां कम हो गई हैं, एक असंतुलन पैदा हो गया है। चीन में यह समस्या बढ़ती जा रही है। कहीं लड़का नहीं है, यह भी समस्या है। नियोजन की सारी समस्याएं आ रही हैं। उस समय प्रकृति का नियोजन ही महत्त्वपूर्ण था और वह लम्बे समय तक चलता रहा। समाज बना, परिवार बने, तो प्रबन्ध की स्थितियां बनीं। जब विस्तार होता है तो प्रबन्ध की अपेक्षा होती है। परिवार का विकास हुआ तो उसके पीछे प्रबन्ध की अपेक्षा महसूस हुई।

मनुष्य की तीन बड़ी अपेक्षाएं होती हैं–

- आश्वास,
- विश्वास
- विकास।

आश्वास

व्यक्ति आश्वासन चाहता है। बुढ़ापा आएगा, तब क्या होगा ? बीमारी आएगी, तब क्या होगा ? कोई कठिन परिस्थिति आएगी, तो क्या होगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौन शरण देगा, कौन त्राण देगा ? कौन सहयोग देगा ? वह आश्वासन चाहता है, इस बात का। इस आश्वासन के लिए परिवार नाम का एक छोटा संगठन पैदा हुआ।

विश्वास

दूसरी अपेक्षा है—विश्वास। वह कौन है, जिस पर भरोसा किया जा सके। कौन संकट के क्षण में हमारे काम आएगा। किन पर भरोसा किया जा सकता है, सारी संपदा की चाबियां सौंपी जा सकती हैं। सारे रहस्य जिन्हें बताए जा सकते हैं और जिन्हें जीवन-मरण का साथी माना जा सकता है, उनका चुनाव जरूरी है। परिवार-निर्माण के पीछे विश्वास एक बड़ा हेतु रहा है। परस्पर का विश्वास, इतना गहरा विश्वास कि जिसे कोई दूसरा आसानी से तोड़ न सके।

विकास

तीसरी अपेक्षा है विकास। मनुष्य विकास चाहता है। जहां है, वहां रहना नहीं चाहता, आगे बढ़ना चाहता है। विकास के लिए एक संगठन की जरूरत होती है। इसके लिए उसने परिवार को चुना। वहां विकास की संभावनाएं हैं।

जरूरी है सामूहिक मनोबल

विकास के लिए सामूहिक मनोबल बहुत जरूरी है। समाज मनोविज्ञान में सामूहिक मनोबल का बड़ा महत्त्व है। जेम्स ड्रेकर ने मनोबल के तीन घटक बतलाए हैं—

- आत्मनियंत्रण
- आत्मविश्वास (सेल्फकान्फिडेंस)
- अनुशासित क्रिया (डिसिप्लिन्ड एक्शन)

जहां ये नहीं होते हैं, वहां सामूहिक मनोबल नहीं होता और सामूहिक मनोबल के विना कोई भी संगठन चाहे वह छोटा हो या बड़ा, कभी चल नहीं सकता, विकास की गति आगे बढ़ नहीं सकती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्म नियंत्रण

सामूहिक मनोबल का पहला घटक है आत्मनियंत्रण। जो व्यक्ति अपने आप पर नियंत्रण करना नहीं जानता, अपनी वृत्तियों और संवेगों पर नियंत्रण करना नहीं जानता, वह संगठन में फिट नहीं बैठता। वह संगठन के लिए बाधक ही रहता है।

आत्मविश्वास

दूसरा घटक है आत्मविश्वास। जहां लोग हमेशा संदेह का जीवन जीते हैं, यह सोचते रहते हैं—पता नहीं क्या होगा, कैसे होगा, वहां न संगठन चलता है, न विकास की संभावना ही होती है। आत्मविश्वास इतना होना चाहिए—अमुक कार्य होगा और होगा।

जैन आगम का प्रसंग है। द्रौपदी का अपहरण किसी अन्य द्वीप में रहने वाले राजा पद्मनाभ ने कर लिया। पता लग गया। युद्ध शुरू हुआ। इधर पद्मनाभ की सेना, उधर पांडवों की सेना। पांडवों की सेना के साथ थे—वासुदेव कृष्ण। वासुदेव कृष्ण ने पांडवों से कहा—जाओ, पद्मनाभ से लड़ो। पांडव गए किन्तु संदेह के साथ। वे स्वयं में आत्मविश्वास नहीं जगा पाए। **'अम्हे वा पद्मनाभे वा राया'** हम जीतेंगे या पद्मनाभ जीतेगा—इस संशय और डांवाडोल स्थिति में रहे। आखिर पांडव हार गए। वासुदेव कृष्ण गए। उन्होंने जाते ही कहा—**अह्मे नो पद्मनाभे राया**—मैं जीतूंगा, पद्मनाभ नहीं जीतेगा। इस निश्चय के साथ युद्ध लड़ा। फल यह हुआ—पद्मनाभ हार गया और वासुदेव कृष्ण जीत गए।

आत्मविश्वास सफलता का एक बहुत बड़ा सूत्र है। जिसमें आत्मविश्वास नहीं होता, जो संशय और संदेह की स्थिति में झूलता रहता है, वह कभी सफल नहीं होता। सामूहिक मनोबल के लिए आवश्यक है आत्मविश्वास।

अनुशासन

तीसरा घटक है अनुशासन। सफल व्यक्ति की हर प्रवृत्ति अनुशासित होती है। मनचाही और ऊबड़-खाबड़ नहीं होती, उतार-चढ़ाव की नहीं होती। ऐसी स्थिति में सामूहिक मनोबल बढ़ता है। जहां सामूहिक मनोबल बढ़ता है, वहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगठन मजबूत बनता है, एकता की भावना दृढ़ होती है।

मनोबल : मानसिक पक्ष

सामूहिक मनोबल के दो पक्ष हैं—

- मानसिक पक्ष
- सामाजिक पक्ष

मनुष्य में एक अभिवृत्ति (एटीट्यूड) जागृत होती है। वह समूह के द्वारा जो स्वीकृत नियम हैं, उन नियमों को सहज स्वीकार कर लेता है। कोई ननु नच नहीं, तर्क नहीं। समूह के नियमों का स्वीकार और उन नियमों के आधार पर व्यवहार, सहजभाव से अपनी अभिवृत्ति के साथ चलता है। वह उसका कहीं अतिक्रमण नहीं करता। यह सामूहिक मनोबल का मानसिक पक्ष है।

मनोबल : सामाजिक पक्ष

सामाजिक पक्ष में सामाजिक भावना का विकास होता है। प्रबंधन के लिए बहुत आवश्यक है सामूहिक भावना का विकास। वैयक्तिक स्वार्थों को गौण करना और सामूहिक भावना को महत्त्व देना। चाणक्य का एक बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थं, ग्रामस्यार्थं कुलं त्येजत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थं, आत्मार्थं सकलं त्यजेत्।।

जहां कुल का प्रश्न है, वहां एक को छोड़ देना चाहिए। जहां गांव का प्रश्न है, वहां कुल को छोड़ देना चाहिए। जहां समाज या राष्ट्र का प्रश्न हो, वहां गांव को भी छोड़ देना चाहिए और जहां आत्मा का प्रश्न हो, वहां सबको छोड़ देना चाहिए।

अध्यात्म की भाषा है—जहां आत्मा का हित हो, वहां दूसरे हितों को त्याग देना चाहिए। प्रबन्धन का एक बड़ा सूत्र है—जहां बड़ा हित सामने आए, वहां छोटे हित को छोड़ देना चाहिए।

वर्तमान प्रबंधन के सूत्र

वर्तमान में मैनेजमेंट की पद्धति का बहुत विकास हुआ है। इसे आज वैज्ञानिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप मिल गया है किन्तु प्राचीनकाल में भी प्रबन्धन के महत्त्वपूर्ण सूत्रों को अपनाया गया था। वर्तमान प्रबंधन के सूत्र और प्राचीन प्रबंधन के सूत्र—इन दोनों पर विमर्श अपेक्षित है। वर्तमान प्रबंध के सूत्र हैं—समता, न्याय और करुणा। ये बिल्कुल अध्यात्म के सूत्र हैं और प्रबन्धन के भी महत्वपूर्ण सूत्र हैं। जहां भेदभाव है, वहां प्रबंधन सम्यक् नहीं चलेगा। जहां न्याय नहीं है, प्रबन्ध अच्छा नहीं होगा। जहां करुणा नहीं है, वहां प्रबंध कैसे होगा ? क्रूरता में कोई भी व्यवस्था चल नहीं सकती। जिस परिवार में न्याय नहीं है, समता और करुणा नहीं है, वह अच्छा नहीं हो सकता। उसकी व्यवस्था भी अच्छी नहीं हो सकती।

प्रबंधन के प्राचीन सूत्र

वर्तमान प्रबंधन के इन सूत्रों के साथ हम प्राचीन सूत्रों को जोड़ें। प्रबंधन के प्राचीन सूत्र हैं—बारह भावनाएं और उनके साथ जुड़ी हैं ये चार भावनाएं—

- मैत्री
- प्रमोद
- करुणा
- उपेक्षा

मैत्री

संगठन छोटा हो या बड़ा, सबसे पहली आवश्यकता है मैत्री की। व्यवहार के सन्दर्भ में कहा जाता है—मैत्री का तात्पर्य है परस्पर प्रीति। देना, लेना, गुप्त बात पूछना, बताना, खाना, खिलाना—ये प्रीति के छह लक्षण हैं—

ददाति प्रतिगृह्णाति, गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव, षड्विधं प्रीति लक्षणम्।।

जो इन छह लक्षणों से युक्त हो वह मित्र है। यह मैत्री का व्यावहारिक अर्थ है, किन्तु जिस मैत्री की चर्चा प्रबंधन के संदर्भ में की जा रही है, वह इस स्तर की नहीं है। उस मैत्री का अर्थ है—**परेषां हितचिन्तनम्**—दूसरों के हित की चिन्ता करना। परिवार का मुखिया और उसके सदस्य एक-दूसरे के हित की चिन्ता नहीं करते हैं तो परिवार कभी अच्छा नहीं हो सकता। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगठन कभी अच्छा चल नहीं सकता, जिसमे दूसरों के हित की चिन्ता नहीं होती। आज संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं। परिवार के विघटन का प्रमुख कारण यही है कि मैत्री का प्रयोग कम हो गया है। एक-दूसरे की हितचिन्ता कम हो गई है। जहां व्यक्ति अपने स्वार्थ को गौण कर दूसरे के हित की चिन्ता करता है, वहां संगठन सुदृढ़ होता है उसे कोई आंच नहीं आ सकती, उसे कोई तोड़ नहीं सकता।

यह खेत मेरा है

मराठा सेनापति पेशवा बाजीराव ने मालवा पर आक्रमण किया। मराठों का उस समय तेज इतना प्रचंड था कि विजय उनकी सेनाओं के आगे चलती थी। मराठों को मालवा पर विजय मिली। वापस आते समय मार्ग में खाद्यान्न की कमी हो गई। सेनापति ने अधिकारियों को ओदश दिया—जाओ, जहां से भी प्रचुर मात्रा में अन्न मिले, लेकर आओ। अधिकारी गए पर अन्न मिलता कहां से। खेत तो सारे जले पड़े थे। युद्ध में जन-हानि के साथ-साथ धन-हानि भी होती है। इसलिए युद्ध से बड़ा और कोई अभिशाप नहीं है। एक बार का युद्ध पचासों वर्ष तक की तबाही अपने साथ लाता है। काफी दूर तक खोज की गई, किन्तु अन्न नहीं मिला। सब कुछ युद्ध में ध्वस्त हो चुका था। अंततः वे खोजते-खोजते युद्ध की काली छाया से किसी तरह बचे एक स्थान पर पहुंचे वहां एक वृद्ध आदमी मिला। अधिकारी ने पूछा—यहां अनाज कहां मिलेगा ? उसने कहा—मैं बताता हूं, मेरे साथ आओ। उसके साथ चले, वृद्ध आगे, अधिकारी पीछे। कुछ ही दूरी पर फसल से लहलहाता हुआ खेत मिला। अधिकारियों ने प्रसन्नता से कहा—'अब हमें पर्याप्त अनाज मिल जाएगा।' बूढ़े ने कहा—'नही, यहां नहीं, अभी आगे चलो।' कुछ दूरी पर दूसरा खेत आया। फसलों की ओर इशारा करते हुए उस वृद्ध ने कहा—'यहां से ले लें।' अधिकारियों ने कहा—'इस खेत से ज्यादा तो उस खेत में अनाज था, जिसे हम पीछे छोड़ आए।' बूढ़े ने कहा—'आप ठीक कहते हैं, लेकिन वह खेत मेरा नहीं था, यह खेत मेरा है।' सब अवाक् रह गए। क्या इस तरह का भी कोई व्यक्ति हो सकता है ?

जो व्यक्ति अपने हित को गौण कर दूसरे के हित की बात सोचता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संरक्षण करता है, सुरक्षा देता है, वास्तव में वही संगठन का शिरोमणि होता है।

प्रमोद-भाव

प्रबन्धन का दूसरा सूत्र है प्रमोद भावना। वह संगठन मजबूत बनता है, जहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के गुणों को स्वीकार करता है, महत्त्व देता है। जहां छीना-झपटी होती है, एक-दूसरे को नीचा दिखाने की प्रतिस्पर्धा होती है, वहां मजबूत संगठन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कल्पना करें—एक परिवार में पांच भाई हैं, पांच बहुए हैं। वे एक-दूसरे को हीन बताने का प्रयत्न करेंगे, एक-दूसरे की निन्दा और चुगली करेंगे तो क्या होगा ? क्या ऐसा परिवार कभी अच्छा हो सकता है ?

करुणा

प्रबन्धन का तीसरा सूत्र है—करुणा की भावना। जो समस्या पैदा हो, उसका प्रतिकार करना। आज करुणा का अर्थ भी बहुत छोटा कर दिया गया है। करुणा का अर्थ यह नहीं है कि किसी व्यक्ति को प्यास लगी तो उसे पानी पिला दिया और करुणा हो गई। करुणा का अर्थ है—पीड़ा आए, समस्या आए तो उसका समाधान खोजना और क्रूरता की वृत्ति का विसर्जन करना।

उपेक्षा

प्रबंधन का चौथा सूत्र है—उपेक्षा। सब लोग समान नहीं होते। किसी संगठन में चाहे पांच आदमी हैं या दस, सब समान नहीं होते। उनमें विषमता रहती है। हमारी एक समस्या है और वह है संवेगों का तारतम्य। सबके संवेग समान नहीं होते। संवेग अलग-अलग प्रकार के होते हैं। मनोविज्ञान में अनेक मौलिक मनोवृत्तियां मानी गई हैं और उन वृत्तियों के कुछ उद्दीपक संवेग माने गए हैं। युयुत्सा की एक मनोवृत्ति है, उसका संवेग है क्रोध। पलायन की एक मनोवृत्ति है, उसका संवेग है भय। न मनोवृत्तियों का विकास सबका समान होता है और संवेग समान होते हैं। तारतम्य की स्थिति में उनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकीकरण बड़ा कठिन होता है। यह संवेगों का तारतम्य पारिवारिक विघटन का एक बड़ा कारण बनता है। एक व्यक्ति आदेश को तत्काल स्वीकार कर लेता है। दूसरा व्यक्ति हर आदेश पर तरह-तरह के तर्क करता है। इसका उपाय क्या हो ? इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया गया—यदि संगठन को बनाए रखना है तो कहीं-कहीं उपेक्षा करो। अमुक आदमी अनुकूल नहीं है, फिर भी जैसे-तैसे इसे बनाए रखना है, इसलिए उपेक्षा करो। उपेक्षा का ही दूसरा नाम है मध्यस्थभाव। मध्यस्थ रहो, तटस्थ रहो। यह तटस्थता सम्यक् प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

निर्भर है इच्छा पर

भगवान् महावीर से एक आचार्य ने निवेदन किया—मैं अमुक प्रदेश में विहार करना चाहता हूं। महावीर ने उसे समझाया किन्तु उसने महावीर की बात को स्वीकार नहीं किया। उसका आग्रह प्रबल बना रहा। महावीर ने देखा—यह आग्रही है। उन्हें हानि दिखाई दे रही थी पर निषेध का कोई उपाय भी नहीं था। महावीर मौन हो गए, उसके निवेदन की उपेक्षा कर दी। इस सन्दर्भ में यह श्लोक कितना मार्मिक है—

अर्हतोऽपि प्राज्यशक्तिस्पृशः किं, धर्मोद्योगं कारयेयुः प्रसह्य।
दद्युः शुद्धं किन्तु धर्मोपदेशं, यत्कुर्वाणाः दुस्तरं निस्तरन्ति।।

अर्हत् बहुत शक्तिशाली होते हैं, किन्तु क्या वे किसी को जबरदस्ती श्रेय का आचरण करवा सकते हैं। वे केवल प्रेरणा दे सकते हैं। अच्छा जीवन जीना मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। क्या कोई भी व्यक्ति किसी को बलपूर्वक अच्छा बना पाएगा। ऐसा होना संभव नहीं है। इसीलिए यथासमय, यथास्थिति उपेक्षा का प्रयोग करना आवश्यक होता है।

प्रबंधन के ये चार सूत्र—मैत्री, प्रमोद, करुणा और उपेक्षा प्राचीन हैं, किन्तु वर्तमान प्रबंधन में इनकी उपयोगिता असंदिग्ध है। यही कारण है, वर्तमान प्रबंधन में कुछ नए सूत्र जोड़े हैं तो कुछ प्राचीन सूत्र ही अपनाए हैं।

प्रबंधन का प्राणतत्त्व

प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र अणुव्रत ने प्रस्तुत किया। वह है—**संयमः**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खलु जीवनम्। संयम प्रबंधन का प्राणतत्त्व है। वर्तमान प्रबंधन में इस सूत्र की उपेक्षा की गई अथवा जितना अपनाना चाहिए, उतना नहीं अपनाया गया। संयम ही जीवन है—यह अणुव्रत का महत्त्वपूर्ण घोष है और एक प्राचीन विचार का नवीनीकरण है। वही संगठन चिरजीवी रहेगा, जिसमें संयम से अनुप्राणित व्यक्तित्व हैं। ऐसा संगठन ही प्रेरणा का स्रोत बन सकता है।

वाणी का संयम

संयम का एक घटक है वाणी का संयम। चाहे राजनीतिक संगठन हो, सामाजिक, पारिवारिक या धार्मिक संगठन, उसके मुखिया यदि वाणी का संयम नहीं रखते हैं तो संगठन बनेगा ही नहीं और बन भी जाएगा तो बिखर जाएगा, टूट जाएगा, टिक नहीं पाएगा। बहुत जागरूक रहना पड़ता है। कभी-कभी एक शब्द भी संगठन की चूलें हिला देता है। एक भी शब्द ऐसा नहीं निकलना चाहिए, जो संगठन की जड़ों को हिला दे। महावीर के पास लोग आए और गालियां बकीं, बुद्ध के सामने आए और गालियां बकीं, आचार्य भिक्षु को गालियां बकीं। गालियां ही नहीं बकीं, मुक्का भी जमा दिया। वे फिर भी मौन और शान्त रहे, कुछ भी नहीं बोले। वाणी का इतना संयम कि एक भी शब्द ऐसा न निकला, जिससे किसी को आंच आती, संगठन कमजोर बनता। एक ही शब्द पर बड़े-बड़े युद्ध हो गए हैं। इतिहास को देखें। महाराणा प्रताप और शक्तिसिंह आपस में लड़े। कोई राज्य के बंटवारे के लिए नहीं लड़े। दोनों ने एक साथ तीर छोड़ा। एक हिरण मारा गया। प्रताप ने कहा—यह मेरे बाण से मरा है और शक्तिसिंह ने कहा—यह मेरे बाण से मरा है। यह विवाद लड़ाई का केन्द्र बन गया। हिरण मैंने मारा या तुमने मारा, इस बात पर विवाद खड़ा हो गया। इस वाणी के विवाद से दोनों भाई एक-दूसरे के दुश्मन बन गए।

जीवन है संयम

अनेक बार एक प्रश्न आता है—रोटी जीवन हो सकती है, पानी जीवन हो सकता है, क्योंकि इनके बिना जीवन नहीं चलता। लेकिन संयम जीवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसे ? श्वास जीवन है, इसके बिना दो क्षण भी ज़ीवन नहीं चलता। किन्तु संयम जीवन कैसे हुआ ? मनुष्य इस सचाई को भुला देता है—रोटी जीवन है, किन्तु रोटी न खाना उससे भी बड़ा जीवन है। पानी जीवन है पर पानी न पीना उससे भी बड़ा जीवन है। श्वास जीवन है पर योग के आचार्यों ने बतलाया—श्वास का संयम करो, कुंभक करो, श्वास लम्बा लो, जीवन और बढ़ जाएगा। श्वास का संयम, आहार का संयम, हमारे जीवन को बढ़ाता है।

इच्छा का संयम

संयम का एक महत्त्वपूर्ण घटक है इच्छा का संयम। जो इच्छा आए, वह काम न करें। आदमी जा रहा था। कुछ दूर जाकर सड़क पर लेट गया। सामने से तांगा आया। तांगेवाला बोला—हट जाओ। सड़क पर क्यों लेटे हो ? उसने कहा—मेरी इच्छा है। तांगेवाले ने तांगा आगे बढ़ाया। लेटे हुए व्यक्ति ने घबरा कर कहा—अरे, क्या कर रहे हो ? तांगेवाला बोला—मेरी इच्छा है।

जो व्यक्ति समझदार होता है, वह इच्छाओं की काट-छांट करना जानता है। हर इच्छा को क्रियान्वित नहीं करता। बहुत सारी इच्छाएं पैदा होती रहती हैं। सबकी पूर्ति संभव नहीं होती। समझदार व्यक्ति, संगठन को चलाने वाला या संगठन में चलने वाला व्यक्ति कभी यह दुहाई नहीं देता—मेरी यह इच्छा हुई और मैंने यह काम कर लिया।

शरीर का संयम

शरीर का संयम भी बहुत जरूरी है। थोड़ा-सा आवेश आया और एक चांटा जड़ दिया। इस उत्तेजना की स्थिति में परिवार बिखर जाता है। हाथ का संयम बहुत जरूरी है। क्रोध जब तक भीतर रहे, तब तक स्वयं का नुकसान करता है। वह बाहर न आए, तब तक किसी अन्य का नुकसान नहीं करता। इसी को आगम की भाषा में कहा गया है—क्रोध का विफलीकरण और क्रोध का सफलीकरण। क्रोध को अपने तक सीमित रखें तो वह विफल बन गया। क्रोध के दो फल हैं—या तो गाली बकना या हाथ-पैर चला देना, मार देना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध को सफल न बनाना शरीर का संयम है। संयम को हम ठीक ढंग से समझें, यह प्रबंधन का प्राणसूत्र बन सकता है।

समता

प्रबंधन का एक सूत्र है समता। मैं यह नहीं मानता—किसी परिवार में बिल्कुल भेदभाव नहीं होता। भेदभाव थोड़ा-बहुत तो हो सकता है, कुछ मन में भी आ सकता है। किन्तु ऐसा भेदभाव न रहे, जो दूसरों को विषम लगे और निरंतर चलता रहे। समाज मनोविज्ञान में जहां सामूहिक मनोबल की चर्चा है, वहां यह बतलाया गया है—भेदभाव न्यून होना चाहिए।

संवेग संतुलन का अभ्यास

हम इससे भी आगे बढ़ें। प्रबन्धन का एक नया सूत्र जोड़ें और वह है संवेगों को संतुलित करने का अभ्यास। आज यह नहीं हो रहा है और यही सबसे ज्यादा आवश्यक है। संवेगों का तारतम्य है, यह मानकर यहीं रुक जाएं तो फिर समीकरण नहीं होगा। हम ऐसा प्रशिक्षण दें, जिससे संवेगों को संतुलित बनाया जा सके। प्रश्न है—यह कैसे हो सकता है ? इसके लिए पहले धारणा बनाएं—संवेगों को संतुलित किया जा सकता है। यह श्रद्धा नहीं है, हमने यह मान लिया—संवेग तो ऐसे ही रहेंगे, क्रोध, भय, वासना—इनमें बदलाव संभव नहीं है। इस स्थिति में संवेग को संतुलित करने के लिए कोई अवकाश ही नहीं है।

बदल सकता है भाग्य

जैन साधना पद्धति में एक महत्त्वपूर्ण स्वीकृति है—पुरुषार्थ के द्वारा भाग्य को बदला जा सकता है। मैं मानता हूं—वर्तमान युग के लिए यह सबसे बड़ा सूत्र है कि जन्म-कुंडली को बदला जा सकता है, हाथ की रेखाओं को बदला जा सकता है और ज्योतिष को भी पीछे छोड़ा जा सकता है, भविष्यवाणियों को निरस्त किया जा सकता है। यह धारणा हमारी विकसित हो जाए तो विकास का, परिवर्तन और प्रबंधन का एक नया आयाम हमारे सामने होगा। हम इस सचाई को स्वीकार करें—भविष्य को बदला जा सकता है, न जाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कितनी भविष्यवाणियों को बदला गया है।

पूज्य गुरुदेव राजलदेसर चातुर्मास कर रहे थे। ज्योतिष की एक भविष्यवाणी आई—राजलदेसर से विहार नहीं होगा। वहां से विहार हो गया तो फिर भविष्यवाणी की गई—सुजानगढ़ मर्यादा-महोत्सव नहीं कर सकेंगे। वह भी संपन्न हो गया। तीसरी भविष्यवाणी हुई—दिल्ली नहीं आ सकेंगे। दिल्ली भी सुखे-समाधे पहुँच गए।

इसका विश्लेषण करूं तो मुझे कहना चाहिए—भविष्यवाणी करने वाले भी बिल्कुल गलत नहीं थे। मैं ज्योतिष को थोड़ा जानता हूं, विश्वास भी करता हूं। भविष्यवाणी बिल्कुल झूठी नहीं थी, किन्तु झूठी कर दी गई। प्रबल पुरुषार्थ, प्रबल मनोबल और दृढ़ आत्मविश्वास ने उस भविष्यवाणी के किर्चे-किर्चे उड़ा दिए। अगर मनोबल नहीं होता, आत्मबल और प्रबल आत्मविश्वास नहीं होता तो यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो जाती। उनकी भविष्यवाणी सोलह आना सही निकलती और फिर वे गर्व के साथ कहते—देखो, हमने तो पहले ही कह दिया था। अब वे भविष्यवक्ता चुप हैं। अब कैसे बोलें ?

कारण क्या है ? हम दोनों पक्षों पर विचार करें। ज्योतिष को भी दोष न दें। किन्तु महावीर ने जो सिद्धान्त दिया, उस सिद्धान्त को ठीक समझें। हमारा प्रबल पुरुषार्थ है, आत्मविश्वास है, दृढ़ निश्चय है और साथ में संयम है तो इन सबको बदला जा सकता है, पीछे छोड़ा जा सकता है। हमारी यह धारणा बननी चाहिए—संवेगों के तारतम्य को बदला जा सकता है, उसे संतुलित किया जा सकता है।

सामंजस्य की अनुप्रेक्षा

इसके लिए अपेक्षित है अभ्यास और प्रयोग। अभ्यास करना होगा। क्या आप जानते हैं—इन तथाकथित भविष्यवाणियों को बदलने के लिए कितना प्रयोग और अभ्यास हुआ है। घण्टों-घण्टों कायोत्सर्ग का प्रयोग हुआ है और कायोत्सर्ग में अनुप्रेक्षा के प्रयोग हुए हैं, मनोबल के प्रयोग हुए हैं। बिना अभ्यास के कोई बदल नहीं सकता। प्रेक्षाध्यान में एक अनुप्रेक्षा है सामंजस्य की अनुप्रेक्षा, संवेगों को संतुलित करने की अनुप्रेक्षा, समन्वय की अनुप्रेक्षा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस अनुप्रेक्षा का चिरकाल तक अभ्यास और प्रयोग किया जाए तो संवेगों को संतुलित किया जा सकता है। जब संवेग संतुलित हो जाते हैं, तो प्रबंधन की एक प्रकृति बन जाती है।

अच्छा बेटा : अच्छा पिता

हम परिवार की वर्तमान स्थिति का थोड़ा विश्लेषण करें। वर्तमान स्थिति क्या है ? आज माता-पिता अक्सर कहते हैं—हम पुत्रों को कुछ कहने-सुनने की स्थिति में नहीं हैं। सैकड़ों बार बड़े-बड़े लोगों से सुना है—हम पुत्रों को कुछ कह नहीं सकते हैं। आप ही थोड़ा समझाएं। वे बड़े हो गए हैं। हम कैसे कहें ? हम कहेंगे तो भी वे हमारी बात मानेंगे नहीं। दस वर्ष के छोटे-से लड़के के लिए भी यह कहा जाता है—लड़का हमारी बात मानता नहीं है। हम कैसे कल्पना करें संयुक्त परिवार की ? कैसे कल्पना करें अच्छे परिवार और उसके प्रबन्धन की ? यह अनुशासन क्यों नहीं है ? इसलिए नहीं है कि अनुशासन की वृत्ति को जगाया नहीं गया। प्राचीन सूत्र है—जो अच्छा शिष्य नहीं होता, वह अच्छा गुरु नहीं बनता। आज इस बात को बदल कर इस प्रकार कहा जा सकता है—जो अच्छा बेटा नहीं होता, वह अच्छा बाप नहीं बन सकता। अगर प्रारंभ से ही शिक्षण मिले, छोटे बच्चे को इस सूत्र का अभ्यास कराया जाए तो वह कभी भी आज्ञा और अनुशासन का अतिक्रमण नहीं करेगा। माता-पिता स्वयं ही मैत्री का प्रयोग नहीं करते, पुत्र के हित की चिन्ता नहीं करते, तब अनुशासन और आदर का भाव कैसे होगा ? सबसे बड़ी कमी है मैत्री की, हितचिन्तन की। यह चिन्ता नहीं है कि इसका भविष्य कैसा होगा ? चिन्ता करते हैं उसे पब्लिक स्कूल में पढ़ाने की, कान्वेण्ट, मेयो और दून में पढ़ाने की। वह ऊंची पढ़ाई करके ऊंची कमाई करे, अच्छी लड़की से शादी हो।

चिन्ता है प्रिय की

चिन्ताएं दो प्रकार की होती हैं—प्रिय की चिन्ता और हित की चिन्ता। प्रिय की चिन्ता तो बहुत करते हैं, हित की चिन्ता नहीं करते। जीवन-निर्माण हित की चिन्ता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लड़का बीमार हो गया। वैद्य को दिखाया। वैद्य ने कहा—इस बीमारी में मीठी चीज खाने को मत देना, अन्यथा यह असाध्य बीमारी में चला जाएगा। सादा भोजन दो। साथ में दवा दो लेकिन मीठी वस्तु इसे भूल कर भी मत देना। मां ने परामर्श स्वीकार कर लिया। दो दिन बीते। लड्डू घर में आए। बच्चे को मिठाई खाने की सहज आदत थी। मन ललचा गया। मां से लड्डू मांगा। एक-दो बार अनसुना कर दिया। वह बार-बार मांग करने लगा। मां की प्रियता जाग गई। उसने लड्डू खाने को दे दिया। लड्डू खाते ही बच्चे की हालत बिगड़ गई। वैद्य को बुलाया। वैद्य जान गया। उसने पूछा—मिठाई खिलाई ? संकोचपूर्वक मां बोली—हां। वैद्य ने कहा—"बीमारी अब मेरे उपचार से बाहर जा चुकी है। मैं कुछ नहीं कर सकता। वह मिठाई मृत्यु का कारण बन गई।"

हित की चिन्ता करें

प्रिय की चिन्ता थी, किन्तु हित की चिन्ता नहीं थी। अगर हित की चिन्ता होती तो प्रियता गौण हो जाती। आज परिवारों में प्रिय की चिन्ता बहुत बढ़ गई है किन्तु हित की चिन्ता नहीं हो रही है। यही कारण है—अनुशासन क्षीण हो रहा है, एकरूपता नहीं आ पा रही है, सामूहिक भावना का विकास नहीं हो पा रहा है। इन सबके बिना संयुक्त परिवार का कोई आधार या पृष्ठभूमि ही नहीं बनती। परिवार का मुखिया इस सचाई को समझे—वह केवल अपनी संतान और अपने परिवार के प्रिय की चिन्ता ही न करे, हित की चिन्ता भी करे।

परिवार के संदर्भ में प्रबंधन की यह संक्षिप्त मीमांसा है। यदि प्रबंधन के वर्तमान सूत्रों के साथ भारतीय संस्कृति के प्राचीन प्रबंधन सूत्रों को ध्यान में रखें तो परिवार के प्रबंधन की नींव अधिक मजबूत हो सकती है, उसका सम्यक् विकास संभव बन सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नए मनुष्य का जन्म

विकास की प्रक्रिया निरंतर गतिमान है। केवल विकास की ही नहीं, ह्रास की प्रक्रिया भी चलती रही है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी का कालचक्र चलता रहता है। हर युग में मनुष्य ने कल्पना की—विकास हो, आदमी अधिक अच्छा बने, समाज और राष्ट्र अच्छा बने। विकास की कामना की है और उसके लिए प्रयत्न भी किया है। इतिहास को देखें—ढाई हजार वर्ष, तीन हजार वर्ष, पांच हजार वर्ष अतीत में जाएं तो पता चलेगा—वर्तमान को और भी अच्छा बनाने का प्रयत्न कृष्ण ने किया, महावीर ने किया, बुद्ध ने किया, अनेक मनीषी विद्वानों और आचार्यों ने किया। सब चाहते हैं कि आदमी और अच्छा बने। वर्तमान दशकों में वैज्ञानिक जगत् में भी विकास की प्रक्रिया का चिन्तन चला है। उसी का प्रतीक साहित्य है डाफ्लर का 'थर्ड वेव', काप्लर का 'ताओ फिजिक्स'। ये पुस्तकें इस ओर इंगित करती हैं कि कुछ नया होना चाहिए।

ज्ञाता-प्रधान मनुष्य की कल्पना

आईन्स्टीन जैसे वैज्ञानिक ने मानव के संदर्भ में एक कल्पना की—आदमी ज्ञाताप्रधान बने। वह अब तक ज्ञेयप्रधान रहा है, अब ज्ञाताप्रधान को प्रमुखता मिलनी चाहिए और आदमी को ज्ञाताप्रधान होना चाहिए। आईन्स्टीन से पूछा गया—'आगे आप क्या होना चाहते हैं?' उन्होंने उत्तर दिया—'इस जन्म में मैंने ज्ञेय (आब्जेक्ट) पर ज्यादा काम किया है, अब मैं चाहता हूं कि अगले जन्म में ज्ञाता (सब्जेक्ट) पर ज्यादा काम करूं और उस ज्ञाता को जानने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रयत्न करूं, जो जानने वाला है। अब तक तो जो जाना जाता है, उस पर काम किया है, अब उस पर काम करना चाहता हूं, जो जानने वाला है।'

नए मानव का सपना

एक नया प्रकल्प, नया कान्सेप्ट सामने आता रहा है। महात्मा गांधी ने भी मनुष्य को अच्छा बनाने का मॉडल पेश किया। महर्षि अरविन्द ने मानव से संतोष नहीं माना, उन्होंने अतिमानव की कल्पना की। सब चाहते हैं कि विकास हो और कुछ नया हो। अणुव्रत अनुशास्ता ने भी कल्पना की है—नए मानव का जन्म हो। बड़ी मोहक है नए मानव के जन्म की बात। नए मानव के जन्म का तात्पर्य है—नए मस्तिष्क की संरचना।

ऐसा क्यों होता है ?

मस्तिष्क विज्ञानियों ने मस्तिष्क की तीन परतें बतलाई हैं—

- लिंबिक सिस्टम
- रेप्टेलियन
- नियोकार्टेक्स

प्रश्न यह है—वर्तमान समाज किस परत से ज्यादा प्रभावित है ? व्यक्ति सोचता है—इतना पढ़ा-लिखा आदमी है, उसने रिश्वत कैसे ली ? उस बुद्धिमान् आदमी ने आत्महत्या कैसे की ? इतने समझदार आदमी ने बैंक डकैती कैसे की ? ये प्रश्न उठते हैं, मानव-मन को झकझोरते हैं। इस प्रश्न का उत्तर प्राचीनकाल में अपने ढंग से दिया गया था। जैन आचार्यों ने कर्मवाद की भाषा में इसका उत्तर दिया—मोहकर्म के प्रभाव से ऐसा होता है। गीता में श्रीकृष्ण से पूछा गया—'न चाहता हुआ भी आदमी पाप करता है, इसका कारण क्या है ? कृष्ण ने उत्तर दिया—'काम और क्रोध, ये अपराध करा रहे हैं।' आज का वैज्ञानिक न मोह को जानता है, न काम और क्रोध को महत्त्व देता है। उसका निर्णय दूसरा है और वह यह है—जब-जब आदमी मस्तिष्क की रेप्टेलियन परत के प्रभाव में होता है, तब-तब अन्याय और अत्याचार करता है, अतिक्रमण करता है, आतंक फैलाता है। सारे अपराध इस रेप्टेलियन मस्तिष्क के प्रभावकाल में होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मस्तिष्क विद्या का मत

मस्तिष्क विद्या के अनुसार माना गया—यह परत लाखों वर्ष पुरानी है, सरीसृप जाति में इसका विकास हुआ था। वही परत आज तक मनुष्य के मस्तिष्क में है। आज के वैज्ञानिक यह नहीं मानते—साम्प्रदायिक उन्माद मुल्ला-पंडितों के कारण होता है। ये तो निमित्त बन जाते हैं पर यह जो साम्प्रदायिक अभिनवेश होता है, कलह और झगड़े होते हैं, ये सारे उस रेप्टेलियन परत के कारण होते हैं। इतना अवश्य होता है कि हमारे जो बड़े-बड़े धर्मगुरु हैं, वे उसको उभार देते हैं, व्यक्ति को उसके प्रभाव में ले जाते हैं। अगर मस्तिष्क में यह परत न हो तो हजार प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं होगा। जितना जातीय उन्माद और साम्प्रदायिक अभिनिवेश है, वह इस परत के कारण होता है।

कब होगा नए मनुष्य का जन्म

नए मनुष्य की परिकल्पना का तात्पर्य है—मस्तिष्क की नई सरंचना हो और मस्तिष्क का प्रभावक्षेत्र हम दूसरी दिशा में ले जाएं। जो पाशुविक मस्तिष्क (एनीमल ब्रेन) है, उसके प्रभाव को सीमित कर नियोकार्टेक्स, जो हमारे मस्तिष्क की सबसे अंतिम परत है, के प्रभाव में ले जाएं। इससे हमारी दिशा बदल जाएगी। वास्तव में नए मनुष्य का जन्म होगा, जिसमें जातीय उन्माद और साम्प्रदायिक अभिनिवेश नहीं होगा, जो अनावश्यक हिंसा नहीं करेगा।

तीन सिद्धान्त

अणुव्रत ने इन तीन तत्त्वों और सिद्धान्तों को सामने रखा—

- अनावश्यक हिंसा मत करो।
- जातीय उन्माद मत फैलाओ, छुआछूत मत करो।
- साम्प्रदायिक अभिनिवेश मत करो। धर्म के नाम पर भूमि को रक्तरंजित मत करो।

ये तीन बातें होंगी तो सचमुच नए मनुष्य का जन्म होगा। वह ऐसा मनुष्य होगा, जो धरती पर रहने लायक होगा और धरती को रहने लायक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनाएगा। आकाश में नगर बसाने के सपने ले रहा है आज का आदमी। कहा जा रहा है—पाताल में भी नगर बसाए जाएंगे। पर क्या बसने वाला आदमी आकाश में से टपकेगा ? बसने वाला यही आदमी तो होगा। फिर वहां भी अशान्ति कैसे नहीं होगी ? सबसे पहले वह धरती पर रहने लायक तो बने। वह तभी ऐसा बन पाएगा, जब उसकी यह अहं वृत्ति छूट जाएगी।

किसका अहंकार

पौराणिक कहानी है। एक स्त्री और पुरुष—दोनों के मन में साधना की भावना जागी। दोनों एक-साथ निकले, किन्तु अलग-अलग दिशाओं में। वर्षों तक उन दोनों ने सफल साधना की। इस काल में उन्हें कुछ सिद्धियां भी प्राप्त हुईं। साधना संपन्न कर दोनों वापस आए। मार्ग में फिर मिले। एक दूसरे को प्रणाम किया। पुरुष के मन में अहं काम कर रहा था। स्त्री ने बात करने की चेष्टा की तो पुरुष ने कहा—यहां क्या बात करें ? चलो, उधर जलाशय के पानी पर चलते हुए बात करें। स्त्री समझ गई कि यह अहंकार बोल रहा है। वह बोली—वहां क्या बात होगी, चलो आकाश में उड़ते हुए बातें करें। पुरुष का अहं शान्त हो गया। वह उड़ने की विद्या से अनभिज्ञ था। स्त्री ने मुसकराते हुए कहा—किस बात का अहंकार ! आखिर छोटी-सी मछली भी पानी पर चल सकती है और नाचीज मक्खी भी आकाश में उड़ सकती है। क्यों नहीं हम साधना के द्वारा ऐसी स्थिति का निर्माण करें, जिससे हम धरती पर चल सकें, धरती को रहने लायक बना सकें।

जंगलराज की स्थिति

आज ऐसा लगता है कि यह धरती रहने के लायक नहीं है। इस पर रहना पड़ता है, किन्तु रहने लायक है नहीं। यहां इतनी कठिनाइयां पैदा हो गई हैं कि जीना दूभर हो गया है। ऐसे महानगरों की स्थिति कितनी बदतर है, जहां पचास लाख, अस्सी लाख और एक करोड़ तक लोग रहते हैं। इस बात को हर कोई जानता है। दिन दहाड़े लूट लेने वाले गिरोह, फुटपाथ पर बैठने का भी चंदा वसूल लेने वाले दादा और गुण्डे, अपहरण कर फिरौती वसूल करने वाले गैंग, आंखों में धूल झोंक कर जेब काटने वाले ठग, इन सबसे भरे पड़े

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं हमारे महानगर। ऐसा लगता है न्याय और व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं है, जंगलराज की स्थिति है। ऐसी स्थिति में धरती सचमुच रहने लायक नहीं है।

नए मनुष्य की रचना के लिए मस्तिष्क पर ध्यान देना होगा। बहुत-सारे लोग समाज की व्यवस्था में परिवर्तन लाने हेतु प्रयत्नशील हैं। अर्थ-व्यवस्था को बदलने के लिए भी बहुत-सारे लोग लगे हुए हैं। इस शताब्दी में समाज व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था को बदलने के लिए अनेक प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं। वे प्रयत्न कितने सफल हुए हैं, यह एक प्रश्न है। उन प्रयत्नों के बावजूद न तो अभी तक समाज की व्यवस्था बदली है और न अर्थ-व्यवस्था बदली है। गरीबी, भुखमरी और महंगाई पर नियंत्रण की घोषणाएं चुनाव घोषणापत्रों में बन्द पड़ी रह गई हैं। इतना काम अवश्य हुआ है कि गरीब और ज्यादा गरीब हुआ है, अमीर और ज्यादा अमीर हुआ है।

परिवर्तन के दो उपाय

आज अध्यात्म और विज्ञान—दोनों के सन्दर्भ में चिन्तन करें तो इस असफलता के कारण को खोजा जा सकता है। आध्यात्मिक कारण यह है—काम, क्रोध, कषाय, अहंकार, लोभ इन्हें उपशान्त करने की प्रक्रिया समाज नहीं अपना रहा है बल्कि उन्हें और अधिक उद्दीप्त कर रहा है। अगर कषाय को शान्त करने की शिक्षा और प्रक्रिया चले तो समाज-व्यवस्था भी बदल सकती है, अर्थ-व्यवस्था भी बदल सकती है। विज्ञान के सन्दर्भ में इसका कारण है मस्तिष्क के बायें पटल का अत्यधिक सक्रिय होना। मस्तिष्क के दायें पटल को जागृत करने का प्रयत्न नहीं हो रहा है। मेरी दृष्टि में व्यवस्था को बदलने के ये दो उपाय सबसे अच्छे हैं। किन्तु आज स्थिति यह है—मोटर को तो बदला जा रहा है, ठीक किया जा रहा है, किन्तु चलाने वाले के प्रति हम उदासीन हैं। वायुयान बहुत अच्छा बना लें, मोटर, कार बहुत अच्छी और तीव्रगामी बना लें, जलपोत अत्यन्त उन्नत किस्म का बना लें, किन्तु यदि पायलट, ड्राइवर और कप्तान को कुशल नहीं बनाया गया तो ये तीनों विनाश के साधन सिद्ध होंगे। समस्या यही है—जिस पर ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देना चाहिए, उस पर हमारा ध्यान नहीं जा रहा है और जिस पर हम ध्यान देना तो चाहिए, किन्तु एक सीमा तक ध्यान देना चाहिए, उस पर समग्र ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है।

बदलाव के कारक तत्त्व

अणुव्रत कहता है—जब तक व्यक्ति अच्छा नहीं बनेगा, व्यवस्था बन जाने पर भी वह अच्छी नहीं रह पाएगी, टिक नहीं पाएगी। क्या संविधान राष्ट्र का अच्छा नहीं है ? क्या कानून की न्यायसंहिता अच्छी नहीं है ? ये बहुत अच्छे हैं किन्तु महत्त्व इस बात का है—संविधान को क्रियान्वित करने वाले, न्याय देने वाले कैसे हैं ? मूल प्रश्न है—इस स्थिति का सम्यक्करण कैसे किया जाए ? इसका समाधान सूत्र है—रेप्टेलियन मस्तिष्क की परत को सक्रिय बनाएं। इस स्थिति को न राजनीतिक दल बदल सकते हैं, न बड़े-बड़े इंस्टीट्यूट और न संस्थान बदल सकते हैं।

इस स्थिति में बदलाव के कारक तत्त्व तीन हैं—

- प्राथमिक शिक्षा
- संचार माध्यम
- धर्मगुरु

शिक्षा

नए मस्तिष्क की संरचना में प्राथमिक शिक्षा का बहुत महत्त्व है। शिक्षा के द्वारा बच्चे के मस्तिष्क का विकास होता है। उस विकास में किस परत को ज्यादा प्रभावी बनाया जा सके, इसकी सारी व्यवस्था पांच-दस वर्ष की अवस्था के बीच में होती है। अगर हमारी प्राथमिक शिक्षा समयक् रूप से हो जाए तो फिर महाविद्यालयी और विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। सारी प्रक्रिया ठीक चलेगी। सबसे महत्त्वपूर्ण समय है प्राथमिक शिक्षा का। हायर सेकेण्डरी तक बच्चे को ठीक बनाया जाए, उसके मस्तिष्क पर ध्यान दिया जाए तो समाज व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था को बदला जा सकता है, शोषण को मिटाया जा सकता है, भ्रष्टाचार और अपराध पर काबू पाया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संचार माध्यम

दूसरा घटक है संचार माध्यम। संचार माध्यम यह संकल्प लें—ऐसी घटना, ऐसा संवाद प्रेषित नहीं करेंगे, जिससे पाशविक मस्तिष्क को उत्तेजना मिले, उद्दीपन मिले। ऐसा हो जाए तो स्थिति में काफी सुधार की गुंजाइश बन सकती है।

धर्म गुरु का दायित्व

धर्मगुरु का काम इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण हो सकता है। धर्मगुरु अपने-अपने अनुयायियों को एक संकल्प दिलाएं—बच्चों में अच्छे संस्कारों का निर्माण करना है और उनके पाशविक मस्तिष्क को निष्प्रभावी बनाना है तो स्थिति को बदला जा सकता है।

कठिनाई यह है—शिक्षा स्वयं समस्या बनी हुई है। शिक्षा को जो देना चाहिए, वह तो नहीं दे रही है और जो नहीं देना चाहिए, वह ज्यादा दिया जा रहा है। हमने शिक्षा के बारे में एक सूत्र को बार-बार दोहराया है और वह यह है—जितना पढ़ाया जा रहा है, चिन्तन करें कि उसे कैसे कम किया जा सकता है और जो नहीं पढ़ाया जा रहा है, चिन्तन करें कि उसे कैसे जोड़ा जा सकता है। कैसे कितना छोड़ा जा सकता है और कैसे कितना जोड़ा जा सकता है ? इस फार्मूले पर जब तक हमारे शिक्षा-शास्त्री, शिक्षाधिकारी चिन्तन नहीं करेंगे, कोई परिवर्तन संभव नहीं लगता है। हमारे संगठन हजार प्रयत्न करें समाज-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था को बदलने का, शायद संभव नहीं होगा।

संचार माध्यम भी इस दिशा में प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। आज के अखबारों में, रेडियो की न्यूज में और टेलिविजन के पर्दे पर जो सामने आता है, वह ऐसा नहीं है कि व्यक्तित्व का निर्माण कर सके या पाशविक मस्तिष्क को परिष्कृत कर सके।

धर्मगुरु भी इस दिशा में सचेष्ट नहीं हैं। वे इस बात में सचेष्ट हैं कि मेरा भक्त भक्त बना रहे, गद्दी कायम रहे। इस चिन्ता में ज्यादा लगे हुए हैं, सुधार की बात कुछ कम चल रही है। तीन ही क्षेत्र हैं बदलने वाले और तीनों ही इस दिशा में निष्क्रिय प्रतीत हो रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म की ओर जाए

जब तक स्थूल जगत् से सूक्ष्म जगत् में प्रवेश नहीं करेंगे, समस्या का समाधान कठिन है। विज्ञान ने सूक्ष्म जगत् में प्रवेश किया। परिणामस्वरूप आज बहुत सारी सचाइयां उजागर हुई हैं, बहुत महत्त्वपूर्ण आविष्कार हो गए हैं और बहुत बड़ा निर्माण हो गया है। यदि विज्ञान स्थूल में अटका रहता तो यह संभव नहीं होता। कभी धर्म ने भी सूक्ष्म जगत् में प्रवेश किया था। धर्म का लक्ष्य और उद्देश्य ही था स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना। पर वह भी भटक गया, स्थूल में ही उलझ कर रह गया। जो आंखों के सामने है, जो तृप्ति दे रहा है, जो अच्छा लग रहा है, उसमें उलझ गए। भीतर में हमारा प्रवेश ही नहीं हो रहा है।

वटवृक्ष है बीज में

उपनिषद् का प्रसंग है। ऋषि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा—तुम जाओ और सामने जो वटवृक्ष दिखाई दे रहा है, उसका एक फल तोड़कर लाओ। श्वेतकेतु गया और फल तोड़कर ले आया। ऋषि बोले—अब इसे तोड़ो। श्वेतकेतु ने तोड़ा। उद्दालक ने पूछा—इसमें क्या देख रहे हो ? श्वेतकेतु ने कहा—इसमें बीज देख रहा हूं। आदेश दिया—बीज को तोड़ो। बीज को तोड़ा। पूछा—इसमे क्या देख रहे हो ? श्वेतकेतु बोला—इसमें तो कुछ भी नहीं है। उद्दालक ने कहा—जो कुछ है, इसी में है। तुम स्थूल में गए हो, सूक्ष्म में जाओ, तुम पाओगे—इसमें एक वटवृक्ष है।

हम उस सूक्ष्म में नहीं जा रहे हैं, जहां बदलने की क्षमता है। जहां जाने पर बदला जा सकता है, परिवर्तन किया जा सकता है, वहां हम नहीं जा रहे हैं और जहां बदला नहीं जा सकता, उस स्थूल की परिक्रमा चल रही है।

कानून की प्रकृति : व्रत की प्रकृति

अणुव्रत दर्शन में इस सूक्ष्म की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया है। व्रत का तात्पर्य ही है आत्मा का संकल्प। यह कोई कानून नहीं है। कानून की प्रकृति अलग होती है और व्रत की प्रकृति अलग होती है। कानून वह होता है, जहां आदमी देखे, वहां कानून का पालन और जहां न देखे, वहां उसका उल्लंघन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रिश्वत लेनी है तो लोगों के बीच में नहीं ली जाती। घर में अकेले पहुंच जाने पर स्वीकार कर ली जाती है। उसमें कानून कोई बाधा नहीं बनता। कानून तब बाधा बनता है, जब दूसरा कोई देख रहा हो। व्रत वह होता है, जहां कोई देखता है तो व्यक्ति जागरूक रहता है और नहीं देखता है तो ज्यादा जागरूक बनता है। वह उस समय सोचता है—दूसरा कोई नहीं देख रहा है, लेकिन आत्मा तो देख रही है, परमात्मा तो देख रहा है। उस समय जागरूकता ज्यादा बढ़ जाती है। राशनिंग प्रणाली लागू होते ही एक ही रात में सारा खाद्यान्न न जाने कहां गायब हो जाता है ? इस सन्दर्भ में सरदारशहर के एक व्यक्ति का उल्लेख करना चाहूंगा। चीनी का कण्ट्रोल हुआ। सेठ सुमेरमलजी दूगड़ के यहां चीनी की बोरियां भरी पड़ी थीं। उन्होंने पूरे परिवार के साथ चाय बिना चीनी के ली, किन्तु एक किलो भी चीनी उन बोरियों से नहीं निकाली। कौन देखने वाला था ? कौन पकड़ने वाला था ? चीनी के बोरे घर में पड़े थे। यह है व्रतनिष्ठा का निदर्शन।

विकास की अवधारणा

यह कानून नहीं, व्रत है। व्रत हमारी सूक्ष्म चेतना का स्पर्श करता है। जो सूक्ष्म चेतना का स्पर्श करता है, वह व्रत है और जो स्थूल चेतना का स्पर्श करता है, वह कानून है। हमने शायद कानून पर ज्यादा भरोसा कर रखा है, व्रत पर हमारी श्रद्धा कम है। अगर कानून के स्थान पर व्रत भी चले, दोनों एक साथ चलें, तो स्थिति को बदला जा सकता है। इसके लिए सबसे पहले हमें अपनी अवधारणा बदलनी होगी। नए मनुष्य की कल्पना करेंगे तो विकास की अवधारणा भी बदलनी पड़ेगी। आज विकास भी स्थूल भाषा में चल रहा है। विकसित राष्ट्र या समाज वह है, जिसके नागरिकों के पास खाने-पीने की प्रचुर सामग्री है, अच्छे मकान, कार, रेडियो और टी॰वी॰ हैं, सुख-सुविधा के प्रभूत साधन हैं। इस आधार पर हमने विकास की अवधारणा को परिभाषित कर दिया, किन्तु इसके साथ यह नहीं जोड़ा—जिसका मस्तिष्क विकसित है, वह विकसित है। साधन-संपन्नता और आर्थिक संपन्नता होने पर भी भ्रष्टाचार चलता है। आप सब जानते हैं कि कब किस राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री को भ्रष्टाचार के आरोप का सामना करना पड़ा है। कुछ राष्ट्रों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति तो जेल में भी हैं। पड़ोस में बंगलादेश के राष्ट्रपति इरशाद अहमद का उदाहरण सामने हैं।

एक मात्र विकल्प

प्रश्न है–इतना बौद्धिक विकास होने के उपरान्त भी ऐसा क्यों हो रहा है ? इसलिए हो रहा है कि आज तक हमने वांछनीय मस्तिष्क की परत को जगाने का प्रयत्न कम किया है और अवांछनीय मस्तिष्क की परत को उत्तेजना देने का प्रयत्न ज्यादा किया है। अणुव्रत का यह जो संकल्प है स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने का, कानून से व्रत की चेतना को जगाने का और मस्तिष्क की पाशविक परत को निष्प्रभावी बनाकर मानवीय परत को विकसित करने का, बस यही नए मनुष्य का जन्म है। इस जन्म के आधार पर हम कल्पना कर सकते हैं कि नए युग का प्रारंभ, नए समाज का प्रारंभ होगा। काम बहुत कठिन है, सरल नहीं है, किन्तु मुझे लगता है कि इसका एकमात्र विकल्प है तो यही है। कषाय का उपशमन, पाशविक ब्रेन को निष्क्रिय करने की दिशा में प्रस्थान, शिक्षण और प्रशिक्षण, अगर इन बातों पर हमारा ध्यान केन्द्रित हो तो अणुव्रत अनुशास्ता का स्वप्न साकार हो सकता है, नए मनुष्य का जन्म संभव बन सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा प्रशिक्षण : एक सार्वभौम आयाम

अहिंसा और आत्मनिरीक्षण—ये दो नहीं हैं। हिंसा और परदर्शन को भी पृथक् नहीं किया जा सकता। जिस व्यक्ति ने सदा दूसरों को देखा है, पदार्थ को देखा है, वह हिंसा में उतर जाएगा। जिसने अपने आपको देखना शुरू किया है, अपना दर्शन, अपना निरीक्षण किया है, वह हिंसा से दूर होता चला जाएगा, उसके जीवन में अहिंसा उतरती चली जाएगी। आज पूरे विश्व में अहिंसा एक चर्चित शब्द बन गया है। हजारों वर्ष पहले अहिंसा की शिक्षा, प्रशिक्षण और सिद्धान्त बतलाए गए हैं। महात्मा गांधी ने अहिंसा को एक व्यापक स्वरूप प्रदान किया और विश्व के सामने अहिंसा की शक्ति को तेजस्वी रूप में प्रस्तुत किया। वर्तमान दो-तीन दशकों में जिस प्रकार हिंसा बढ़ी है, अहिंसा की अभीप्सा और अधिक जागृत हुई है।

विचारणीय प्रश्न

हम इस बात को जानते हैं—प्रथम विश्वयुद्ध में बहुत नरसंहार हुआ। दूसरा महायुद्ध हुआ तो उसमें भी भयंकर नरसंहार हुआ। इस बात को कम लोग जानते हैं कि दूसरे महायुद्ध के बाद आज तक जितना नरसंहार हुआ, उतना दोनों महायुद्धों में नहीं हुआ। छोटे-छोटे राष्ट्रों ने इतनी लड़ाइयां लड़ी हैं कि उनमें लाखों-लाखों लोगों का नरसंहार हुआ है। इन दिनों रवांडा और सोमालिया में जो नरसंहार हुआ, उसे सुनकर रोमांच हो जाता है। दो जातियों के सत्ता संघर्ष में गृहयुद्ध छिड़ गया। हास्पिटल में हजारों लोग घायलावस्था में एक-दूसरे को मार रहे हैं। सत्ता संघर्ष से प्रेरित जातीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघर्ष ने इतनी विभीषिका मचाई है कि कुछ ही दिनों में लाखों आदमी कट-मर गए। आज विश्व के सामने यह प्रश्न उठ रहा है कि ये गरीब और छोटे देश इतनी हिंसा कर आखिर क्या पाना चाहते हैं ? इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिल रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ हैं, तमाम शक्तिशाली देश हैं, जिनका विश्व के अधिकांश देशों पर दबाव है, प्रभुत्व है। इन देशों की हिंसा को रोकने में उन्होंने कितना योगदान किया, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है।

बड़े देशों में कोई संघर्ष होता है तो अमेरिका, इंग्लैण्ड जैसी शक्तियां तुरन्त बीच-बचाव करने के लिए दौड़ पड़ती हैं। अफ्रीकी राष्ट्र में मनुष्य का मूल्य इतना कम है कि उसके लिए कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं समझता। उन्हीं के लड़ाई-झगड़े को रोकने के लिए प्रयत्न किए जाते हैं, जिनका बाजार में मूल्य ज्यादा है। जिनका बाजार में मूल्य कम है, खनिज-खाद्यान्न और दूसरी आवश्यक चीजों का जो उत्पादन नहीं कर सकते, हर दृष्टि से पिछड़े हैं, उनके लिए कोई चिन्ता नहीं होती।

इन सारी स्थितियों ने आज चिन्तन को आन्दोलित किया है। आखिर दुनिया में बढ़ती जा रही यह हिंसा कहां जाकर रुकेगी ? कब विराम लेगी ? इस परिप्रेक्ष्य में अहिंसा का प्रश्न और भी अधिक ज्वलंत बन गया है। इस बात को सब समझ रहे हैं कि इसका एक मात्र उपाय अहिंसा ही है। यह उपाय नहीं हुआ तो प्राकृतिक प्रलय से पूर्व आदमी स्वयं प्रलयंकर बन जाएगा और सारी सृष्टि को समाप्त कर देगा। इसलिए अहिंसा का विकास बहुत जरूरी है। प्रश्न है कि यह विकास कैसे हो ? समाधान अहिंसा है, किन्तु उसकी प्रक्रिया क्या हो ? यह जटिल प्रश्न है।

नया नक्षत्र

एक वार पूज्य गुरुदेव ने कहा था—अहिंसा की केवल चर्चा ही पर्याप्त नहीं है। अहिंसा का अनुसंधान होना चाहिए, उसके प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए, उसका प्रयोग होना चाहिए। जैसे ही ये तीन सूत्र आए, चिन्तन के क्षेत्र में एक नया नक्षत्र उदित हो गया। सुप्रसिद्ध साहित्यकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनेन्द्रजी ने कहा—'यह बहुत सुन्दर कल्पना है। अहिंसा सार्वभौम की कल्पना के रूप में इसे आगे बढ़ाना चाहिए।' अणुव्रत के परिपार्श्व में एक नया संकल्प जन्मा— 'अहिंसा सार्वभौम'। गुजरात के साहित्यकारों ने, सर्वोदय के कार्यकर्ताओं ने इसे एक नए दृष्टिकोण के रूप में देखा। त्रिसूत्री कार्यक्रम के बिना केवल अहिंसा के सिद्धान्त की चर्चा से आगे नहीं बढ़ा जा सकता। आज जब विज्ञान अनुसंधान के बल पर, प्रशिक्षण और प्रयोग के बल पर बहुत आगे बढ़ रहा है, इन तीनों के अभाव में मात्र एक वांङ्मय और शब्दों का घेरा बन जाता है, कोई बड़ा या नया काम नहीं हो सकता।

प्रशिक्षण : चार सूत्र

प्रशिक्षण की विधि को भी जानना बहुत जरूरी है। प्रश्न है अहिंसा का प्रशिक्षण कैसे हो ? एक प्राचीन ग्रन्थ है बृहत्कल्प भाष्य। उसमें प्रशिक्षण की बहुत बढ़िया विधि निर्देशित है। उसके चार सूत्र हैं—पहला सूत्र है मूल पाठ का उच्चारण। मूल पाठ यह है—मैं किसी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा। आत्महत्या नहीं करूंगा। परहत्या नहीं करूंगा। भ्रूणहत्या नहीं करूंगा। दूसरा सूत्र है—अर्थ बोध। तीसरा सूत्र है—अधिगम। यह पूछो कि तुम्हारी समझ में आया या नहीं आया। अधिगत किया या नहीं किया ? चौथा सूत्र है—श्रद्धा। इस विषय में जो पाठ पढ़ाया, जो अर्थ बताया और जो तुमने समझा, उसमें तुम्हारी श्रद्धा पैदा हुई या नहीं हुई ?

मूलपाठ, अर्थ, अधिगम और श्रद्धा—जब तक ये चार सूत्र नहीं होते, प्रशिक्षण की बात आगे नहीं बढ़ती। कोई भी प्रशिक्षण हो, उसके लिए ये चार सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रशिक्षण का यह महत्त्वपूर्ण सूत्र आचार्य संघदास और आचार्य मलयगिरि ने दिया।

संकल्प संस्कार बने

अणुव्रत अहिंसा के प्रशिक्षण की आचारसंहिता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है—अणुव्रत का अर्थ है, अहिंसा की आचारसंहिता, अहिंसा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशिक्षण की प्रक्रिया। बहुत लोग अणुव्रती बनते हैं, अणुव्रतों को स्वीकार करते हैं, किन्तु पूरी प्रक्रिया नहीं करते। जब तक पूरी प्रक्रिया नहीं होती, तब तक उसका पूरा फल नहीं आता। एक व्यक्ति रोटी खाने बैठा। भूख है पांच रोटी की। वह आधी रोटी खाकर उठ गया। क्या शरीर को पूरा पोषण मिलेगा ? पोषण तब मिलेगा, जब भूख के समानान्तर भोजन करेंगे। प्यास है एक लोटे पानी की। एक घूंट पानी पिया। क्या पानी पीने का फल आएगा ? प्यास बुझेगी ? दवा का कोर्स है दस दिन का और दवा ली मात्र एक दिन तो दवा का परिणाम नहीं आएगा। ठीक यही प्रक्रिया आज धर्म के लोग अपना रहे हैं। धर्म करते हैं, किन्तु अधूरा करते हैं। यह मानते हैं—पाठ पढ़ लिया और समझ लिया, धर्म पूरा हो गया। एक व्यक्ति अणुव्रती बनता है। वह आचारसंहिता का पाठ भी कर लेता है और संकल्प भी कर लेता है—मैं किसी भी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा। वस्तुतः यह पर्याप्त नहीं है। जब अहिंसा के प्रशिक्षण की दिशा में हम प्रस्थान करेंगे तो समझ में आएगा कि यह बिल्कुल अधूरी बात है। जब इस संकल्प को अनुप्रेक्षा की आंच पर पकाएंगे, तब संकल्प पकेगा। मैं किसी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा, इस संकल्प को एक सप्ताह, दो सप्ताह, चार सप्ताह तक दोहराएं और तब तक दोहराएं जब तक यह वाक्य आपका संस्कार न बन जाए। जब यह वाक्य संस्कार वन जाए तो फिर इसे दोहराने की जरूरत नहीं होगी।

अंतर है शिक्षा और प्रशिक्षा में

हम संस्कारों का निर्माण करना चाहते हैं। एक बार किसी से कह देते हैं—झूठ मत बोलो, बुराई में मत जाओ और हम यह मान लेते हैं—उसे अच्छी शिक्षा दे दी। यह भ्रम है। पांच-पांच हाथ के हजार कुएं खोद लें तो पानी नहीं निकलेगा। पानी निकालना है तो उसे एक स्थान पर ही वहां तक खोदना होगा, जब तक पानी न निकल आए। पानी की पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी परत तक जाते हैं, तब पानी का अच्छा स्रोत निकलता है।

हम लोग प्रशिक्षण को अभी जानते नहीं हैं। टीचिंग एक बात है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्रेनिंग बिल्कुल दूसरी बात है। शिक्षा और प्रशिक्षा में बहुत अन्तर है। शिक्षण में तो पाठ याद कर लेते हैं या थोड़ा अर्थ समझ लेते हैं और मान लेते हैं कि बस काम हो गया। किन्तु प्रशिक्षण में शब्द कोई बहुत काम नहीं देता। शब्द प्राथमिक रूप में थोड़ी-सी सहायता करता है, किन्तु जब तक इस शब्द का जो अर्थ है, वह हमारा अपना न बन जाए, तादात्म्य न हो जाए, तब तक वह आचरण नहीं बन सकता। शरीर को पोषण तब मिलेगा, जब खाया-पीया पच कर रक्त और मांस में बदल जाएगा। यह है प्रशिक्षण की प्रक्रिया। आयुर्वेद में सात धातुओं में अंतिम धातु मानी गई है ओज। प्रशिक्षण में अंतिम धातु है संस्कार का निर्माण। जब संस्कार-निर्माण हो गया, आदत बन गई, फिर वह अलग नहीं होती। संस्कार निर्माण हुआ और हमारा कार्य संपन्न हो गया।

संदर्भ आचार-संहिता का

अणुव्रत की आचारसंहिता का सन्दर्भ लें—'मैं पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति जागरूक रहूंगा।' व्यक्ति ने इस पाठ को पढ़ लिया, इसका अर्थ भी समझ लिया। पर्यावरण का प्रदूषण क्या है ? इसे जान लिया। इसमें श्रद्धा भी पैदा हो गई। इसका तात्पर्य है—हमने भूमि को उर्वरा बना लिया। अब बीज बोने लायक भूमि बन गई। इसके बाद अनुप्रेक्षा का प्रयोग अपेक्षित है। मैं पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति जागरूक रहूंगा—'इस शब्दावली को नौ बार दोहराएं। पहले बोलकर नौ बार दोहराएं, फिर होठों में नौ बार दोहराएं और फिर मन में नौ बार दोहराएं, इसके बाद इस वाक्य के साथ एकाकार बन जाएं, अपने में समाहित कर लें। इसे कायोत्सर्ग की मुद्रा में दोहराएं, फिर इसके साथ ध्यान का प्रयोग करें। रंग के ध्यान का प्रयोग करें, अनुचिन्तन करें। अनुप्रेक्षा के जितने सारे चरण हैं, उनमें से गुजरें।' क्या यह काम एक दिन में हो जाएगा ? कभी संभव नहीं है। दो दिन करें, चार दिन करें, दस दिन करें। जब तक यह न लगे—अब यह मेरा संस्कार बन गया है, तब तक अनुप्रेक्षा का प्रयोग करते रहें। यह मूल्यांकन व्यक्ति स्वयं कर सकता है कि वह मेरा संस्कार बना या नहीं बना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकल्प और सिद्धि

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि साधु-समाज और गृहस्थ-समाज—दोनों में प्रशिक्षण की विधि का प्रयोग आज नहीं हो रहा है। संकल्प और सिद्धि—दो शब्द बहुत पुराने हैं। एक संकल्प, एक लक्ष्य बना किन्तु वह संकल्प ही रहता है तो सिद्ध नहीं होता। सिद्धि तब मिलेगी, जब उसे प्रयोग की आंच पर पकाया जाएगा। आंच तेज होगी तो जल्दी पकेगा, धीमी आंच होगी तो देर से पकेगा। यह प्रक्रिया का भेद है लेकिन पकाए बिना, अहिंसा का संकल्प हो या सत्य का संकल्प, फल नहीं देता।

आहार और हिंसा

हम प्रशिक्षण की विधि पर विशेष ध्यान केन्द्रित करें। अहिंसा के प्रशिक्षण का पहला अंग है आहार का प्रशिक्षण। आहार और हिंसा में गहरा संबंध है। प्रश्न है—आहार कैसा है ? वह सात्विक है या तामसिक ? यदि आहार में मद्य-मांस का प्रयोग होता है तो वह हिंसा की प्रवृत्ति को बढ़ावा देगा। हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखें। भारतीय समाज को लें या बाहर के समाज को लें। जिन लोगों को लड़ाई में ज्यादा रहना पड़ा, जो सुरक्षा के मोर्चो पर रहे, लड़ना ही जिनका पेशा बन गया, उन क्षत्रियों के लिए मद्य और मांस की खुली छूट समाज ने दी। शायद बहुत कम क्षत्रिय ऐसे हुए हैं, जिन्होंने इनका प्रयोग न किया हो। एक प्रकार से यह क्षत्रियों का धर्म बन गया। ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र—इनके लिए मांसाहार कोई विकल्प नहीं था। यह अलग बात है कि वे खाने लग गए, किन्तु उनके लिए वह कोई विकल्प नहीं था। क्षत्रियों के लिए आहार का एक विकल्प मांस बन गया। जब लड़ाई में ही रहना है तो शराब और मांस का सहारा आवश्यक है। ऐसी स्थिति में क्रूर बनना पड़ेगा, दया और संवेदनशीलता खत्म करनी पड़ेगी। संवेदनहीन हुए बिना हिंसा हो ही नहीं सकती। वर्तमान में आतंकवाद के प्रशिक्षण में प्रशिक्षुओं को संवेदनहीन बनने का प्रशिक्षण दिया जाता है। कुछ देशों में संवेदनहीनता के लिए मनोरंजन होते हैं। अरब के एक देश में ऐसा ही एक संवेदनहीन खेल होता है, जिसमें ऊंट की पीठ पर एक बच्चे को बांध दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। फिर ऊंट को बेतहासा दौड़ाया जाता है। जब बच्चा भय और पीड़ा से चीखता है, चिल्लाता है तो शेख और दूसरे दर्शक प्रसन्न एवं आनंदित होते हैं। बच्चों की करुण चीत्कारें तब तक सुनते रहते हैं, जब तक कि उनके प्राण पखेरू न उड़ जाएं। क्या संवेदनहीनता के बिना ऐसा दृश्य देखा जा सकता है ?

निदर्शन रोम का

रोम का साम्राज्य बहुत शक्तिशाली था। वहां हिंसा और खूनी संघर्षों में लोग इतने हृदयहीन और संवेदनहीन हो गए कि तलवार-बंदूक से किसी को मारने में उनकी रुचि ही समाप्त हो गई। फलस्वरूप हत्या की नई-नई विधियों को ईजाद कर वहां आदमी को तड़पा-तड़पा कर मारा जाने लगा। जिस्म से उबलते रक्त के छूटते फव्वारों, चीखों और चीत्कारों से वहां के लोगों को अपूर्व तोष और आनन्द का अनुभव होता था। इस दृष्टि से वहां भयानक यातनागृह बनाए गए। अन्ततः इसी संवेदनहीनता ने रोम साम्राज्य का पतन कर दिया। पहले वे दूसरों को मारते थे, किन्तु जब हिंसा उनका संस्कार बन गया तो वे अपनों को ही मारने लगे। सैनिक अपनी पत्नियों को मारने लगे, अपने पुत्रों को मारने लगे, पड़ोसियों को मारने लगे। धीरे-धीरे वह साम्राज्य आपस में ही लड़-कटकर समाप्त हो गया।

स्थिति अमेरिका की

समाचारपत्रों में पढ़ा—अमेरिकी सैनिक भी उसी पगडंडी को पकड़ रहे हैं। युद्ध के प्रशिक्षण, वियतनाम, इराक, सोमालिया आदि देशों में युद्धरत सैनिकों की आदत ही इतनी हिंसक हो गई, दिमाग इतना गर्म हो गया, हिंसा से इतना भावित हो गया कि हिंसा एक सामान्य घटना बन गई। घर में पत्नी या किसी ने मन के प्रतिकूल कुछ भी कहा तो फौरन गोली मार दी जाती है। छोटे-छोटे विद्यार्थियों में भी यह प्रवृत्ति घर करती जा रही है। वहां लाखों विद्यार्थी विद्यालयों में पिस्तौल या कोई अन्य मारक हथियार लेकर जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कार निर्माण का प्रयोग

अहिंसा के विकास के लिए संवेदनशीलता का विकास करना बहुत जरूरी है। संवेदनशीलता के विकास के लिए अनुप्रेक्षा की विधि अपनानी होगी। संस्कार-निर्माण की यह विधि जितनी अच्छी है, उतनी अच्छी विधि शायद अभी दूसरी विकसित नहीं हुई है। **सव्वभूयप्प भूयस्य सम्मं भूयाहि पासओ**–सब जीवों को अपने तुल्य समझो। **'आयतुले पयासु'**–सब आत्माओं को अपनी आत्मतुला से तोलो–इन दो पर अनुप्रेक्षा का प्रयोग किया। कुछ लोगों ने कहा–इससे हमारा सारा दृष्टिकोण ही बदल गया। आज अपेक्षा है–दृष्टिकोण को बदलने के लिए अनुप्रेक्षा का प्रयोग किया जाए, सचाई को बार-बार दोहराया जाए। शिला बहुत मजबूत होती है, किन्तु उस पर यदि मजबूत रस्सी बार-बार चले तो शिला पर भी निशान बन जाते हैं। प्रशिक्षण का एक सूत्र है–भावना, पुनः-पुनः प्रवृत्ति और अभ्यास। संस्कार-निर्माण का यह शक्तिशाली प्रयोग है।

शरीर और अहिंसा

अहिंसा के प्रशिक्षण का एक अंग है स्वास्थ्य। शरीर ठीक रहे, उसमें कोई पीड़ा न रहे, हमने इस सीमा तक ही स्वास्थ्य को सीमित कर रखा है। यह स्वास्थ्य का सही मूल्यांकन नहीं है। मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की बात को छोड़ दें, शारीरिक स्वास्थ्य का भी हमारी हिंसा और अहिंसा के साथ गहरा संबंध है। आज यह वैज्ञानिक अध्ययन का विषय बना हुआ है। अगर लीवर का फंक्शन ठीक नहीं है तो आपमें हिंसा की भावना पैदा हो जाएगी। हाइपर एसिडिटी है तो बुरे विचार, बुरे भाव पैदा होते चले जाएंगे। रक्त में ग्लूकोज का 'लो' परसेंटेज है तो आत्महत्या या दूसरों की हत्या की भावनाएं पैदा होंगी। स्नायुतंत्र का संतुलन नहीं है, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रसायन संतुलित पैदा नहीं हो रहे हैं तो हिंसा की भावना पैदा हो जाएगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरूरी है परीक्षण

मनुष्य शरीर को हृष्ट-पुष्ट और नीरोग रखने के लिए शरीर पर ध्यान देता है। उसे गलत नहीं कहा जा सकता। वह भी एक प्राथमिक आवश्यकता है किन्तु इस दृष्टि से भी ध्यान देना जरूरी है कि शरीर के महत्त्वपूर्ण अवयवों का हमारी वृत्तियों और मन पर क्या असर हो रहा है ? आजकल लोग शरीर का टेस्ट बहुत कराते हैं। टेस्ट में हजारों-हजारों रुपये खर्च कर देते हैं किन्तु यह टेस्ट नहीं कराते कि थायरायड, पिट्यूटरी, एड्रीनल आदि ग्रन्थियां कैसे काम कर रही हैं। वे ठीक से काम कर रही हैं या नहीं ? हिंसा को रोकने के लिए इनका टेस्ट बहुत आवश्यक है।

नेपोलियन वाटर लू की लड़ाई हार गया। एक प्रश्न उभरा—विश्वविजय का सपना देखने वाले इस योद्धा की पराजय क्यों हुई ? उसके मस्तिष्क की मेडिकल जांच की गई। जांच से पता चला—जिस समय नेपोलियन ने वाटर लू की लड़ाई का निर्णय लिया था, उस समय उसकी पिट्यूटरी ग्लैण्ड फैल हो गई थी, इसलिए युद्ध के दौरान वह उचित निर्णय नहीं ले सका और पराजित हो गया।

अहिंसा प्रशिक्षण का अर्थ

आहार और स्वास्थ्य का प्रशिक्षण बहुत महत्त्वपूर्ण है। वैज्ञानिक इसमें लगें और खोजें तो एक दिन अहिंसा की ऐसी कोई विधि सामने आ सकती है, जिसके प्रति पूरे विश्व का ध्यान आकर्षित हो सकता है। जब से अहिंसा के प्रशिक्षण का स्वर उभरा, अहिंसा प्रशिक्षण पर दो कान्फ्रेंसें हुईं, दुनिया का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। अनेक पत्र आए, यह जिज्ञासा मुखर हुई—अहिंसा-प्रशिक्षण की विधि क्या है ? सामान्यतः अहिंसा प्रशिक्षण का मतलब है—कहीं लड़ाई हो रही हो तो शान्ति सैनिक वहां जाएं, उन्हें समझा-बुझाकर शान्त करें। यह एक कोण हो सकता है। इसे हम अहिंसा प्रशिक्षण की परिपूर्ण विधि नहीं मान सकते। हिंसा और अहिंसा को हमने युद्ध और शान्ति के क्षेत्र तक ही सीमित कर दिया। वस्तुतः यह जीवन का व्यवहार है। हर व्यक्ति के जीवन में बार-बार हिंसा और अहिंसा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षण आते ही रहते हैं।.इससे विरत होने के लिए हम मूल से चलें। आहार का प्रशिक्षण, स्वास्थ्य का प्रशिक्षण और फिर संवेगों के संतुलन का प्रशिक्षण, यहां से हमारी अहिंसा के प्रशिक्षण की यात्रा शुरू हो तो अहिंसक समाज रचना का स्वप्न साकार होगा।

शान्ति की वर्तमान भाषा

विश्व शान्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ बना। अब झटपट युद्ध नहीं होते। पहले चर्चा होती है, चिंतन होता है, इससे प्रायः आवेश शान्त हो जाता है। युद्ध आवेश में शुरू हाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा उस आवेग पर छींटा डाल कर उफान को शान्त कर दिया जाता है। तुरत-फुरत युद्ध शुरू नहीं हो पाते। शान्ति की परिभाषा करते हुए युद्धशास्त्रियों ने कहा है—'शान्ति का मतलब है दो युद्धों के बीच होने वाली तैयारी।' युद्ध कम हो जाने का एक कारण यह है कि युद्धोपकरण महंगे हो गए और शक्ति संतुलन इतना बराबर का हो गया है कि हर किसी को दूसरे से खतरा दिखाई देता है। परमाणु युद्ध कभी भी हो सकता था यदि शक्ति संतुलन न होता। यदि अहिंसा-प्रशिक्षण का सूत्र व्यापक बनता तो शक्तिसंतुलन के नाम पर शस्त्रीकरण को बढ़ावा नहीं मिलता, शन्ति और सुरक्षा का दर्शन शस्त्रों में नहीं मिलता।

हथियार उद्योग पर नियंत्रण हो

अहिंसा प्रशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंग है हथियार उद्योग पर नियंत्रण। आज युद्ध शुरू कराने वाला सबसे बड़ा फैक्टर है हथियार उद्योग। अमेरिका जैसे हथियार उद्योग के व्यापारी आज दुनिया के सम्राट् बने हुए हैं। हथियारों का उत्पादन इतना हो गया है कि खपत की समस्या ज्वलंत बन रही है। इसके लिए कोई ऐसा क्षेत्र ढूंढ़ा जाता है, जहां युद्ध शुरू कराया जा सके, फिर उस युद्ध में उन हथियारों की खपत हो। इस हथियार उद्योग को कैसे निष्प्रभावी बनाया जा सके, इस प्रश्न पर भी अहिंसा प्रशिक्षण के संदर्भ में विमर्श आवश्यक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूरदर्शितापूर्ण व्रत

भगवान् महावीर ने एक श्रावक के लिए इस व्रत का विधान किया था—मैं शस्त्र का निर्माण नहीं करूंगा। उसका आदान-प्रदान नहीं करूंगा। शस्त्र के पुर्जों का संयोजन नहीं करूंगा।' आजकल हथियार के कल-पुर्जों का संयोजन होता है। हवाई जहाज अपने यहां बनाया और इंजन बाहर से खरीदा। टैंक अपने यहां विकसित किया, उसमें इंजन, राकेट और तोप दूसरे देश की उन्नतशील किस्म की लगाई। एक श्रावक के लिए कितना दूरदर्शितापूर्ण व्रत था, जो अहिंसा के प्रशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंग बना था।

जीवन-शैली बदले

अहिंसा के प्रशिक्षण का एक सूत्र है—जीवन-शैली का परिवर्तन। इस परिवर्तन के बिना अहिंसा के प्रशिक्षण की बात पूरी नहीं होगी। बहुत आवश्यक है जीवन-शैली का बदलाव। जीवन-शैली अच्छी नहीं है तो उसमें हर किसी को असफलता ही मिलेगी।

एक बार कुबेर अपने एक उपासक पर प्रसन्न हो गए और उसे अपने लोक में ले गए। कुबेर ने अपना खजाना दिखाते हुए कहा—तुमने मेरी बहुत भक्ति की है। मै तुमसे प्रसन्न हूं। तुम इस भण्डार में जा सकते हो और जितना द्रव्य चाहो, इस भण्डार से ले जा सकते हो। भक्त भीतर गया। खजाने को देखकर आंखें फटी की फटी रह गईं। एक से एक बढ़कर चमकती मणियों की चकाचौंध में वह कुछ भी लेने का निर्णय नहीं कर सका। जिस रत्न को हाथ में लेता, आगे वाला रत्न उससे और भी ज्यादा मूल्यवान् और सुन्दर प्रतीत होता। इसको लूं कि उसको लूं, इसी ऊहापोह में एक घण्टा बीत गया। खजाने का चौकीदार आया। 'महाशय ! समय समाप्त'— भक्त को यह कहकर बाहर निकाल दिया। उसने कहा—'मैं तो कुछ ले ही नहीं सका और तुमने बाहर निकाल दिया।' चौकीदार ने कहा—'मूर्ख हो तुम। आज तक तुम्हारे जैसे हजारों यहां आ चुके हैं। इस दरवाजे से प्रवेश कर उस दरवाजे से बाहर खाली हाथ निकल गए। कुछ भी साथ में नहीं ले जा सके।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी जीवन-शैली को बदले बिना हम भी चाहे कुबेर के भण्डार में ही क्यों न चले जाएं, कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

अहिंसा प्रशिक्षण की इन सारी विधियों का उपयोग करें। चर्चा और वाङ्मय की भूमिका से आगे तादात्म्य की भूमिका तक पहुंच जाए वह दिन अहिंसा के इतिहास में सूर्योदय का दिन होगा, जिस दिन अहिंसा शब्दों के जाल से निकल कर हमारा संस्कार बन जाएगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहां से आती है अपराध चेतना ?

पवित्र चेतना जीवन का सबसे बड़ा वरदान है। दुनिया में अनेक उपलब्धियां होती हैं, किन्तु चेतना की पवित्रता से बड़ी कोई उपलब्धि नहीं है। जब-जब चेतना में विकृति आती है, सारी उपलब्धियां अर्थहीन और व्यर्थ बन जाती हैं। मस्तिष्क की निर्मलता, चेतना की विशुद्धि जीवन की पवित्रता का मूल स्रोत है।

चेतना के स्तर

हमारी चेतना के अनेक स्तर हैं। इन्द्रिय चेतना का स्तर सामान्य स्तर है। एक विशेष स्तर है, जिसमें अन्तर्दृष्टि (इन्ट्यूशन पावर) विकसित हो जाती है। पूर्वाभास, दूर का ज्ञान और व्यवहित वस्तु का ज्ञान संभव बन जाता है। चेतना की उससे अधिक विकसित अवस्था है—अतीन्द्रिय ज्ञान। इसमें बाहरी निमित्त समाप्त हो जाते हैं। आत्मा की वह शक्ति जागृत होती है, जिससे हमारा ज्ञान निरावरण हो जाता है। अतीन्द्रिय चेतना में कोई अपराध संभव नहीं होता। अन्तर्दृष्टि की चेतना में भी अपराध संभव नहीं होता। किन्तु हमारी जो सामान्य चेतना है, जिसमें हम ज्ञेय को, पदार्थ को जान लेते हैं, जिससे हमारा सामान्य व्यवहार चलता है, उस चेतना में दोनों संभावनाएं रहती हैं। यदि अनुकूल योग मिलता रहे तो चेतना ठीक काम करती है और योग प्रतिकूल मिल जाए तो चेतना विकृत भी बन जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काम कर रही है विक्षिप्त चेतना

इस सारी स्थिति को योगशास्त्र में बहुत व्यवस्थित ढंग से विवेचित किया गया है। योगशास्त्र में चित्त की अनेक अवस्थाएं बतलाई गई हैं। चित्त मूढ़ होता है, विक्षिप्त और यातायात होता है। आचार्य हेमचन्द्र आदि ने भी इनका वर्णन किया है। समाज की सामान्य चेतना को देखें तो लगता है विक्षिप्त चेतना ज्यादा काम कर रही है। जहां चित्त की चंचलता है, वहां विक्षिप्त चेतना काम करती है। विक्षिप्त चेतना में विकृति आने की बहुत संभावना रहती है। चेतना एकाग्र बन जाए तो विकृति आने की संभावना बहुत कम हो जाती है या समाप्त हो जाती है।

कारण है मानसिक विक्षेप

चंचलता और एकाग्रता—इन दो बिन्दुओं के आधार पर मनुष्य के सारे व्यवहार का विश्लेषण करें तो पता चलेगा—एकाग्रता में न केवल अपराध बल्कि असामान्य मानसिक अवस्थाएं समाप्त हो जाती हैं। जहां चंचलता है, विक्षेप है, वहां असामान्य चेतना की स्थिति भी बन सकती है, अपराध-चेतना की स्थिति भी बन सकती है, गलत रास्ते पर भी आदमी जा सकता है। अपराध का सबसे बड़ा कारण है विक्षेप या चंचलता। चंचलता में हर स्थिति मन को बाधित करती है और मन उसे पकड़ लेता है। अपराध की चेतना का एक बहुत बड़ा कारण है मानसिक विक्षेप। चंचलता में भी बहुत तारतम्य होता है। मन्द, मध्यम और तीव्र—चंचलता की अनेक कोटियां बन जाती हैं। जहां चंचलता मन्द है, वहां अधिक हानि नहीं होती। चंचलता मध्यम है तो हानि के दरवाजे खुल जाते हैं, अपराध के दरवाजे खुल जाते हैं। जहां चंचलता तीव्र है, विक्षेप तीव्र है, वहां सब कुछ संभव हो सकता है।

अपराध चेतना : मूल कारण

मादक वस्तुओं का सेवन, मनस्ताप आदि-आदि निमित्तों से अपराध ज्यादा जोर पकड़ते हैं और उन्हीं पर हमारा ध्यान केन्द्रित होता है। हम निमित्तों से ज्यादा परिचित हैं। मूल कारण से कम परिचित हैं। यदि मूल कारण पर जाएं तो निमित्त अप्रभावी बन जाएंगे और हमें बदलने में कहीं अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सफलता मिलेगी। मूल कारण है मन की चंचलता को कम करना।

वर्तमान समाज की स्थिति को हम देखें। आज चंचलता बहुत ज्यादा है। इसका कारण है—चेतना ऊर्ध्व पर अवस्थित नहीं है, वह नाभि के आसपास कार्य कर रही है। जब-जब समाज और व्यक्ति की चेतना नाभि (एडीनल ग्लैण्ड) के पास अधिक सक्रिय बनती है, तब तब बीमारी और मानसिक विकार—सब कुछ बढ़ता है। अपराध की चेतना का यह मूल कारण है। चेतना कहां अवस्थित है ? चेतना की स्थिति ऊर्ध्वगामी है, मध्यगामी है या अधोगामी है ? वर्तमान में ऐसा प्रतीत हो रहा है कि चेतना नीचे ज्यादा काम कर रही है। नीचे की चेतना अच्छे समाज का लक्षण नहीं है।

अपराध की चेतना का मूलस्रोत खोजें तो वह होगा चेतना का निम्नगामी होना, नीचे उतर जाना और नीचे रहना। मेडिकल साइंस के अनुसार नाभि के नीचे का जो स्थान है, वह पिंगला से प्रभावित स्थान है। मन की शान्ति, चित्त की निर्मलता इससे कम हो जाती है। अपराध की चेतना का मूल कारण यही बनता है।

अपराध के निमित्त

हम निमित्तों पर विचार करें। मानसिक विकास का कम होना अपराध का एक बहुत बड़ा कारण है। मस्तिष्कीय क्षति वाले व्यक्ति, जिनका मस्तिष्क क्षतिग्रस्त होता है और मंदबुद्धि वाले व्यक्ति, जिनमें चिंतन की शक्ति नहीं होती, अपराध में चले जाते हैं।

मनस्ताप भी अपराध की ओर ले जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपराध और मादक वस्तुओं के सेवन की विधियों को जानने के लिए विशेषज्ञों की समिति गठित की। उस समिति का जो प्रतिवेदन है, उसे पढ़ने से पता चलता है कि अनेक प्रकार की मादक वस्तुएं विश्वबाजार में छा गई हैं। यद्यपि हर काल में मनुष्य मादक द्रव्यों का सेवन करता रहा है, क्योंकि मनस्ताप और मादक पदार्थों का सेवन लगभग साथ-साथ चलते हैं। सामाजिक जीवन में मान-अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा, अर्थाभाव, दुःख-क्लेश, अवसाद आदि चलते ही रहते हैं। ये समस्याएं मन में तनाव पैदा करती हैं, संताप पैदा करती हैं। आदमी नहीं चाहता कि वह संताप अथवा तनाव का जीवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीए। इसके लिए उसने उपाय खोजा और उपाय मिला उसे मादक द्रव्यों के रूप में। मादक पदार्थों की अपनी विशेषता है, इससे हम इन्कार नहीं करते। उनमें विशेषता है इसीलिए तो उनका इतना प्रचार है, इतनी खपत हो रही है। सेवन करने से एक बार तो आदमी पूर्ण शान्ति की स्थिति में चला जाता है। वह सारे तनावों और परेशानियों को कुछ देर के लिए भूल जाता है।

व्यापक है नशे की आदत

नशा करने वाला, मादक पदार्थों का सेवन करने वाला हर व्यक्ति पागल नहीं है, नासमझ नहीं है। कुछ व्यक्ति नासमझी से करते हैं, मूर्खतावश करते हैं किन्तु कुछ लोग समझदारी से करते हैं। अमेरिका जैसे राष्ट्र में जहां के नागरिक प्रबुद्ध हैं, वहां राष्ट्रपति बुश के कार्यकाल में किए गए एक सर्वे में पाया गया—दो करोड़ अस्सी लाख लोग विशेष मादक पदार्थों के सेवन में व्यस्त थे। शराब आदि सामान्य नशों के नहीं, हेरोइन, कोकीन आदि तीव्र नशीली चीजों के सेवन के आदी थे। राष्ट्रपति बुश ने इन नशीली चीजों के निरोध की अपील की और सात अरब अस्सी करोड़ डालर इन वस्तुओं के निरोध के लिए खर्च करने की घोषणा की। इतना बड़ा देशव्यापी संकट खड़ा हो गया। दो करोड़ अस्सी लाख लोगों में सबके-सब नासमझ और मूर्ख तो नहीं थे। उनमें पढ़ा-लिखा और बुद्धिजीवी वर्ग भी था। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता—नशे का सेवन करने वाला हर व्यक्ति मूर्ख, पागल, मंदबुद्धि या नासमझ है।

क्यों करते हैं नशा ?

प्रश्न है—फिर क्यों करते हैं नशा ? कारण सिर्फ एक ही है और वह है शान्ति की चाह। व्यक्ति चाहता है—परेशानियों से दूर, आपे को भूल कर एक ऐसे लोक में चले जाएं, जहां कोई बाधा न हो। किसी समय एल० एस० डी० का प्रयोग ज्यादा चलता था। उसके सेवन से ऐसा मतिभ्रम होता है कि स्वर्गिक आनन्द की अनुभूति होती है। इतना विचित्र लोक आंखों के सामने आता है कि नशेड़ी समझता है—इससे बढ़िया लोक और कहीं दूसरा नहीं है, इससे बड़ा कोई आनन्द नहीं है। यही मतिभ्रम और स्वर्गिक आनन्द आदमी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नशे की ओर ले जाता है। तनावों से जूझते आदमी को ऐसा अद्भुत आनन्द मिले तो उसे और क्या चाहिए ?

विवशता की स्थिति

हमारे मस्तिष्क में अनेक प्रकोष्ठ हैं। हमारी सारी प्रवृत्तियां कर्म-शरीर के स्पन्दनों से प्रभावित होती हैं। कर्म शरीर के स्पन्दन हमारे चित्त को प्रभावित करते हैं, उसके जितने स्पंदन आते हैं, उतने ही प्रकोष्ठ हमारे शरीर में बने हुए हैं। हमारा शरीर अरबों-खरबों न्यूरोन्स और प्रकोष्ठों का एक जाल है। हमारे मस्तिष्क में सुख के संवेदन का प्रकोष्ठ भी है, दुःख-संवेदन का प्रकोष्ठ भी है। ये प्रकोष्ठ मादक द्रव्यों का सेवन करने से उद्दीप्त होते हैं और एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति देते हैं। आदमी एक बार अगर उस चरम आनन्द की स्थिति में पहुंच जाता है तो फिर बार-बार वहां पहुंचने की इच्छा जाग जाती है। धीरे-धीरे एक विवशता की स्थिति बन जाती है, उसे छोड़ना मुश्किल हो जाता है। अगर इन मादक वस्तुओं के द्वारा यह अलौकिक आनन्द सदा प्राप्त होता रहता तो शायद उन्हें छोड़ने के लिए कहना समझदारी की बात नहीं होती। किन्तु इनका परिणाम अच्छा नहीं होता।

चिन्तन के दो पहलू

भारतीय चिन्तन में दो पहलुओं से विचार किया गया—एक प्रवृत्ति के पहलू से और दूसरा परिणाम के पहलू से। एक वस्तु आपादभद्र है। प्रारंभ में बहुत अच्छी लगती है, किन्तु परिणाम में बहुत विकृत बन जाती है। एक वस्तु आपाद में अभद्र होती है, परिणाम में भद्र होती है। पहले अच्छी नहीं लगती, किन्तु परिणाम उसका बहुत अच्छा होता है। उदाहरण के लिए चीनी और आंवला को ले सकते हैं। आयुर्वेद में द्रव्य के विपाक पर बहुत विचार किया गया है। विपाक की दृष्टि से चीनी अम्लता पैदा करती है और आंवला मधुरता पैदा करता है। हाइपर एसिडिटी में आंवला दिया जाता है और उससे लाभ होता है। चीनी ज्यादा खिलाओ तो और बढ़ जाएगा। मादक वस्तुओं का परिहार इसलिए करना चाहिए कि उनका परिणाम अच्छा नहीं होता। जितने भी नशीले द्रव्य अब तक प्रकाश में आए हैं, वे सब इस दृष्टि से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हानिकारक सिद्ध हुए हैं।

नशे के परिणाम

अवसाद (डिप्रेसन), अकर्मण्यता, आलस्य, मतिभ्रम और स्नायविक दुर्बलता—ये सारे नशे के बुरे परिणाम हैं। शराब ज्यादा पीने से लीवर खराब हो जाता है। तम्बाकू पीने से फेफड़े और हृदय के कैंसर का खतरा रहता है। कोई भी नशीला पदार्थ ऐसा नहीं है, जो शरीर के किसी न किसी अवयव को क्षतिग्रस्त या विनष्ट न करता हो। प्रवृत्ति के जगत् में जाएं तो नशा बहुत अच्छा लगता है, आकर्षक लगता है। आज के इस व्यावसायिक जगत् में गलाकाट प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्धा और विज्ञापन के युग में मानवहित और समाज कल्याण की बात गौण हो गई है। जैसे भी हो, बाजार में अपना प्रभुत्व स्थापित करना, अपने उत्पाद की अधिकाधिक खपत और लाभ अर्जित करना ही एकमात्र उद्देश्य रह गया है।

व्यवसाय है अपराध और नशा

अपराध और नशा—ये दोनों व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। अपराध भी आज व्यवसाय से जुड़ गया है। बम्बई जैसे बड़े शहरों में बड़ी-बड़ी कंपनियां, मिलें, और प्रापर्टी डीलर अपने व्यवसाय में माफिया सरगनाओं की मदद लेते हैं। कोई भी समझदार नागरिक समाज के कानून को नहीं तोड़ना चाहता। सामाजिक व्यवस्था को भंग करना अपराध है किन्तु जब चेतना विकृत बन जाती है, तब व्यक्ति समाज के नियमों को तोड़ता है और अपराधी बनता है। अपराध का मतलब ही है समाज की व्यवस्था का अतिक्रमण करना, उसके नियमों और कानूनों को तोड़ना। चोरी, डकैती, हत्या, बलात्कार आदि-आदि जितने भी अपराध हैं, वे विकृत चेतना के परिणाम हैं। स्वस्थ चेतना कभी भी इन अपराधों में नहीं जा सकती।

विश्वव्यापी समस्या

अणुव्रत के सामने एक प्रश्न है—अपराध की रोकथाम कैसे हो ? सरकार अपराधों की रोकथाम करती है, डंडे के बल पर। संसार के हर देश में इनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोकथाम पर भारी-भरकम बजट बनते हैं। दो ही मदों पर सबसे ज्यादा खर्च किया जाता है—(१) युद्ध के लिए, (२) अपराधों की रोकथाम के लिए। तस्करी रोकने के लिए सरकार कितना प्रयत्न करती है, किन्तु समाचार पत्रों को पढ़ें, प्रतिदिन अखबारों में ऐसी खबरें छपती हैं—आज इतनी हेरोइन पकड़ी गई, इतनी मात्रा में चांदी पकड़ी गई या इतने हथियार पकड़े गए। यह केवल भारत की ही नहीं, पूरे विश्व की समस्या बनी हुई है।

नशा मुक्ति के प्रयत्न

जब तक व्यक्ति की चेतना मादक पदार्थों की ओर उन्मुख है, उसे रोकना कभी संभव नहीं हो सकेगा। दण्ड और शक्ति के बल पर इसे कभी रोका नहीं जा सकेगा। इसे रोकने का कोई सशक्त अभिक्रम हो सकता है तो वह केवल पवित्र चेतना वाले संगठनों का हो सकता है। अणुव्रत ने व्यसन-मुक्ति का कार्यक्रम अपने हाथ में लिया, बहुत अभियान चलाए गए, कुछ सफलता भी मिली। किन्तु यह अनुभव भी हुआ कि यह बहुत जटिल काम है। एक बार नशे की आदत पड़ गई, अपराध की आदत हो गई तो उसे सहज ही छोड़ पाना संभव नहीं होता। उसे छुड़ाने के लिए विशेष उपाय जरूरी हैं। राजस्थान में अफीम छुड़ाने के लिए कुछ उपाय और अभिक्रम चल रहे हैं। और भी अनेक स्थानों पर इस तरह के प्रयत्न चल रहे हैं। इस कार्य के लिए अन्य बातों के साथ-साथ विशेष शिविरों का आयोजन भी बहुत जरूरी है। प्रेक्षाध्यान के शिविर इसमें बहुत सफल बनते हैं।

कान पर ध्यान करें

हमारे शरीर का एक प्रमुख अवयव है—कान। प्रेक्षाध्यान में इसे अप्रमाद केन्द्र कहा जाता है। जागरूकता का सबसे बड़ा केन्द्र है हमारा कान। चश्मा लगाने के अतिरिक्त सामान्यतः लोग इसका किसी और काम में उपयोग नहीं करते। कान की खिंचाई भी शाब्दिक और मुहावरों में प्रयुक्त होकर रह गई है। प्राचीन समय में पाठशाला में गुरु जरूर कान खींचते थे। आज वहां भी यह बन्द हो गया है। यदि कान खिंचाई करें तो लेने के देने पड़ जाएं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह कान हमारे शरीर का बहुत महत्त्वपूर्ण चैतन्यकेन्द्र (साइकिक सेण्टर) है। नशे की आदत छुड़ाने के लिए इस पर ध्यान का प्रयोग किया जाए तो नशे की आदत स्वतः छूट जाएगी। व्यक्ति को यह कहना नहीं पड़ेगा कि तुम नशा मत करो, सिगरेट मत पियो, शराब मत पियो। इस प्रयोग के साथ-साथ रासायनिक क्रिया बदलनी शुरू हो जाएगी और नशे की आदत अपने आप छूट जाएगी।

विकल्प के अभाव में

एक मादक वस्तु का नाम है मार्फीन। डॉक्टर भी अफीम का उपयोग दवा में करते हैं। मार्फिया का इंजेक्शन लगाते हैं। आधुनिक खोजों से ज्ञात हुआ है—हमारा शरीर स्वयं इन्डोरफीन नाम का रसायन पैदा करता है। जब-जब इन्डोरफीन पैदा होता है, मार्फिया की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। यह एक तथ्य है—कोई कठिनाई का, दुःख का जीवन जीना नहीं चाहता, मानसिक तनाव और व्यथा का जीवन जीना नहीं चाहता। वह इनसे राहत पाना चाहता है। इसके लिए वह विकल्प खोजता है। कोई विकल्प नहीं मिलता है तो वह सीधा नशे के विकल्प की ओर मुड़ जाता है। डॉक्टर ऑपरेशन के समय एनेस्थेसिया के इंजेक्शन का प्रयोग करते हैं, रोगी को कोई कष्ट नहीं होता। चाहे जितना मेजर ऑपरेशन हो, पता ही नहीं चलता। संवेदनाओं का रास्ता बन्द कर दिया जाता है, संवेदन मस्तिष्क तक पहुंचने से रोक दिए जाते हैं तो हमें किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव नहीं होता। नींद और क्या है ? मादकता ही तो है। भगवान् महावीर ने नींद को भी प्रमाद माना है। विषय भी प्रमाद है, लड़ना-झगड़ना भी प्रमाद है।

नशामुक्ति का उपाय

नशा, अपराध तब वर्जित हो सकता है, जब हमारी चेतना जागरूक बने। जागरूक रहना है तो सामने वाले को न देखें, अपने हाथ-पैर को भी न देखें, केवल कान पर ध्यान केन्द्रित कर दें, निश्चित ही आप जागरूक रहेंगे और आपकी चेतना पवित्र बन जाएगी। यह एक सुन्दर उपाय है नशामुक्ति का। नशा और अपराध की मुक्ति के लिए हमें एक ही तत्त्व की खोज करनी है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और वह है जागरूकता। भारतीय साधना पद्धति में एक प्रयोग चला, जिसे अजपाजप कहते हैं। आदमी अपने इष्ट का पांच-दस मिनट जप करता है, जब जप करते-करते वह अभ्यास प्राण तक चला जाए, श्वास के साथ जुड़ जाए तो फिर करने की जरूरत नहीं होती। वह श्वास प्राण के साथ चलने लगता है और अजपाजप हो जाता है। यह अजपाजप चौबीस घण्टे, यहां तक कि नींद में भी चल सकता है।

सरल प्रयोग

प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है भावक्रिया। हम जो काम करें, वह जानते हुए करें, जागरूकता के साथ करें। ध्यान घण्टा-दो घण्टा का हो सकता है, किन्तु भावक्रिया का ध्यान चौबीस घण्टे चल सकता है। इसका अभ्यास यही है कि जो भी काम करें, जानते हुए करें, जागरूकता में करें, मूर्च्छा और बेहोशी में न करें। अपराध बेहोशी में होता है। मादक वस्तु का सेवन बेहोशी में होता है। जागृत अवस्था में कोई आदमी शराब नहीं पी सकता। जागृत अवस्था में कोई आदमी अपराध नहीं कर सकता। जब-जब अपराध करता है, चेतना पर बेहोशी छाई होती है, अपना भान नहीं रहता है। यदि हम जागरूकता का अभिक्रम शुरू करें तो वर्तमान की विकट और विषम समस्या के लिए हम एक ऐसा विकल्प प्रस्तुत कर सकते हैं, जो शायद निर्विकल्प विकल्प होगा। आजकल मस्तिष्कीय परिवर्तन अथवा मादक वस्तुओं के सेवन की आदत को छुड़ाने के लिए कुछ औषधियों का भी प्रयोग किया जाता है। डॉक्टर भी करते हैं, होमियोपैथी और एक्यूप्रेशर वाले भी करते हैं। एक्यूप्रेशर में कुछ ऐसे प्वाइण्ट हैं, जिन पर दबाव दें तो नशे की आदत बदल जाएगी। आयुर्वेद में भी कुछ ऐसी औषधियां हैं, जिनके प्रयोग से नशे की आदत बदलती है किन्तु यह जागरूकता का प्रयोग इतना सरल है कि न तो किसी दवा की जरूरत है और न किसी चिकित्सक की। बिना किसी की मदद के चेतना का रूपान्तरण हो जाता है।

कलंक मिट गया

प्रेक्षाध्यान का एक शिविर चल रहा था। असम से एक युवक आया। शिविर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में भाग लिया। बड़ा सुदर्शन युवक था। तीन दिन ध्यान करने के बाद उसने कहा—महाराज ! मैं तो बहुत नशा करता था, किन्तु आज पता नहीं क्या हुआ कि नशे से अरुचि पैदा हो गई और मैंने उसे छोड़ दिया। बाद में उसके मित्रों ने बताया—मादक चीजों का इतनी मात्रा में सेवन करने वाला युवक कैसे बदल गया, इसका हमें आश्चर्य होता है। कुछ समय बाद युवक के नाना आए। उन्होंने कहा—'वह हमारे कुल का कलंक था, आपने उसका उद्धार कर दिया। हमारे कुल का कलंक मिट गया।' न हमें इसका पता था, न ही उससे कहा गया—नशा छोड़ो। कान पर सब शिविरार्थियों को ध्यान कराया, उसने भी किया और इतना बड़ा परिवर्तन उसमें आ गया।

सर्वोत्तम उपाय

चेतना को बदलने का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा। चेतना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाएं। जो चेतना हमारी नाभि के पास है, उसे ऊपर लाएं, आनन्द केन्द्र पर लाएं, विशुद्धि केन्द्र और अप्रमाद केन्द्र पर लाएं, दर्शनकेन्द्र और ज्ञानकेन्द्र पर ले जाएं। जैसे-जैसे चेतना का ऊर्ध्वारोहण होगा, चेतना ऊपर की ओर जाएगी, अपराध समाप्त होंगे और नशे की आदत भी समाप्त होगी। हम ऐसा मार्ग खोजें, जिससे हमारी चेतना पर आने वाले आवरण और मल अपने आप धुल जाएं और चेतना का ऊर्ध्वारोहण हो जाए। अपराध चेतना के परिष्कार का यही उपाय सर्वोत्तम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेक्षाध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्तित्व का निर्माण

व्यक्ति और समाज, बिन्दु और सिन्धु—इन दोनों में गहरा संबंध है। समुद्र बहुत विशाल है। बिन्दु उसकी छोटी इकाई है। किन्तु समुद्र के लिए बिन्दु का उतना ही मूल्य है, जितना विस्तार का मूल्य है। विश्व और व्यक्ति को कभी पृथक्-पृथक् नहीं देखा जा सकता। इनको पृथक् किया भी नहीं जा सकता। ये शब्द बहुत प्रसिद्ध हैं—पिण्ड और ब्रह्माण्ड। **'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे, यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे।'** जो पिण्ड में है, वह ब्रह्माण्ड में है और जो ब्रह्माण्ड में है, वह पिण्ड में है। अनेकान्त के अनुसार व्यक्ति और समूह में, पिण्ड और ब्रह्माण्ड में इतना अनन्य संबंध है कि इसको कभी तोड़ा नहीं जा सकता। अंगुली अकेली लगती है, किन्तु वह पूरे विश्व के साथ जुड़ी हुई है। कहा जा सकता है—एक अंगुली हिलती है तो पूरा विश्व हिल जाता है। भाष्यकारों ने एक बहुत सुन्दर तत्त्व का प्रतिपादन किया—मुनि या कोई भी व्यक्ति जब कपड़े को फाड़ता है तो फाड़ने के कारण कुछ परमाणु स्कन्ध उससे इतनी दूर चले जाते हैं, हजारों-हजारों मील की यात्रा कर किसी जलाशय में चले जाते हैं और जलाशय को प्रकंपित कर देते हैं। हमारा गहरा संबंध है इन सबके साथ। इसी से फलित होता है पर्यावरण का सिद्धान्त। एक-दूसरे के साथ इतना गहरा संबंध है कि किसी को क्षतिग्रस्त मत करो, किसी को बाधा मत पहुंचाओ, किसी को पीड़ित मत करो। सबके साथ जो संबंध है, उस सम्बन्ध की अनुभूति करो। व्यक्ति और समाज की भी यही स्थिति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकांत की प्रणाली

समूह में व्यक्ति छिपा हुआ है और व्यक्ति की पृष्ठभूमि में समूह छिपा हुआ है। दोनों जुड़े हुए हैं। समाजशास्त्रियों ने कहा—व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। यह एक सचाई है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। दूसरी सचाई यह है—व्यक्ति-व्यक्ति मिलकर समाज बनता है। हम कहीं-कहीं व्यक्ति को प्रधान और समाज को गौण कर देते हैं। कहीं समाज को प्रधान और व्यक्ति को गौण कर देते हैं। यह अनेकान्त की प्रणाली है। जहां हम व्यक्ति की चर्चा करें, वहां समाज को अस्वीकार नहीं किया जा सकता और जहां समाज की चर्चा करें, वहां व्यक्ति का लोप नहीं किया जा सकता। केवल हमारा कोण प्रधान और गौण का होता है। जहां एक प्रधान होता है, दूसरा गौण हो जाता है। इस अनेकान्त की भाषा और प्रणाली को समझकर ही हम व्यक्ति और समाज की सम्यक् मीमांसा कर सकते हैं।

व्यक्तित्व का अर्थ

व्यक्ति की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। वे समाज में नहीं होतीं, नितान्त वैयक्तिक होती हैं। शरीर वैयक्तिक होता है, समाज का नहीं होता। उसकी सीमा है, पर वह होता है वैयक्तिक। चिन्तन वैयक्तिक होता है, भाव और कर्म वैयक्तिक होते हैं। सहिष्णुता, विनम्रता आदि गुण व्यक्ति की विलक्षणताएं हैं। व्यक्तित्व का अर्थ है—व्यक्ति की विशेषताओं और विलक्षणताओं का समन्वय। इसी का नाम है व्यक्तित्व।

व्यक्तित्व का दूसरा रूप

व्यक्तित्व का दूसरा रूप है व्यवहार। व्यक्ति की विशेषताएं व्यवहार में प्रतिबिम्बित होती हैं, अभिव्यक्ति व्यवहार में होती है। विशेषताएं अन्तर्हित रहती हैं और वे बाहर आती हैं व्यवहार में। व्यवहार समाज को जोड़ने वाला तत्त्व है। समाज एक चित्र का निर्माण करता है। उसे भित्ति या आधार देता है हमारा व्यवहार। शरीर का व्यवहार कैसा है ? वाणी, चिन्तन या भावना का व्यवहार कैसा है, इस पर व्यक्तित्व का मापन और मूल्यांकन होता है। समाज और है क्या ? व्यवहार का प्रतिफलन ही तो है। एक का दूसरे के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ व्यवहार, सबके साथ व्यवहार। समाज का एक रूप बन जाता है। सब अपने आप में रहें, हमारा दूसरे के साथ कोई व्यवहार न हो, अनुक्रिया न हो तो समाज नहीं बनता। व्यवहार बाहर आता है, विशेषताएं भीतर रहती हैं।

झलकता है व्यवहार

एक व्यक्ति सहिष्णु है। सहिष्णुता कभी बाहर नहीं आती किन्तु व्यवहार से उसका पता चल जाता है। किसी व्यक्ति ने अभद्र व्यवहार किया, फिर भी वह शान्त और मौन रहा, अपने आप पता लग जाएगा—व्यक्ति शालीन है। अगर शालीन नहीं होता तो वह भी अभद्र व्यवहार पर उतर आता। आचार्य भिक्षु को किसी व्यक्ति ने मुक्का मार दिया, गाली दे दी। किन्तु वे शान्त रहे। तितिक्षा भीतर थी और व्यवहार बाहर झलक रहा था—सन्त कितना शालीन है। बुद्ध को किसी ने गाली दी, वे हंसते रहे। किसी ने पूछा—आपको गुस्सा नहीं आया ? उन्होंने कहा—कोई तुम्हें कुछ देता है और तुम उसे स्वीकार नहीं करते तो वह देने वाले के पास ही तो रह जाती है। तुमने गाली दी। हमने स्वीकार नहीं की तो तुम्हारी गाली किसके पास जाएगी ?

इस तितिक्षा ने व्यवहार को परिवर्तित कर दिया।

व्यक्तित्व निर्माण का प्रश्न

बहुत जटिल प्रश्न है व्यक्तित्व के निर्माण का। कैसे निर्माण करें, जिससे व्यवहार में आग्रह न हो, लचीलापन हो। कुछ व्यक्ति इतने आग्रही होते हैं कि अपनी बात को मजबूती से पकड़ लेते हैं, छोड़ते ही नहीं। कुछ व्यक्तियों में अहं प्रबल होता है। वे अपने को बहुत उत्कृष्ट दिखाते हैं। उनकी आंतरिक पृष्ठभूमि यही होती है कि मैं उत्कृष्ट हूं। जैन आचार्यों में एक विवाद उभरा—मुनि कपड़ा रखे या नहीं। वस्त्र न रखने वालों ने यह प्रदर्शित किया कि वे बहुत ज्यादा उत्कृष्टता का पालन कर रहे हैं। एक आचार्य ने अनेकान्त दृष्टि से कहा—ऐसा मत करो। कोई एक वस्त्र रखता है, कोई दो वस्त्र रखता है, कोई तीन वस्त्र रखता है, कोई अवस्त्र—अचेल रहता है। वस्त्र रखता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो कोई दोष नहीं है। नहीं रखता है तो मानो विशेष साधना कर रहा है। किन्तु रखने वाले को हीन मत मानो। कोई उपवास करता है, अच्छी बात है, किन्तु न करने वाले को हीन मत मानो। अहं का प्रदर्शन मत करो।

विघटन का हेतु

महत्त्वपूर्ण बात है—न हीन भावना, न अहं की भावना, न अपना उत्कर्ष और न दूसरों का अपकर्ष। न एकान्तिक आग्रह और न मिथ्या पकड़, एक समन्वित अनेकान्त की प्रणाली। शायद यह व्यक्तित्व-निर्माण का सबसे सुन्दर सिद्धान्त है।

जिस व्यक्ति ने अनेकान्त को हृदयंगम किया है, उसके व्यक्तित्व का निर्माण अपने आप हो गया। उसे ज्यादा चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। व्यक्तित्व का विखण्डन एकान्तवादी दृष्टिकोण के द्वारा होता है। जिनका दृष्टिकोण एकान्तवादी बन जाता है, उनका व्यक्तित्व अपने आप विघटित हो जाता है।

व्यक्तित्व-निर्माण के लिए मनोवैज्ञानिकों ने काफी काम किया है। यूंग से लेकर आज तक अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इस विषय पर काफी प्रकाश डाला है। अनेक विधियां-प्रविधियां प्रस्तुत की हैं।

शरीर और व्यक्तित्व

व्यक्तित्व-निर्माण के लिए शरीर पर ध्यान देना बहुत जरूरी है। शरीर सबका समान नहीं होता। एक व्यक्ति लम्बा होता है और एक ठिगना। एक व्यक्ति मोटा है, एक दुबला-पतला। ये व्यक्ति की अपनी शारीरिक विशेषताएं हैं और इन पर ध्यान देने की बहुत आवश्यकता भी नहीं होती। किन्तु शरीर के दो तत्त्व—ग्रन्थितंत्र और नाड़ीतंत्र हमारे व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते हैं। व्यक्तित्व के निर्माण में इनकी प्रमुख भूमिका रहती है।

ग्रंथितंत्र और व्यक्तित्व

ग्रंथितंत्र को व्यक्तित्त्व—निर्माण से भिन्न नहीं माना जाता। जिस व्यक्ति का थायराइड ग्लेण्ड काम नहीं करता, जिसमें थायरोक्सिन की कमी होती है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह व्यक्ति चिड़चिड़ा बन जाता है। उसकी चिन्तन और स्मृति की शक्ति कम हो जाएगी। थायरोक्शिन की मात्रा अधिक है तो तत्काल उत्तेजना आ जाएगी, बात-बात पर आवेश आ जाएगा। ऐसा होना व्यक्तित्व निर्माण में बाधा है पर उसके पीछे जो कारक तत्त्व है, वह है ग्रन्थितंत्र। उस पर ध्यान न दें तो व्यक्तित्व का निर्माण और परिष्कार नहीं किया जा सकता। जब-जब ऐसी स्थिति आए, ध्यान देना चाहिए—कहीं ग्रन्थितंत्र में विकृति तो नहीं आयी है ? उसके स्राव में कहीं कोई गड़बड़ी तो नहीं हुई है ? ऐसे हारमोन्स तो काम नहीं कर रहे हैं, जो व्यक्तित्व को बिगाड़ रहे हैं। जैसे ही शरीर भारी होता है। हम थर्मामीटर लगाकर देखते हैं कि शरीर कहीं ज्वरग्रस्त तो नहीं हो गया है ? हम शरीर के बाहरी लक्षणों की जांच तो कराते हैं, किन्तु ग्रन्थितंत्र का, जिसका हमारे मन पर, स्मृति और चिन्तन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है, जांच कराने की कोई जरूरत नहीं समझते। इससे व्यक्तित्व का निर्माण और परिष्कार प्रभावित होता है।

नाड़ीतंत्र और व्यक्तित्व

दूसरा तत्त्व है नाड़ीतंत्र। हमारे प्राणतंत्र के तीन प्रवाह हैं, जिन्हें प्राचीन ग्रन्थों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाम दिया गया है। आज की वैज्ञानिक भाषा में सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम, पेरा सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम और सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम कहा गया है। अमुक प्रकार की वृत्ति काम कर रही है या अमुक प्रकार का व्यवहार हो रहा है ? हम सोचें, यह क्यों हो रहा है ? कहीं नाड़ीतंत्र में तो कोई गड़बड़ नहीं है ? एक व्यक्ति बहुत आक्रामक बन रहा है, एक बच्चा हर बात पर आक्रामक मुद्रा में आ जाता है, कहीं सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम तो इसके लिए उत्तरदायी नहीं है। एक व्यक्ति हीनभावना से हमेशा ग्रस्त रहता है, प्रतिक्षण भयभीत और शंकाशील रहता है। यह जांच करानी जरूरी है कि कहीं पेरासिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम ज्यादा सक्रिय तो नहीं हो गया है।

शारीरिक सौन्दर्य

शरीर की सुन्दरता और सुलक्षणता भी व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। जयपुर के एक वैद्य थे नन्दकिशोर जी। वे प्रसिद्ध दादूपंथी स्वामी लच्छीराम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जी के शिष्य थे। गुरुदेव सरदारशहर के पास गांव मेलूसर में विराज रहे थे। वैद्य जी ने दर्शन किए। देखते ही उनका ध्यान कानों पर अटक गया। वे बोले—'आचार्यजी ! आपके कानों को देखकर मुझे बुद्ध की स्मृति हो रही है। उन्हीं के जैसे आपके कान हैं।' बाहर का व्यक्तित्व भी बहुत प्रभावित करता है। यह भी एक कारक तत्त्व है व्यक्तित्व का। किन्तु हम उसी पर अटक न जाएं। हमें यह भी देखना है कि शरीर में होने वाला आन्तरिक व्यक्तित्व कैसा है ? नाड़ीतंत्र कितना स्वस्थ है, ग्रन्थितंत्र कितना स्वस्थ है ? प्रेक्षाध्यान में इन दोनों पर बहुत ध्यान दिया गया है।

अध्यापक की समस्या

प्रेक्षाध्यान की अनेक विधियां, प्रविधियां नाड़ीतंत्र और ग्रन्थितंत्र को स्वस्थ बनाने की प्रक्रियाएं हैं। प्राणायाम के कुछ ऐसे प्रयोग हैं, जो नाड़ीतंत्र को संतुलित बना देते हैं। अध्यापक के सामने एक बड़ी समस्या होती है। उसे दो प्रकार के विद्यार्थियों से सामना करना होता है। कुछ विद्यार्थी विद्यालय में बड़े उद्दण्ड होते हैं। वे पूरे विद्यालय के वातावरण को उद्दण्ड बना देते हैं। कुछ इतने कायर, कमजोर और दब्बू होते हैं कि पीछे खिसकते रहते हैं, दुम दबाकर पीछे हटते रहते हैं। इससे अध्यापक के सामने बड़ी समस्या होती है। यदि शिक्षक कुशल है और यह जानता है कि गड़बड़ी कहां है, तो वह नाड़ीतंत्र पर ध्यान देगा, समस्या को समाधान मिलेगा। यदि वह नहीं जानता है तो अभिभावकों से शिकायत करेगा—तुम्हारा लड़का अच्छा नहीं है। माता-पिता लड़के को डांट देंगे, किन्तु समस्या समाहित नहीं होगी।

अध्यापक ने एक लड़के के पिता के पास शिकायत भेजी—तुम्हारा लड़का बहुत बातूनी है, बड़ा उद्दण्ड है। पिता ने उस नोटिस को पढ़ा और उसके नीचे एक नोट लिखकर भेज दिया—आप अभी इसकी मां से नहीं मिले।

केवल शिकायत से बहुत ज्यादा सुधार नहीं होता। तात्कालिक कोई थोड़ा-बहुत अन्तर आ जाता है पर उससे विद्यार्थी के व्यक्तित्व-निर्माण का प्रश्न समाहित नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान-सूत्र

समाधान यह है—परिवर्तन की प्रक्रिया की ओर हमारा ध्यान नहीं जा रहा है। कैसे बदलना चाहिए ? कैसे व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहिए ? इस दिशा में चिन्तन कम है। शिक्षा में इसके समावेश की जरूरत भी नहीं समझी गई। प्राचीन काल में जो विद्यार्थी ज्यादा उद्दण्ड होता था, उसे मुर्गा बना देते थे, पीट देते थे, गोडा-लकड़ी डाल देते थे। ऐसा करने से भी व्यक्तित्व-निर्माण में मदद नहीं मिलती थी। आजकल मारने-पीटने की बात बहुत कम हो गई है। क्योंकि विद्यार्थी इतने तेज हो गए हैं कि पीटने वाले को भी वे पीटने के लिए तैयार रहते हैं। शिक्षक शिकायत कर देते हैं या फिर उपेक्षा कर देते हैं, यह सोच लेते हैं—चलो, जैसा है, वैसा है, अपने को क्या ? इससे निर्माण नहीं होता। जिसे व्यक्तित्व का निर्माण करना होता है, उसे सर्वांगीण दृष्टि से विचार करना होता है कि खराबी कहां है। गुरु को भी चिकित्सक कहा गया है। वह चिकित्सा करता है, निदान करता है कि खराबी कहां है और फिर उस खराबी का इलाज करता है।

संतुलन के प्रयोग

व्यक्तित्व-निर्माण के दो घटक हैं—ग्रन्थितंत्र और नाड़ीतंत्र। प्रेक्षा के प्रयोग ग्रंथितंत्र को संतुलित बनाते हैं। कुछ विद्यार्थी बहुत ज्यादा डरपोक थे। उन्हें तैजस केन्द्र पर ध्यान कराया गया, डर मिट गया। एक युवक ने कहा—मुझे इतना डर लगता है कि किसी के सामने जाते ही कांपने लगता हूं, पूरी बात नहीं कह पाता हूं। आपके सामने खड़ा हूं तो भी डर लग रहा है। वह करोड़पति व्यापारी का लड़का था, व्यवसाय के सिलसिले में तमाम लोगों से उसे संपर्क करना पड़ता था किन्तु किसी से बात करने में उसे झिझक होती थी। उसने प्रयोग किया। स्थिति बदल गई। उसने भावपूर्ण स्वरों में कहा—मेरी सारी समस्या सुलझ गई है। अब मैं लोगों की आंख से आंख मिलाकर निडर होकर बात करता हूं। मुझे कोई कठिनाई नहीं है।

जब हमारा तैजस केन्द्र (नाभिकेन्द्र), जो प्राण ऊर्जा का उत्पादक केन्द्र है, सक्रिय हो जाता है तो भीरुपन अपने आप समाप्त हो जाता है। ग्रन्थितंत्र के संतुलन का एक प्रयोग है चैतन्य केन्द्र पर ध्यान। यह व्यक्तित्व-निर्माण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में बहुत सहायक बनता है। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा, दीर्घश्वासप्रेक्षा आदि प्रयोग भी नाड़ीतंत्र के संतुलन में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। हम शरीर को व्यक्तित्व-निर्माण का साधन बनाएं और शरीर का जो अन्तरंग पक्ष है, उस पर प्रयोग करें, व्यक्तित्व निर्माण की दिशा स्पष्ट होगी।

व्यक्तित्व का एक पक्ष

व्यक्तित्व का एक पक्ष है विचार। मानसिक दक्षता को बढ़ाएं। मानसिक दक्षता व्यक्तित्व-निर्माण का बहुत बड़ा साधन है। जिसमें मानसिक क्षमता है, उसमें अपने आप व्यक्तित्व का निर्माण होगा। मनोबल एक साधारण से व्यक्ति को बहुत बड़ा बना देता है। वह नहीं है तो बड़ा लगने वाला भी बहुत छोटा बन जाता है। ऐसे लोगों को भी देखा है, जो बड़े हृष्ट-पुष्ट थे, किन्तु मनोबल इतना कमजोर था कि जीवन में कुछ नहीं कर पाए। ऐसे लोगों को भी देखा, जिनका शरीर हड्डियों का ढांचा जैसा दिखाई देता था पर मनोबल प्रबल था। गांधी का उदाहरण सामने है। शरीर कैसा था, किन्तु मनोबल इतना प्रबल था, जिसकी कल्पना ही की जा सकती है। प्राचीन भाषा में कहें तो सुमेरु पर्वत को भी हिला देने की सामर्थ्य रखता था। एक बड़े साम्राज्य को उन्होंने हिला दिया। आखिर शक्ति का स्रोत क्या था ? व्यक्तित्व महान् किस आधार पर था ? मात्र मनोबल और संकल्पबल के आधार पर।

शक्ति का स्रोत

संकल्पबल या मनोबल को बढ़ाने वाला तत्त्व है विचारों की निर्मलता। 'मैं किसी के प्रति अनिष्ट विचार नहीं करूंगा,' जिसका यह संकल्प पुष्ट हो गया, उसका संकल्पबल बढ़ता चला जाएगा। मनोबल को क्षीण करता है दूसरे को अनिष्ट चिन्तन। जब प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कराया जाता है, पहला संकल्प होता है—'मैं चित्त की शुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कर रहा हूं।' इससे विचार निर्मल बनते हैं। व्यक्ति किसी का अनिष्ट सोचता है तो उसका अनिष्ट होता है या नहीं, अपना स्वयं का अनिष्ट तो हो ही जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अठारह पाप बतलाए गए हैं। उनमें एक सूची है मनोबल को घटाने वाली। कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद—मनोबल घटाना हो तो इससे बढ़िया सूची आपको दूसरी नहीं मिलेगी। ईर्ष्या, चुगली, आरोप, कलह—चारों का प्रयोग करो, आपका काम हो जाएगा। अगर मनोबल बढ़ाना है तो इनसे बचते रहो। एक ऐसा व्यक्तित्व, जिसके निर्माण की हर कोई अपेक्षा रखता है, निर्मित हो जाता है। सोचना कोई बहुत बड़ी शक्ति नहीं है। यह तो मन का स्वाभाविक कार्य है। शक्ति का स्रोत है मनोबल का विकास।

आज की शिक्षा में विद्यार्थी को मनोबल का अभ्यास नहीं कराया जाता, मनोबल बढ़ाने की प्रक्रिया नहीं बताई जाती। एक भ्रान्ति अवश्य पैदा कर दी गई और वह यह है कि बौद्धिक विकास और मानसिक विकास को एक मान लिया गया। बौद्धिक विकास मानसिक विकास से बिल्कुल भिन्न होता है। मानसिक विकास का मतलब है मनोबल का विकास। बुद्धि और मन एक नहीं हैं। इनके विकास को एक मानना भ्रांति को जन्म देना है।

भाव विशुद्धि

व्यक्तित्व-निर्माण का तीसरा घटक है भावविशुद्धि। मानसिक क्षमता के विकास से भी शक्तिशाली कारक तत्त्व है भावविशुद्धि। यह मन को भी प्रभावित करने वाला फेक्टर है। भाव जगत् हमारा आन्तरिक जगत् है। जैसा भाव वैसा व्यक्ति। सब कुछ भाव पर निर्भर करता है। भावों का परिष्कार हमारे व्यक्तित्व निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। क्रोध का संतुलन, अहंकार का संतुलन, लोभ और कपट का संतुलन—इन चारों का संतुलन करें। इन चारों को उपजीवी कषाय कहा जाता है। इन सबका परिष्कार करना प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया से संभव है। यह तो नहीं कहा जा सकता—ध्यान का अभ्यास करने वाला एकदम वीतराग बन जाता है। ऐसी कल्पना करें तो यह अतिकल्पना होगी। कुछ लोग इस भाषा में बोलते हैं—अमुक आदमी इतनी देर तक ध्यान करता है, फिर भी उसे गुस्सा आता है, लोभ और अहंकार भरा है। ध्यान का अर्थ क्या है ? वह यह नहीं देखता, जिसने ध्यान शुरू किया है, उसमें कुछ अंतर तो आया है। व्यक्ति ने क्रोध, अहं आदि कितना कम किया, यह भी तो देखना चाहिए। ध्यान करके इतनी जल्दी कोई वीतराग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन जाएगा तो फिर आगे क्या करेगा ?

आत्मनिरीक्षण करें

साधना कोई वर्ष, दो वर्ष की प्रक्रिया नहीं है। इसमें तो पूरा जन्म लग जाता है। एक जन्म नहीं, अनेक जन्म खप जाते हैं। हमारी प्रवृत्ति यह है कि हम तत्काल फल चाहते हैं। एक सामान्य-सी शारीरिक बीमारी की चिकित्सा में भी बहुत समय लग जाता है और हम चाहते हैं कि मन की बीमारी, कुछ क्षणों में दूर हो जाए। यह कैसे संभव है ? वीतरागता की साधना सबसे कठिन और दुरूह साधना है। उस मुकाम तक पहुंचना कोई हंसी-मजाक नहीं है, चुटकी बज़ाते ही हो जाने वाला काम नहीं है। हम यह देखें—भावशुद्धि में कितना अन्तर आया। स्वयं का भी आत्मनिरीक्षण करना चाहिए—मैं इतने दिन से प्रयोग कर रहा हूं, मुझमें कहीं कोई अन्तर आया या नहीं। अगर नहीं आया तो क्यों नहीं आया ? अगर आया तो फिर आगे इसमें और विकास करना है। यह क्रमिक विकास की प्रक्रिया है।

अभय का सूत्र

यह भावविशुद्धि हमारे व्यक्तित्व-निर्माण में बहुत सहायक बनती है और इसके लिए सुन्दर आलम्बन बनता है दर्शनकेन्द्र, ज्योतिकेन्द्र और शान्तिकेन्द्र का ध्यान। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है—**भावविसोहिं काउण निब्भए भवइ**—अभय बनने का सूत्र है भावविशुद्धि। आचार्य भिक्षु ने भावविशुद्धि की जो साधना की, उसमें अनेक बार मृत्यु के भय सामने आए। उन्हें कोई डर नहीं लगा। जयाचार्य ने ठीक लिखा—**मरणधार सुध मग लह्यो।** सुध मग का मतलब है भावविशुद्धि। मैं अनेक बार एक पंक्ति को गुनगुनाता हूं—

> **मौत से डरता नहीं मैं, मौत मुझसे डर चुकी है।**
> **मौत से मरता नहीं मैं, मौत मुझसे मर चुकी है।।**

व्यवहार विलक्षण बने

जब यह स्थिति बनती है तब भावविशुद्धि आती है। व्यक्तित्व-निर्माण के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और भी कुछ कारक तत्त्व हैं। जो व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहता है, वह निर्धारित प्रयोगों का अभ्यास करे। व्यक्तित्व का विकास केवल चर्चा से नहीं होगा। यदि आप अभ्यास करें तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है—आपका व्यक्तित्व, आपका व्यवहार विलक्षण बनेगा। दूसरों को भी यह लगेगा—आप में कोई विलक्षणता आयी है, जो सबके मानस को प्रभावित कर रही है। हम अपनी विलक्षणता को इस प्रकार आत्मसात् करें कि वह समाज के आईने में प्रतिबिम्बित हो जाए। इससे आपका व्यक्तित्व निखर उठेगा। यह व्यक्तित्व का निखार ही मनुष्य को ऊंचाइयों के स्पर्श का अवसर देता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनाव-विसर्जन

मनुष्य में कषाय है। कर्मवाद की परिभाषा में कषाय का चक्र काम कर रहा है। वैदिक परिभाषा में रजोगुण और तमोगुण काम रहे हैं। तनाव होता रहता है। तनाव निष्पत्ति है, हेतु नहीं है। तनाव के हेतु बहुत सारे हैं। कर्मवाद की भाषा में मोहकर्म तनाव का सबसे बड़ा हेतु है। मोहकर्म की प्रकृतियां—क्रोध, अहंकार, लोभ, भय, घृणा, वासना--ये सब तनाव पैदा करने वाली हैं। रजोगुण और तमोगुण तनाव पैदा करने वाले हैं। तनाव के कुछ शारीरिक कारण भी हैं।

जीवन की अनिवार्य प्रक्रिया

शरीर की प्रवृत्ति होती है तो तनाव होता है। तनाव के बिना जीवन चलता भी नहीं है। कमरे में कुत्ता घुस आया, उसे निकालना है तो भी तनाव में आना पड़ेगा। किसी ने गलत काम कर दिया, उसे वर्जित करते समय तनाव में आना ही पड़ेगा। तनाव जीवन की एक अनिवार्य प्रक्रिया बना हुआ है। किसी भी क्षण व्यक्ति तनाव की स्थिति में आ जाता है। तनाव आता है और चला जाता है तो ज्यादा भयंकर नहीं होता। फिजिकल तनाव अगर ज्यादा हो जाए तो स्थिति बिगड़ जाती है। केवल प्रवृत्ति ही प्रवृत्ति, काम ही काम, कहीं विश्राम नहीं, ऐसी स्थिति में तनाव इतना भयंकर बन जाता है कि मांसपेशियां भी अकड़ जाती हैं। मानसिक और भावनात्मक तनाव पूरी तरह हानिकारक हैं। शारीरिक तनाव तो कभी-कभी उपयोगी बनता है, थोड़ा-बहुत आवश्यक भी रहता है, किन्तु मानसिक तनाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक नहीं है। एक प्रशासक यह मानता है—अगर तनाव न हो तो हम अपने अधीन काम करने वालों को अपने नियंत्रण में नहीं रख सकते। हमें तो कुछ आवेश भी दिखाना पड़ता है, गुस्सा भी करना पड़ता है। ऐसा मान लिया गया है—तनाव सामान्य स्तर पर होता है तो समस्या नहीं बनता किन्तु जो आदत पड़ जाती है, वह बढ़ जाती है तो समस्या गहराती चली जाती है। आज तनाव विश्व की सबसे बड़ी समस्याओं में एक बन गया है। जैसे गरीबी एक समस्या है, बीमारी एक समस्या है, वैसे ही तनाव भी एक विश्वजनीन समस्या बन गया है।

गलत अवधारणाएं

प्रश्न है—तनाव ज्यादा क्यों होता है ? इसका एक कारण है गलत अब धारणाएं। मिथ्या अवधारणाओं ने तनाव को जन्म दिया है, दे रही हैं और उसका पालन-पोषण भी कर रही हैं। एक अवधारणा बन गई—क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य करनी चाहिए। व्यक्ति छोटा है। उसका व्यवहार अगर अनूकूल नहीं होता है तो वह व्यक्ति के लिए असह्य बन जाता है। व्यक्ति तनाव से भर जाता है। आदमी अपनी गली से जा रहा था। कोई कर्मचारी आया। हाथ नहीं जोड़ा, बस तनाव से भर गया। पुलिस का अफसर आया, सिपाही ने सेल्यूट नहीं दिया। परिणामस्वरूप तनाव में आकर उसे दंडित कर दिया। हमारी इस प्रकार की जो अवधारणाएं बनी हुई हैं, वे अवधारणाएं तनाव पैदा करती हैं।

तनाव के हेतु

लोभ, क्रोध, मादक द्रव्य का सेवन, भय और काम-वासना—ये तनाव के प्रमुख कारण हैं। योग शास्त्र में चित्त की तीन अवस्थाएं बतलाई गई हैं—क्षिप्त, विक्षिप्त और मूढ़। ये तीन अवस्थाएं तनाव का कारण बनती हैं। क्षिप्त अवस्था में मन बिखरा-बिखरा होता है। वह कहीं भी केन्द्रित नहीं होता। सदा चित्त का बिखराव रहता है। आदमी जल्दी तनाव में आ जाता है। जो क्षिप्त अवस्था में रहता है, वह विषयों के प्रति बहुत लोलुप होता है। शब्द सुनने की लालसा, रूप और सुगंध की लालसा, रस और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्श की लालसा—इन विषयों के प्रति क्षिप्त अवस्था में बड़ी गहरी आसक्ति रहती है इसलिए क्षिप्त अवस्था तनाव पैदा करती है। तनाव को ग्रहण करने का काम क्षिप्त अवस्था का है। हम इसकी स्ट्रेज के साथ तुलना करें। स्ट्रेज यानी दबाव। यह दबाव है, विषयासक्ति या मूर्च्छा का। इतना दबाव पड़ता है कि आदमी तनाव में चला जाता है।

दूसरी है विक्षिप्त अवस्था। इस अवस्था में उत्तेजना जल्दी आ जाती है। मामूली-सी घटना पर भी चित्त उत्तेजित हो जाता है, संवेगों पर नियंत्रण नहीं रहता। जब संवेग अनियंत्रित होते हैं तब तनाव स्वाभाविक है।

मूढ़ अवस्था में कुछ भी पता नहीं चलता। व्यक्ति इतना दिग्मूढ़, किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाता है कि वह कुछ भी करने की स्थिति में नहीं रह जाता।

अहेतुक नहीं है तनाव

इन तीन अवस्थाओं की विज्ञान ने शारीरिक आधार पर व्याख्या की है। स्ट्रेस एक दबाव है और स्ट्रेस वह अवस्था है, जहां स्नायविक खींचातानी शुरू हो जाती है। उस स्नायविक खींचातानी के द्वारा स्नायुओं में आकार का परिवर्तन होता है तो वह तनाव बन जाता है। हाइपर टेंशन की स्थिति में काफी भयानकता पैदा हो जाती है। इतनी अकड़न और जकड़न पैदा हो जाती है कि धमनियां सिकुड़ जाती हैं, थक्के जम जाते हैं। ऐसे में किसी को बाईपास सर्जरी करानी पड़ती है, हार्ट का आप्रेशन कराना पड़ता है। यह तनाव अहेतुक नहीं है, स्वाभाविक नहीं है। एक निष्पत्ति है, परिणाम है।

तनाव विसर्जन की प्रक्रिया

हम तनाव-विसर्जन की प्रक्रिया पर चिन्तन करें। एक आध्यात्मिक पक्ष को छोड़कर तनाव विसर्जन की दूसरी कोई प्रशस्त प्रक्रिया हमारे सामने नहीं है। आध्यात्मिक प्रक्रिया सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली प्रक्रिया है। डॉक्टर तनाव की स्थिति में दवा देता है, शामक औषधियों का प्रयोग करता है। ट्रैंक्वेलाइजर और शामक औषधियों को देकर एक बार तनाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को रिलीज करता है किन्तु वह स्थायी नहीं होता। दवा ली, थोड़ी-सी शान्ति मिली, किन्तु उसके बाद फिर वही घटना, वही उत्तेजना और वही तनाव उभर आता है। यह तात्कालिक उपचार है कि दवा देकर सुला दो। जागने पर स्थिति वही की वही रहेगी। इसीलिए शायद महावीर ने कहा था—जो अज्ञानी आदमी निरंतर पाप करता है, उसका सोते रहना ही अच्छा है। तनाव मुक्ति के लिए अध्यात्म की प्रक्रिया को जानना होगा। मूल बात को जाने बिना रसोई नहीं बनती, केवल धुआं की धुआं होता है।

पुराने जमाने की बात है। एक राजा के दो रानियां थीं। एक दिन राजा ने दोनों से कहा—'आज तुम्हें रसोई बनानी है। उसमें ईंधन के रूप में गन्ने का इस्तेमाल करना है।' महाराज का आदेश रानियों ने स्वीकार कर लिया। बड़ी रानी ने सबसे पहले शुरुआत की। गन्ने मंगाए, चूल्हा जलाया। लेकिन इतना धुआं हुआ कि रानी बैठ नहीं सकी। छोटी रानी समझदार थी। उसने अनेक बच्चों को बुला लिया। बच्चों से कहा कि गन्ने चूस लो और उसके छिलके यहीं रख दो। बच्चों ने वैसा ही किया। छिलकों को जलाकर रानी ने रसोई बना ली। धुआं उसे परेशान नहीं कर सका।

निवृत्ति का सूत्र

प्रश्न है—निर्धूम रसोई कैसे बन सकती है ? गीता में ठीक ही कहा गया—**सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिववृताः**। जितने आंरभ हैं, जितनी प्रवृत्तियां है, उन सबके पीछे दोष लगा हुआ है। एक भी प्रवृत्ति ऐसी नहीं है, जिसके साथ दोष न हो। गीताकार ने एक उपमा की भाषा में इसे समझाते हुए कहा—अग्नि जले और धुआं न हो, यह संभव नहीं है। जैसे ईंधन जलने के साथ धुआं होता है, वैसे ही प्रवृत्ति के साथ दोष होता है। प्रवृत्ति को हम कैसे कम करें ? शरीर, मन, वाणी और भाव—इनकी प्रवृत्तियों को कम कैसे करें ? यह निवृत्ति का सूत्र, अध्यात्म का सूत्र तनाव विसर्जन का शक्तिशाली सूत्र है—प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति करो, एक घण्टा प्रवृत्ति की तो दस मिनट उसकी निवृत्ति करो। सामान्य भाषा में इसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्राम कह सकते हैं। यह निवृत्ति भीतर की ओर ले जाएगी। केवल विश्राम ही नहीं देगी, वृत्तियों को भी शान्त करेगी। प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन, यह तनाव विसर्जन का पहला सूत्र है। प्रवृत्ति के साथ लैक्टिक एसिड पैदा होता है। हर प्रवृत्ति के साथ यह रसायन पैदा होता है। निवृत्ति करो, इसकी मात्रा कम हो जाएगी। कायोत्सर्ग करो, इसकी मात्रा कम हो जाएगी। कायोत्सर्ग की खोज अध्यात्म की ऐसी खोज है, जो जीवन में आने वाले तनावों का एक वास्तविक उपचार है। तनाव आया, कायोत्सर्ग किया, तनाव समाप्त। फिर तनाव आया, कायोत्सर्ग की प्रक्रिया अपनाई और तनाव समाप्त।

एक भ्रान्ति

अनेक लोग पूछते हैं—ध्यान की अवस्था में ऐसा अनुभव होता है, जैसे हम वीतराग बन गए हों। ध्यान पूर्ण कर काम में लगते हैं तो फिर वही अवस्था आ जाती है। यह एक भ्रान्ति है और इसको मिटाना जरूरी है। क्या एक घण्टा ध्यान कर हम वीतराग बन जाएंगे ? संवेग, आवेग और कषायों के इतने संस्कार हमारे भीतर भरे हुए हैं कि थोड़ी सी साधना कर हम वीतराग बन जाएंगे, ऐसी कल्पना करना ही मूर्खता है। हमने मात्र एक उपाय खोजा है, जिस उपाय से तनाव का विसर्जन किया जा सकता है। तनाव आए ही नहीं, इसके लिए दीर्घकालिक प्रक्रिया अपनानी होगी, स्थायी इलाज ढूंढ़ना होगा। ऐसा तनाव पैदा करने वाले कारणों को निरस्त करके ही किया जा सकता है और इसके लिए लम्बी साधना की जरूरत है।

सामयिक उपचार : स्थायी उपचार

मूल प्रश्न है—स्थायी उपाय क्या है, जिससे तनाव पैदा न हो ? इसका सबसे सुन्दर उपाय है कायोत्सर्ग के साथ होने वाला भेदविज्ञान। जितना भेदविज्ञान स्पष्ट होगा—पुद्गल अलग, आत्मा अलग, शरीर अलग, चेतन अलग—यह ज्ञान जितना स्पष्ट होगा, तनाव की जड़ पर उतना ही जोरदार प्रहार होगा, तनाव होना ही बन्द हो जाएगा। हम इस भेदरेखा को ठीक से समझें—तनाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आया, कायोत्सर्ग किया, तनाव मिट गया, यह सामयिक उपचार है। भेदविज्ञान सामयिक उपचार नहीं है, यह तनाव की जड़ पर प्रहार है, स्थायी उपचार है।

ज्ञाता द्रष्टा भाव का विकास

तनाव मुक्ति का दूसरा उपाय है ज्ञाता-द्रष्टाभाव का विकास। घटना को जानें, घटना को भोगें नहीं। घटना को जानना एक बात है, भोगना दूसरी बात है। **'ज्ञानी जानाति, अज्ञानी भुंक्ते'** ज्ञानी जानता है, अज्ञानी भोगता है। बहुत बड़ा अन्तर है। जो घटना को जानता है, पर घटना के साथ-साथ बहता नहीं, वह कभी दुःखी नहीं होगा। बहुत सारे लोग ऐसे होते हैं, जो घटना को भोगने लग जाते हैं। किसी की मृत्यु हुई। उससे कोई संबंध नहीं है लेकिन दूसरो को रोता हुआ देख वे भी रोने लग जाते हैं। बडे-बड़े लोग इस तरह प्रवाह के साथ बहने वालों में हैं।

बर्नाडशा नाटक देख रहे थे। नाटक में एक सीन खलनायक का था। परदे पर दुराचार का दृश्य प्रस्तुत हुआ। बर्नाडशा से रहा नहीं गया, तत्काल आगे बढ़े और एक चांटा जड़ दिया। वह कोई साक्षात् घटना तो नहीं थी, लेकिन घटना के साथ आदमी बह जाता है।

जानना और भोगना—इस रेखा को समझें। हमारा अभ्यास हो ज्ञाता-द्रष्टाभाव का। इसकी साधना कठिन है। गहन अभ्यास साध्य है किन्तु इसकी साधना हो जाए तो फिर तनाव का प्रश्न नहीं उठेगा। एक व्यक्ति ने कहा—महाशय ! अमुक आदमी ने आपकी बड़ी कटु आलोचना की। उसने की या नहीं, इसका कोई मतलब नहीं है। किन्तु इसे सुनते ही मन तनाव से भर गया और इतना तनाव बढ़ा कि उसके प्रति शत्रुता का भाव पैदा हो गया। ऐसा इसलिए होता है कि हम ज्ञाता, द्रष्टा नहीं हैं, भोक्ता हैं। व्यक्ति हर बात को भोग लेता है, तनाव पैदा हो जाता है। उसने इस बात की जांच की तो पता चला, वह बात झूठी थी। हम किसी घटना की वास्तविकता को जानने का प्रयत्न नहीं करते। इसीलिए यह सारा होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुनिया का स्वभाव

तनाव मुक्ति का तीसरा सूत्र है—घटना को मूल्य न देना। घटना को महत्त्व देना तनाव का एक कारण बनता है। घटना सामने आए तो यह सोचो—दुनिया में ऐसा ही होता है। बस, बात समाप्त हो जाएगी। पानी ऊंची भूमि पर बरसता है और बह जाता है गड्ढे में पानी आता है। तो गड्ढा भर जाता है। एक वह व्यक्ति होता है, जो ऊंची भूमि पर, ऊंचाई पर अवस्थित है। पानी बरसता है, टिकता नहीं, नीचे चला जाता है। गड्ढा पानी को अपने में भर लेता है। पानी सड़ता रहता है, बदबूदार कीचड़ में परिवर्तित होकर उधर से गुजरने वाले के लिए भी समस्या बनता है। ज्ञाता ऊंचाई पर होता है और भोक्ता गड्ढे के समान होता है। अगर यह चिंतन बना लें कि यह दुनिया है, दुनिया का स्वभाव है, इसमें सब प्रकार के लोग होते हैं, मैं किस-किस के पीछे दौड़ूं ? कब-कब दुःखी बनूं ? क्या मैं दुःखी बनने के लिए ही जन्मा हूं ? यह चिन्तन जैसे ही आएगा, तनाव सारा दूर हो जाएगा, हम तनाव से निष्प्रभावी बने रहेंगे।

ऐसा होता है दुनिया में

पूज्य गुरुदेव के दिल्ली प्रवास की एक घटना है। एक परिचित भाई मेरे पास आया। अच्छा व्यापारी और अच्छा राजनीतिक कार्यकर्ता। मेरे पास बैठा और रोने लगा। ऐसा आदमी रोए, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मैंने कारण पूछा। थोड़ी देर में वह सामान्य और आश्वस्त हुआ। उसने कहा—महाराज ! क्या बताऊं, पांच-सात दिन पहले की घटना है। तीन भाई और हैं। वे काम देखते हैं। मैं सार्वजनिक और राजनीतिक कार्यों में व्यस्त रहता था। अब भाइयों ने कह दिया है कि तुम्हारे हिस्से में कुछ भी नहीं है। पांच-सात लाख रुपया तुम्हारे माथे है, उसे चुकाना है। शेष हिस्से में तुम्हारा कुछ भी नहीं है। उसने व्यथाभरे स्वर में कहा—महाराज ! धन की कोई बात नहीं, पर भाइयों ने मेरे साथ ऐसा धोखा किया, यह बात मुझसे सहन नहीं हो रही है। मैंने कहा—'तुम बड़ी भूल कर रहे हो। इतने समझदार आदमी होकर भी तुम कहां बहे जा रहे हो ? तुम ऐसा मान कर चलो कि दुनिया में ऐसा होता है। ऐसा न हो तो यह आश्चर्य की बात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगी। उसने इस बात को पकड़ा और एक-दो दिनों में बिल्कुल सामान्य हो गया।

धारणा को बदलना, तनाव विसर्जन का स्थायी उपाय है। कायोत्सर्ग आदि-आदि उस ओर ले जाने वाले उपाय हैं, किन्तु जब तक हमारी चेतना का परिवर्तन नहीं होगा, कायोत्सर्ग भी इसका स्थायी उपाय नहीं हो सकेगा। जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होगा, तब तक तनाव आता रहेगा, जाता रहेगा किन्तु सर्वथा विसर्जित नहीं होगा। सम्यग् दर्शन है भेदभाव की अनुभूति

कायोत्सर्ग और शवासन

कायोत्सर्ग शवासन नहीं है। हठयोग में शवासन होता है और प्रेक्षाध्यान में कायोत्सर्ग। शवासन में केवल शिथिलीकरण होता है। कायोत्सर्ग में शिथिलीकरण के साथ तीन बातें और होती हैं—जागरूकता, ममत्व का विसर्जन और भेदविज्ञान। जिस कायोत्सर्ग में जागरूकता नहीं होती, ममत्व का विसर्जन नहीं होता और भेदविज्ञान नहीं होता, वह कायोत्सर्ग कोरा शवासन बन जाएगा, शामक औषधि बन जाएगा। कायोत्सर्ग कोई शामक औषधि नहीं है। प्रेक्षाध्यान में किया जाने वाला कायोत्सर्ग स्थायी उपाय है और इसलिए है कि इसमें ममत्व का विसर्जन होता है। ममत्व अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं है, फिर तनाव कैसे आएगा।

तनाव का स्रोत

तनाव आने का सबसे बड़ा स्रोत है—मेरापन का भाव। आप स्वयं अनुभव करें—आपके नौकर ने आपकी बात ठुकरा दी, थोड़ा गुस्सा करके आप शान्त हो गए। आप सोच लेंगे—चलो नौकर है। यह चला जाएगा तो दूसरा आएगा। आपकी पत्नी ने आपकी बात ठुकरा दी तो वह असह्य पीड़ा का कारण बन जाएगी। क्योंकि ममत्व का धागा जुड़ा हुआ है। सचाई यह है—कोई भी व्यक्ति किसी का नहीं है, सब स्वतंत्र हैं। जैसी आपकी स्वतंत्रता है, वैसे ही नौकर और पत्नी की स्वतंत्रता है। उनकी स्वतंत्रता को ममत्व के आवरण में ढक लेते हैं, इसलिए कष्ट पाते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायोत्सर्ग का मुख्य अर्थ है ममत्व का विसर्जन और भेदविज्ञान। (आत्मा अलग है और शरीर अलग है, यह आध्यात्मिक दर्शन ऐसा बिन्दु है, जहां सारे तनाव अपने आप समाप्त हो जाते हैं, तनाव आने का दरवाजा ही बन्द हो जाता है)

शरण है अध्यात्म

तनाव को समाप्त करने के सामयिक उपचार अनेक हो सकते हैं, दवाइयां भी कुछ हो सकती हैं, आसन भी हो सकते हैं, नशा भी हो सकता है, किन्तु ये क्षणिक उपचार हैं। जीवन भर करते चले जाएं, तनाव आता-जाता रहेगा। तनाव मुक्ति के लिए अध्यात्म ही एकमात्र शरण है।

शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान में तनाव-विसर्जन के उपाय बतलाए गए हैं। मेडिकल साइंस में भी तनावमुक्ति के उपाय बतलाए गए हैं। किन्तु वे सब उपाय 'हस्तिस्नानवत्' हाथी के स्नान की तरह होते हैं। हाथी तालाब में स्नान करता है, साफ हो जाता है। तट पर आकर वह फिर अपने ऊपर कीचड़ उछाल लेता है। कुछ ऐसी ही प्रक्रिया विज्ञान के सन्दर्भ में भी चल रही है। कुछ प्रयत्न करो, तनाव मिटाओ और फिर जैसे के तैसे बन जाओ। जब तक चित्त की निर्मलता नहीं आएगी, तब तक तनाव की समस्या बनी रहेगी। इसलिए आवश्यक है कि चित्तवृति का परिष्कार करें। फिर आगे जाएं एकाग्रता की भूमिका में। फिर उससे भी आगे निरुद्ध की भूमिका में जाएं। जहां निर्विचार की स्थिति है, वहां तनाव का प्रश्न ही कहां है ?

मैं अमनस्क था

दक्षिण प्रदेश की घटना है। एक जैन मुनि कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़े थे। कुछ चरवाहे वहां इधर-उधर घूम रहे थे। उन्होंने ध्यानमग्न मुनि को देखा। वे भी आकर आसपास खड़े हो गए। उसी समय एक काला नाग कहीं से आया और फुफकारने लगा। चरवाहे तत्काल पेड़ों पर चढ़ गए। उन्होंने जोर से आवाज लगाई—'महाराज ! सांप आ रहा है, हट जाइए। लेकिन ध्यानावस्था में अवस्थित मुनि पर उनकी बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरवाहों ने सोचा—अवश्य ही यह कोई बहरा आदमी है। हम क्या करें। सांप ने आकर मुनि के पैरों में कई दंश मारे और वापस चला गया। थोड़ी देर बाद मुनि का ध्यान टूटा। चरवाहे पेड़ से उतरकर मुनि को नमस्कार कर बोले—बाबा, हमने आपको सावधान किया, लेकिन आपने कोई ध्यान ही नहीं दिया। एक काला नाग कहीं से आकर आपको डस गया है। देखिए और जल्दी कोई उपचार कीजिए।

मुनि बोले—'उपचार की कोई जरूरत नहीं।'

'क्या आपको काटा, पता नहीं चला'

'नहीं चला।'

'जहर नहीं चढ़ेगा।'

'नहीं चढ़ेगा। क्योंकि मैं अमनस्क था।'

मरता है भय से

जहां मन होता है, विचार होता है, संवेग वहीं पैदा होते हैं, प्रभावित करते हैं। शरीर में जहर भी जाएगा तो उसे मन ले जाएगा। यह भी निश्चित तथ्य है कि सांप के काटने से दस प्रतिशत मरते हैं, नब्बे प्रतिशत भय से मर जाते हैं। सांप की सैकड़ों प्रजातियों में कुछ गिनती की प्रजातियां ही जहरीली होती हैं किन्तु जैसे ही पता लगता है—सांप ने काट लिया है, फिर जहर की जरूरत नहीं, जहर अपने आप चढ़ जाएगा। याद करने से ही जहर चढ़ जाता है। जहर की कल्पना मन में आयी और जहर चढ़ गया। अमनस्क अवस्था में जहर नहीं चढ़ता।

मर्म की बात

सबसे पहले हम एकाग्रता की भूमिका की साधना करें। पतंजलि ने कहा—दुःख भी विक्षेप के साथ होता है। जहां विक्षेप नहीं है, वहां दुःख नहीं है। यह बड़े मर्म की बात है। हम प्रेक्षाध्यान के द्वारा विक्षिप्त अवस्था के पार जाने का अभ्यास करें। मन की जो चंचल अवस्था है, उसको पार करें और एकाग्रता की भूमिका पर आ जाएं, एक बिन्दु पर टिकने का अभ्यास हो जाए। आसपास कितना भी शोर हो, उससे निष्प्रभावी रहें। हमारा तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारा काम ही भीड़-भाड़ और शोर-शराबे में होता है। एकान्त मिलता कहां है ? यदि एकाग्रता की भूमिका न हो तो कार्य का होना भी संभव नहीं है। इसीलिए यह अपेक्षित है—तनावमुक्ति की जो आध्यात्मिक प्रक्रिया है, उस पर गहरा ध्यान दें, अभ्यास करें, तनाव की भंयकर समस्या से मुक्ति का सूत्र हमारे हाथ में होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय का प्रबंधन

कार्य की निष्पत्ति समय सापेक्ष है। यदि समय के प्रबंधन पर व्यक्ति ध्यान न दे तो सफलता की संभावनाएं धूमिल हो जाती हैं। समय का सम्यक्-नियोजन नहीं होता है, तो कार्य ठीक नहीं होता। मैनेजमेंट के अनेक पहलू हैं। जैसे टाइम का मैनेजमेंट है, वैसे ही स्पेस का मैनेजमेंट होता है। क्षेत्र का सम्यक् नियोजन न हो तो कार्य में सफलता नहीं मिलती। मैनेजमेंट का एक पहलू है भाव। महावीर ने प्रत्येक कार्य की चार दृष्टियों से मीमांसा की—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। इन चारों के समुच्चय से ही कार्य की सफलता संभव बनती है। सब कुछ हो और समय का प्रबंधन न हो तो वांछित परिणाम समय पर नहीं मिल सकता। कार्य और समय को अलग-अलग नहीं बांटा जा सकता। कार्य कोई भी हो, उसके साथ समय आएगा ही। कहीं वह प्रकट हो जाता है, कहीं छिपा रहता है। व्यक्ति अनेक काम करता है और सफलता के लिए उसे कुछ करना ही होता है।

प्राथमिक लक्ष्य

सबसे पहला प्रश्न है—लक्ष्य क्या है ? लक्ष्य का निर्धारण पहली शर्त है। जो बिना लक्ष्य के चलेगा, उसे सफलता नहीं मिलेगी। लक्ष्य के निर्धारण में एक बात पर ध्यान देना अपेक्षित है और वह है प्रायोरिटी की, प्राथमिक लक्ष्य की। सबसे पहले कौन-सा अनिवार्य काम है, जो अभी करना चाहिए। दस वर्ष अथवा पांच वर्ष का लंबा समय है। उसमें अनेक कार्य किए जा सकते हैं। प्राथमिकता का चुनाव यह है—इस वर्ष कौन-सा काम करना है। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महीने में कौन-सा काम करना है अथवा आज कौन-सा काम करना है। प्राथमिकता का चुनाव करना होता है। जो अनिवार्य आवश्यकता है, उसका चुनाव करें। लक्ष्य भी निर्धारित है और उसकी समयावधि भी निश्चित है। किन्तु जब तक लक्ष्य की पूर्ति में केन्द्रित नहीं होंगे, समय बीत जाएगा, कार्य पूरा नहीं होगा। लक्ष्य के प्रति केन्द्रित होना, उसी के प्रति समर्पित होना, उसी के प्रति जागरूक रहना सफलता का पहला सूत्र है।

समय प्रबंधन का सूत्र

प्रेक्षाध्यान का एक सूत्र है भावक्रिया। भावक्रिया समय प्रबन्धन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। जिस समय जो काम करो, उस समय उसके प्रति समर्पित रहो। यह है वर्तमान में जीना। व्यक्ति भविष्य की कल्पना करता है, लक्ष्य बना लेता है किन्तु क्रियाकाल में वर्तमान में रहता है। यदि कल्पना भविष्य की करें और कार्य करते समय भी भविष्य में चले जाएं तो वर्तमान खाली चला जाएगा, कार्य नहीं होगा। वर्तमान के प्रति जागरूक रहने का अर्थ है—यह काम इसी क्षण में ही करना है। बहुत लोग यह अनुभव करते हैं—बस दो मिनट की देर हुई और ट्रेन छूट गई। यह दो मिनट की शिकायत चलती रहती है। ठीक समय का नियोजन नहीं होता है तो ट्रेन छूट जाती है। जिस समय जो काम करना है, उस समय उसके प्रति समर्पित हुए बिना सफल नहीं हो सकते।

मानव संसाधन

प्रश्न है—लक्ष्य पूर्ति के संसाधन क्या हैं ? प्रेक्षाध्यान के सन्दर्भ में चर्चा करें तो उसके दो संसाधन हैं—एक मानव संसाधन और दूसरा पदार्थ संसाधन। जो लोग कारखानों का निर्माण और राज्य व्यवस्था के संचालन पर विचार करते हैं, समय नियोजन की दृष्टि से उनके पास तीन संसाधन हो जाते हैं—मानव संसाधन, पदार्थ संसाधन और अर्थसंसाधन। किन्तु जब हम अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य में चर्चा करते हैं तो धन प्रमुख संसाधन नहीं हो सकता। एक व्यक्ति ने सोचा—मन बहुत विक्षिप्त है, क्षिप्त है, इसके नियंत्रण में एक वर्ष का समय लग जाएगा। संकल्प कर लिया—मैं एक वर्ष में बिल्कुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकाग्रता की भूमिका में पहुंच जाऊंगा। उसे इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए मानव संसाधन पर विचार करना होगा। कौन गुरु होगा, जो वहां तक पहुंचा दे। बहुत लोग अनेक वर्ष ध्यान करने के बाद भी एकाग्रता की स्थिति में नहीं पहुंच पाते। वे निराश होकर कहते हैं—दस वर्ष तो हो गए, किन्तु मन की एकाग्रता नहीं सध रही है। एक भाई ने कहा—बहुत वर्षों से ध्यान कर रहा हूं, पर मन की चंचलता कम नहीं हो पा रही है। इसके लिए आवश्यक है शिक्षक और पथदर्शक, जो विधि बताए, अभ्यास ठीक कराए और यह विश्वास जगा सके—इस विधि से तुम अपने लक्ष्य तक पहुंच सकते हो।

पदार्थ संसाधन

दूसरा तत्त्व है पदार्थ संसाधन। वस्तु सामग्री भी बहुत आवश्यक है। ध्यान की भी वस्तु होती है। ध्यान की वस्तु का चयन करें, जिससे लक्ष्य तक शीघ्र पहुंचा जा सकता है। द्रव्य का योग प्रत्येक वस्तु में होता है। हम कोई भी काम करें, निमित्त की भी आवश्यकता होती है। केवल उपादान पर ही हम चल नहीं सकते। हमारी सारी संरचना इस प्रकार की है, जिसमें निमित्त और उपादान—दोनों की अपेक्षा रहती है। हम द्वन्द्वात्मक जीवन जीते हैं, द्वन्द्व की दुनिया में जीते हैं, इसलिए दोनों पर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है। जहां उपादान जरूरी है, वहां साथ में निमित्त भी जरूरी है। हम एकान्त निश्चय में चले जाएं—जैसा उपादान है, मूल कारण है, वैसा हो जाएगा। यह किसी और दुनिया में होता होगा, हमारी द्वन्द्वात्मक दुनिया में तो ऐसा नहीं होता। उसमें हमेशा निमित्त की अपेक्षा रहती है और इसीलिए पदार्थ संसाधन की उपयोगिता से नकारा नहीं जा सकता।

चुनाव करें ?

आवश्यक काम का चुनाव करना होता है। जीवन में कार्यों की कोई कमी नहीं है, पर जो सबसे अधिक आवश्यक है, उसका चुनाव करें। हम ध्यान का निदर्शन लें। एक लक्ष्य बना लिया—एक वर्ष में एकाग्रता की भूमिका पर पहुंचना है तो उसके लिए क्या करें ? उसके लिए आवश्यक है—दीर्घश्वास का प्रयोग, कायोत्सर्ग का प्रयोग। ये साधन वहां तक ले जाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले हैं। कुछ लोग अस्थिर मनोवृत्ति के होते हैं। कोई नई चीज अच्छी दिखाई देती है तो उस तरफ मुड़ जाते हैं। वे पहली वस्तु का त्याग कर सोचते हैं—यह बहुत अच्छा विकल्प है। फिर कोई तीसरा विकल्प आता है तो यह कहते हुए उस तरफ चले जाते हैं—यह तो और भी अच्छा है। चौथा विकल्प आता है तो उसको भी अपना लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों को कभी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती। उनके समय का नियोजन भी सम्यक् नहीं हो सकता। सफलता के लिए जरूरी है कि जो अत्यन्त आवश्यक है, उसका प्रयोग करें, उसे महत्त्व दें। जो व्यर्थ की बातें हैं, उसमें समय को न लगाएं। एक सूत्र इसके साथ जोड़ना आवश्यक है और वह है—स्वीकार और अस्वीकार—दोनों का प्रयोग। वह व्यक्ति सम्यक् रूप से समय का नियोजन नहीं कर सकता, जो अस्वीकार को नहीं जानता, निषेध करना नहीं जानता।

क्या प्रतीक्षा पूरी होगी ?

चुरू जिले में एक कस्बा है राजलदेसर। वहां एक सेवक था। घर से सुबह निकलता। किसी सेठानी ने कहा—सेवकजी ! बाजार से सब्जी लेते आओ। वह तुरन्त झोला लेकर सब्जी लेने चल दिया। रास्ते में किसी ने कहा—सेवकजी ! आज तो दूध नहीं आया, कहीं से दूध दुहा कर लेते आओ। वहां से बर्तन लेकर दूध लेने चल पड़ा। थोड़ी दूर आगे गया। किसी ने पर्ची पकड़ा दी—सेवकजी ! मेडिकल स्टोर से जरा यह दवाई लेते आओ। वह पर्ची लेकर दवाखाने की ओर मुड़ गया। वह बस स्टैण्ड पर पहुंचा। वहां पर एक सेठ ने कहा—रतनगढ़ से लड़की आने वाली है। वह अभी आयी नहीं है। तुम रतनगढ़ से उसे लेकर आ जाओ। वह सेठ से पैसा लेकर रतनगढ़ जाने वाली बस में बैठ गया। अब पीछे साग-सब्जी वाले प्रतीक्षा कर रहे हैं, दूध की प्रतीक्षा की जा रही है, दवा का इंतजार हो रहा है। क्या वे उन्हें मिलेंगे ? क्या उनकी प्रतीक्षा पूरी होगी ? रतनगढ़ से लौटने पर भी मिलेंगे या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

अस्वीकार करना सीखें

जो मना करना नहीं जानता, वह समय का नियोजन नहीं कर सकता। समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का सम्यक् नियोजन वही कर सकता है, जो 'ना' कहना जाने, जिसमें अस्वीकार की शक्ति हो। जिन लोगों ने केवल स्वीकार को ही शक्ति माना है, वे भ्रम में हैं। अस्वीकार के बिना स्वीकार की शक्ति कमजोर हो जाती है। हां और ना—ये दोनों शब्द हमारी जीवन की दिशा का निर्धारण करते हैं। हां जरूरी है तो ना भी उससे कम जरूरी नहीं है। समय नियोजन के लिए तो 'ना' बहुत ही जरूरी है। जिनमें ना कहने की क्षमता नहीं है, वे दूसरों को भी धोखा देते हैं, अपने को भी धोखा देते हैं। उन्हें यह उपालम्भ भी सुनना पड़ता है—आपने मेरा इतना समय बर्बाद कर दिया, पहले ही मना कर देते। यह बहुत आवश्यक है कि हम 'अस्वीकार' को भी समझें।

टाइम मैनेजमेंट : स्वरोदय

समय का नियोजन और प्रबंधन क्यों आवश्यक है ? वह इसलिए है कि हमारा हर कार्य काल सापेक्ष चलता है। पाश्चात्य विचारकों ने टाइम मैनेजमेंट के जो सूत्र दिए हैं, वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु वे आत्मनिरीक्षण से कुछ भिन्न नहीं हैं। ऐसा लगता है—उन्होंने आत्मनिरीक्षण को ही एक भिन्न नाम से प्रस्तुत कर दिया। हम प्राचीन भारतीय चिन्तन को देखें। एक सिद्धान्त है स्वरोदय का। भारत में स्वरोदय का बहुत विकास हुआ है। मैं मानता हूं—टाइम मैनेजमेंट का जो सूत्र है, उसके अंतरंग पक्ष में स्वरोदय का बहुत शक्तिशाली सूत्र है। स्वरोदय शास्त्र में स्वास्थ्य पर विचार किया गया, सफलता पर विचार किया गया, जय-पराजय पर विचार किया गया। किस समय किस व्यक्ति से बात करनी चाहिए। किस समय किस व्यक्ति से मिलना चाहिए, किस समय अपने नेता के सामने बात रखनी चाहिए, जिससे सफलता मिले, पराजय न हो। स्वरोदय में इस पर बहुत चिन्तन किया गया। स्वरोदय में जहां स्वर का संबंध है, वहां काल का भी संबंध है।

कालचक्र : स्वर-चक्र

काल और स्वर—दोनों में अंतः संबंध हैं। सूर्योदय से स्वर प्रारंभ होता है। सूर्योदय के समय किस स्थिति में कौन-सा स्वर काम कर रहा है ? चन्द्रस्वर काम कर रहा है या सूर्यस्वर काम कर रहा है ? अधिकारी को किसी की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियुक्ति करना है, वह किस समय किस स्वर में करे ? किस समय कौन-सा स्वर चलता है, इसका बोध आवश्यक है। क्योंकि काल के साथ स्वरचक्र चलता है। कालचक्र और स्वरचक्र—दोनों साथ-साथ चलते हैं। किस काल में कौन-सा स्वर चलता है और उस समय कार्य करने से क्या होता है, यह जानना बहुत जरूरी है। यह स्वरोदय का विज्ञान समय-प्रबंधन का बहुत बड़ा विज्ञान है।

काले कालं समायरे

आज स्थितियां बदली हैं। हमारी दिनचर्या का क्रम समय नियोजन के साथ जुड़ा था। भगवान महावीर ने एक सूत्र दिया—'**काले कालं समायरे**।' इस सूत्र की व्याख्या सूत्रकृतांग में मिलती है— '**अन्नं अन्नकाले, पाणं पाणकाले, लेणं लेणकाले, सयणं सयणकाले**—अन्न के समय अन्न खाओ, पानी पीने के समय पानी पीओ। अन्न और पानी का भी समय होता है। सूक्ष्मता में जाएं तो हर क्रिया का एक समय है। सामान्य जानकारी वाले व्यक्ति भी इस बात को जानते हैं कि खरबूजा किस समय खाना चाहिए, अमरूद कब खाना चाहिए ? बारह बजे के बाद अमरूद नहीं खाना चाहिए। विशेषज्ञों ने हर क्रिया के लिए समय निर्धारित किए हैं, किन्तु हम कम से कम दो कार्यों के समय का निर्धारण कर लें—सोना कब और उठना कब ? कब खाना और कब पानी पीना ? इनका समय निर्धारित कर लें तो समय का बहुत अच्छा नियोजन हो जाएगा।

ब्रह्ममुहूर्त में क्यों जागें ?

भारतीय समयविज्ञों ने, जो समय का नियोजन करना जानते थे, उठने का समय का निर्धारित किया ब्रह्ममुहूर्त। प्रातः लगभग चार बजे का समय जागने का समय है। यह समय क्यों निर्धारित किया ? इसका कारण भी खोजें। प्राचीन भाषा में कहा गया—ब्रह्ममुहूर्त में जागने वाले का दिन बहुत अच्छा बीतता है और वह बहुत अच्छा जीवन जीता है। आज इस सचाई की वैज्ञानिक व्याख्या भी हो चुकी है। एक रसायन है सेराटोनिन। वह मन की शान्ति और प्रसन्नता के लिए उत्तरदायी है। सेराटोनिन के स्राव का समय सवेरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ठीक चार बजे का है। उस समय आदमी जागरूक रहता है तो पूरे दिन मस्तिष्क संतुलित रहता है और ठीक काम करता है। जो लोग उस समय सोते रहते हैं, उनके सेराटोनिन का स्राव ठीक से नहीं होता। फलस्वरूप तनाव, बेचैनी, चिड़चिड़ापन, उदासी आदि हावी रहते हैं। ब्रह्ममुहूर्त में जागृत रहना हमारी परंपरा है। पूज्य गुरुदेव के साधुजीवन के सत्तर वर्ष हो गए। कितने दिन वे चार बजे न उठे, यह गिनना पड़ेगा। इन सत्तर वर्षों में शायद पन्द्रह-बीस दिन ही गिनने पर निकलें। एक नियमित क्रम चला और उसका परिणाम है—गुरुदेव का मस्तिष्क आज भी उतना ही स्वस्थ है, जितना बीस वर्ष के युवक का है। इसका कारण क्या है ? हम कारण का अनुशीलन करें।

गति का रहस्य

छापर की घटना है। एक भाई ने कहा—आचार्यश्री ! आप सत्तर वर्ष के हैं, फिर भी इतनी तेज गति से चलते हैं। मैं साठ का ही हूं और चल नहीं सकता। मैंने पूछा—क्या मिठाइयां खाते हो ? बोला—खूब खाता हूं। मैंने कहा—बस यही अन्तर है। गुरुदेव चीनी भी नहीं खाते और तुम मिठाइयां खूब खाते हो। चीनी छोड़कर देखो, तुम भी चलने लग जाओगे।

हर घटना के पीछे कोई न कोई कारण होता है। बहुत महत्त्व है चार बजे उठने का। नौ-दस बजे सो जाएं, यह भी आवश्यक है। दिन भर विश्रान्ति के बाद सारे तंत्र विश्राम चाहते हैं। उस समय हम जागने का प्रयत्न करते हैं तो भीतर से प्रतिक्रिया होनी शुरू हो जाती है और जो नींद का समय है, वह अतिक्रान्त हो जाता है। लीवर फंक्शन करे, उस समय न खाओ तो पाचनतंत्र कमजोर हो जाएगा। नींद का समय आए और नींद न लो तो नींद रूठ जाएगी। हम उसका आदर नहीं करते हैं तो वह हमारा आदर क्यों करेगी ? फिर नींद की गोलियों से उसे मनाना पड़ता है।

कहावतों में सच

जागने का अपना समय है, सोने का अपना समय है। खाने का अपना समय है और पानी पीने का अपना समय है। **लेणं लेणकाले**—बैठने का भी अपना समय है। ठीक समय पर काम करें। बहुत सारी पुरानी कहावतें इसी सचाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की ओर संकेत करती हैं—'अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत' या 'समय चूकि पुनि का पछताने'—जिस समय काम करना था, उस समय नहीं कर सका, इसका पश्चात्ताप कभी मिटता नहीं है। समय का अतिक्रमण व्यक्ति को अनेक उपलब्धियों से वंचित कर देता है।

जरूरी है कार्यसूची

समय प्रबंधन के लिए कार्यसूची बनाना भी जरूरी है। इस सप्ताह में क्या करना है ? प्रतिदिन की भी कार्यसूची होनी चाहिए। आज हमें क्या करना है ? इसका निर्धारण अपेक्षित है। जिनके पास काम अधिक होते हैं, बहुमुखी होते हैं, वे प्रतिदिन की कार्यसूची बनाते हैं। जिनके पास कुछ खास काम नहीं हैं, वे काम का कोई नियत समय नहीं रखते, कुछ भी कभी भी कर लेते हैं, किन्तु जिनका कार्य बड़ा है, वे सूची के आधार पर उनका निर्धारण करते हैं। जैन मुनि के लिए कुछ समय निश्चित हैं। नियत समय पर प्रतिक्रमण, वंदना, प्रवचन—यह समय-श्रृंखला अटूट चलती है। ध्यान के लिए कुछ विशेष नियम हैं। जिस समय ध्यान करो, उसी समय ध्यान करो, जिस समय मंत्र का जप करो, उसी समय प्रतिदिन जप करो। इससे काल का सातत्य (कान्टीन्युटी) रहेगा। कान्टीन्यूटी का मतलब है—नैरंतर्य—निरंतरता रहे। यह नहीं होना चाहिए कि आज ध्यान किया और कल छूट गया। दो दिन ध्यान किया और फिर पांच दिन छोड़ दिया। इससे कोई सफलता नहीं मिलेगी। सफलता के लिए कार्यसूची जरूरी है और जिन्हें कुछ विशिष्ट करना है, उनके लिए तो बहुत आवश्यक है।

निरीक्षण कमजोरी का

समय एक प्रबंधन का एक सूत्र है—अपनी कमजोरी का निरीक्षण। वह कौन-सी कड़ी है, जो कमजोर है और लक्ष्य में बाधा दे रही है। जब तक कमजोरी की खोज नहीं की जाएगी, उस पर ध्यान नहीं दिया जाएगा, गति ठीक नहीं हो सकेगी, लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकेगी। मानव का स्वभाव है कि वह अच्छी बात ही सुनना चाहता है। सब ठीक है, यह समझ लेने पर बहुत बार धोखा हो जाता है। चाटुकार ठीक समझ लेने का भुलावा देते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और आज की भाषा में कहा जा सकता है—चमचा लोग बहुत धोखा देते हैं। जो यथार्थवादी लोग हैं, वे कमजोरी को भी बता देते हैं। व्यक्ति कमजोर पक्ष का विश्लेषण करे। यह पक्ष हमारा कमजोर है, इसलिए हमारा कार्य पूरा नहीं हो रहा है, कार्य में सफलता नहीं मिल रही है। कमजोर पक्ष की ओर ध्यान केन्द्रित करना, यह समय प्रबंधन का महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

समय प्रबंधन के सूत्र

आज इस पर बहुत बल दिया जा रहा है कि समय को अपने धन के समान संभालें। प्राकृत का सूक्त है—**खणं जाणाहि**—समय को जानो। पूज्य गुरुदेव का एक बहुत सुन्दर गीत है, उसका ध्रुवपद है—

जागे नव संस्कार समय का अंकन हो

समय का प्रबंधन जीवन का प्रबंधन है। इस आधार पर टाइम मैनेजमेंट के अनेक सूत्र सुझाए गए हैं—

- प्राथमिकताएं निश्चित करें।
- यथासंभव योग्य व्यक्तियों को कार्य सौंपे। सारा कार्य अपने जिम्मे ही न रखें।
- प्रत्येक कार्य को उद्देश्य एवं लाभ की दृष्टि से करें।
- एक ही परिश्रम दो जगह न हो, न ही उसकी पुनरावृत्ति करनी पड़े, इसका ध्यान रखें।
- दायित्व ओढ़ने का साहस रखें एवं निर्णय करने में तत्परता रखें।
- जहां 'ना' कहने की अपेक्षा हो, वहां 'ना' कहना सीखें।
- समय का ढांचा निर्धारित कर तदनुसार ही सारा कार्य करें। समय की सीमा का पालन करें। आवश्यकतानुसार पूरा नियंत्रण अपने हाथ में रखें।

समय के नियोजन में असफल होने का अर्थ है असफल होने का नियोजन करना। जो समय का सम्यक् नियोजन करना जानता है, सफल जीवन का गुर पा लेता है। सम्यक् नियोजन सफलता का आधार है। कहा गया—अगर आठ घण्टे पेड़ काटने में लगाना तो छह घण्टे पेड़ काटने वाली कुल्हाड़ी को तेज करने में लगाओ। यह समय नियोजन का विवेक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय और आप

हमारी प्रवृत्तियां काल सापेक्ष चलती हैं, उन सारी प्रवृत्तियों का ठीक अंकन करें। ध्यान का निश्चित समय होता है। अभी आधा घण्टा ध्यान करना है, चालीस मिनट ध्यान करना है या एक घण्टा ध्यान करना है तो हमारी मानसिकता वैसी ही समयबद्ध बन जाती है। मस्तिष्क में समय इस तरह फिट हो जाता है कि ठीक समय आया और तत्काल ध्यान करने का मन हो जाएगा। यह स्थिति बने, इसके लिए जरूरी है कि पहले उसे फीड करें। इसलिए हम समय का, जो हमारे कार्य की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, सम्यक् मूल्यांकन और नियोजन करें। जिस समय जो करणीय है, उस समय वही करें। समय आपके साथ चले और आप समय के साथ चलें, यह एकात्मकता सफलता का वरदान बन सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्व-प्रबन्धन

आदमी दूसरों को देखता है, दूसरों की खोज करता है। यह हमारी इन्द्रियों द्वारा प्रदत्त प्रकृति बन गई। ध्यान का मुख्य लक्ष्य है—अपनी खोज करना अपने आपको समझना। सेल्प मैनेजमेंट की बात अपनी खोज की बात है। इसका विकास पाश्चात्य चिन्तन में हुआ है। इस पर्सनल मैंनेजमेंट और अध्यात्म की व्यवस्था को तुलनात्मक दृष्टि से आमने-सामने रखें तो ऐसा प्रतीत होगा कि अध्यात्म का पुराना चिन्तन नए परिवेश, नई भाषा और नए शब्दों में व्यक्त हो रहा है।

मैं कौन हूं

सेल्फ मैनेजमेंट का पहला विषय अपनी खोज या अपने जीवन का नक्शा बनाना है। उसका सूत्र है—मैं कौन हूं (Who am i ?)। महर्षि रमण इस सूत्र को बहुत दोहराते थे। उनकी साधना का यह विशिष्ट सूत्र था—मैं कौन हूं ? सेल्फ मैनेजमेंट का भी पहला सूत्र है—मैं कौन हूं ? इसे पढ़कर महावीर के आचारांग सूत्र का पहला पाठ याद आता है—मैं कौन हूं, कहां से आया हूं और वर्तमान में किस स्थिति में हूं ? मुझे कहां जाना है ? एक ही सत्य, भिन्न भाषा, भिन्न परिप्रेक्ष्य में व्यक्त हुआ है। आखिर अपने को छोड़कर दुनिया में कोई चिन्तन नहीं चलता, कोई व्यवस्था नहीं चलती। अपने आपको तो देखना ही पड़ता है। औद्योगिक सफलता हो, राजनैतिक या धार्मिक सफलता, सबके केन्द्र में है अपने आपका निरीक्षण, अपने आपकी खोज।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी धारणाओं को देखें

स्व-प्रबंधन का दूसरा सूत्र है अपनी धारणाओं को देखना। व्यक्ति धारणा के आधार पर चलता है। जैसी धारणा बना ली, उसी के आधार पर चलता है। यह अच्छा है, ऐसी धारणा बना ली तो उसे अच्छा मानेंगे, यह बुरा है, यह धारणा बन गई तो फिर उसे बुरा ही मानेंगे। एक व्यक्ति जो सामने खड़ा है, वह वास्तव में अच्छा है या बुरा है, यह निर्णय करना कठिन होता है किन्तु जो एक धारणा बना ली, वह धारणा अपने बारे में हो या किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में, व्यक्ति की दृष्टि का केन्द्रबिन्दु बन जाएगी। एक कसौटी है धारणा। धारणा से हम अपने आपको देखते हैं और धारणा से ही हम दूसरों को भी देखते हैं।

दूसरों की धारणा से

स्व-प्रबंधन का तीसरा सूत्र है—दूसरों के द्वारा प्रदत्त धारणा से देखना। यह बड़ी कठिनाई है। व्यक्ति कभी अपने आप पर विश्वास नहीं करता। दूसरा कहता है—तुम अच्छे हो तो वह अच्छा मान लेता है। दूसरा कहता है कि तुम बुरे हो तो वह बुरा मान लेता है। अच्छा कहा जाता है तो अहं भावना में चला जाता है। बुरा माना जाता है तो हीनभावना में चला जाता है।

प्रोफेसर के पास एक आदमी आया और बोला—प्रोफेसर साहब ! आप तो बहुत अच्छे आदमी हैं। आपने ऐसा श्रम किया कि मेरा लड़का उत्तीर्ण हो गया। अध्यापक अहं में चला गया। मन में सोचने लगा—मैं कितना अच्छा पढ़ाता हूं। थोड़ी देर के बाद दूसरा आदमी आया। उसने कहा—आप कुशल और सक्षम नहीं हैं, अयोग्य हैं। मेरा लड़का पढ़ने में बहुत तेज है, किन्तु आप ठीक से पढ़ाते नहीं, श्रम नहीं करते, इसलिए वह फेल हो गया। प्रोफेसर साहब संकोच में पड़ गए, हीन भावना से ग्रस्त हो गए।

कठपुतली मत बनो

आदमी दूसरों द्वारा प्रदत्त धारणाओं से अभिभूत होता है। कभी अपने आपको बड़ा मान लेता है, कभी छोटा मान लेता है। हमारा जीवन दूसरों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा प्रदत्त धारणा से बहुत चलता है। इसीलिए अध्यात्म ने यह सूत्र दिया था—तुम आत्म-निरीक्षण करो, पर-परीक्षण के आधार पर मत चलो, दूसरे के हाथ की कठपुतली मत बनो। अपने भाग्य की डोर दूसरों के हाथ में मत दो, अपने ही हाथ में रखो। मैं कैसा हूं, इसका निर्णय स्वस्थ अवस्था में स्वस्थ चिन्तन के समय जैसा मैं कर सकता हूं, शायद दूसरा नहीं कर सकता। दूसरे की अपनी धारणा है, वह अपने स्वार्थ और अपने प्रयोजन से देखता है। उसके आधार पर स्वयं का वैसे ही व्यवस्थापन हो जाएगा तो व्यक्ति सफल नहीं हो सकेगा। स्व-व्यवस्थापन के लिए, स्व-नियोजन के लिए बहुत आवश्यक है आत्म-परीक्षण पर भरोसा करना और आत्मविश्वास को प्रबल बनाए रखना।

योग्यता का विकास

स्व-प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—अपनी योग्यता का विकास। अपने में जो है, उसे देखो। अपने में जो कमियां हैं, उन्हें भी देखो। अपने में जो अच्छाइयां हैं, उन्हें भी देखो। **णो हीणे णो अइरित्ते**—न हीन मानो, न अतिरिक्त मानो। यथार्थ का मूल्यांकन करो और फिर अपनी योग्यता का विकास करो, अपनी इच्छाशक्ति का विकास करो, कल्पनाशक्ति, चिन्तनशक्ति, स्मृतिशक्ति और अन्तर्दृष्टि का विकास करो। ये सारी बातें प्रेक्षाध्यान से जुड़ी हुई हैं।

प्रेक्षाध्यान के सन्दर्भ में कहा गया—कल्पनाशक्ति का विकास करो, किन्तु उसका दुरुपयोग मत करो। संकल्पशक्ति का विकास करो, पर उसका दुरुपयोग मत करो। शक्ति का विकास होता है किन्तु यदि वह व्यर्थ में खर्च होती है तो विकसित शक्ति निकम्मी चली जाती है। जिस समय जो काम करना है, उस समय वही काम करो। अभी कल्पना करने बैठे हो तो कल्पना ही करो। चिन्तन करने के लिए बैठे हो और कल्पना बीच में बाधक बन जाए तो उसका दुरुपयोग हो जाएगा। भोजन के लिए बैठे हो और कल्पना करनी शुरू कर दी तो न ठीक से भोजन हो पाएगा, न कल्पना हो पाएगी। ठाणं सूत्र में कहा गया है—**अनन्नमणे**—अन्य मन न हो। केवल एक मन चले, दूसरा मन बीच में न आए। नियोजन और व्यवस्थापन का यह कौशल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान के द्वारा बहुत प्राप्त होता है। ऐसा अभ्यास डालें कि जिस समय जो करें, वही करें।

यही साधना है

एक महान् साधक से पूछा गया—आपकी साधना क्या है ?

वह बोला—मेरी साधना बहुत सरल है।

'क्या है वह साधना ?'

'मेरी साधना यह है कि भूख लगती है तो खा लेता हूं और नींद आती है तो सो जाता हूं।'

'क्या यही साधना है' आपकी ?

'हां'

उसने कहा—'यह तो बहुत सीधी बात है। मैंने तो सुना था कि साधना बड़ी जटिल बात है। यह तो मैं भी करता हूं।'

'हां, यही साधना है।' साधक ने यह कहते हुए प्रश्नकर्ता को निमंत्रण दिया—'आज आप मेरे साथ भोजन करें।'

प्रश्नकर्ता ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

दोनों ने साथ में भोजन किया। भोजन के उपरान्त साधक ने पूछा—'भोजन के साथ क्या-क्या किया ?'

'खूब चिन्तन किया। पूरे एक सप्ताह की योजना बना ली कि इस सप्ताह क्या-क्या करना है ?'

'फिर आपने भोजन कहां किया ? दिमाग तो लगा था योजना बनाने में। तुम्हारी चेतना ने तो भोजन किया नहीं, केवल जड़ शरीर यांत्रिक क्रिया करता रहा।'

'और आपने क्या किया ?'

'मैंने सिर्फ भोजन किया, भोजन के दौरान उसकी हर क्रिया को जानता रहा। इसके सिवाय मेरे मन में और कोई विकल्प नहीं उठा।'

एक साधक व्यक्ति के लिए भोजन भी साधना है। ध्यान का यही परिणाम है कि हम केवल जानें, भोजन करना है तो केवल भोजन करें, चलना है तो केवल चलें। यह केवल वाली बात समझ लें, अपनी योग्यता का विकास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगा, ध्यान का महत्त्वपूर्ण सूत्र समझ में आ जाएगा।

हम कार्य से व्यस्त नहीं बनते। हमारी व्यस्तता व्यर्थ के विकल्पों से बनती है। हम केवल काम करना नहीं जानते। कार्य के बीच में नाना विकल्प आते रहते हैं, बाधा डालते रहते हैं और हमारा काम श्लथ बन जाता है।

विस्मृति की समस्या

आज की एक बड़ी समस्या है—स्मृति की शक्ति का ह्रास। हमने देखा—अस्सी वर्ष का, नब्बे वर्ष का आदमी है, फिर भी उसकी स्मृति बड़ी अच्छी है किन्तु युवा विद्यार्थी इस समस्या से पीड़ित है। स्मृति जाती है बाधाओं के कारण। बाधाएं स्मृति को दबाती रहती हैं, स्मृति की ग्रन्थियां कमजोर और श्लथ बन जाती हैं। अगर 'केवल' की बात को जान लें तो स्मृति की समस्या नहीं रहेगी।

स्व-नियोजन

प्रबंधन का एक सूत्र है—स्व-नियोजन। अपना नियोजन कैसे करें ? बहुत आवश्यक है, अपना नियोजन, अपनी शक्ति का नियोजन। हम व्यवस्था करना नहीं जानते, इसलिए हमारी शक्ति बिखर जाती है। शिष्य ने गुरु से निवेदन किया—भन्ते ! मैं चाहता हूं—आप मेरा नियोजन करें। आप मुझे सेवा में लगाना चाहते हैं या स्वाध्याय में लगाना चाहते हैं ? जिसमें लगाना चाहते हैं, उसमें आप मेरा नियोजन करें। भगवान् महावीर ने एक गृहस्थ के लिए बारह व्रतों की आचारसंहिता दी। वह आचारसंहिता स्व-नियोजन की आचारसंहिता है। सेल्फ मैनेजमेंट का एक सूत्र है—मैनेजिंग योर नीड्स—अपनी आवश्यकताओं का नियोजन करना। महावीर ने इसी आधार पर बारहव्रतों की सूची दी थी। परिग्रह जरूरी है, धन के बिना काम नहीं चलता। खाना, पीना, कपड़े पहनना, मकान बनाना, ये सारी बातें जरूरी हैं, पर इनके साथ अपनी आवश्यकताओं का नियोजन भी अपेक्षित है। हमने भ्रान्ति से आवश्यकता, मानदण्ड—सबको एक मान लिया। वास्तव में आवश्यकता है क्या ? इसका चिन्तन करें तो प्रवृत्ति बहुत सिमट जाएगी। एक आदमी में क्षमता है तो वह आवश्यकताओं का परिसीमन कर लेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य की चिन्ता कहां है ?

इस सन्दर्भ में एक प्रश्न उभरता है—एक व्यक्ति कारखाना चलाता है, हजारों-हजारों मजदूरों को काम मिलता है। यदि वह अपनी आवश्यकता का संयम कर लेगा तो हजारों आदमियों का पेट कैसे भरेगा ? यह बहुत अच्छा तर्क है और इस तर्क ने आदमी को लुभाया भी है, ललचाया भी है भ्रम में भी डाला है। वास्तविकता यह है कि हर व्यक्ति का अपना काम है। प्रधानमंत्री ने पंचशील कार्यक्रम को एक नया रूप दिया। पंचशील का जो पंचसूत्री कार्यक्रम है, उसमें उसकी नई व्याख्या की गई है। उसमें ग्रामोन्मुख विकास की बात प्रमुख है। गांधीजी ने कहा था—हर व्यक्ति को अपना काम मिलना चाहिए। चरखा कोई बहुत बड़ा और नया आविष्कार नहीं था। किन्तु एक सन्दर्भ में यह बहुत बड़ी बात थी कि हर व्यक्ति के हाथ में उसकी आजीविका या अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन होना चाहिए। रोटी के बिना वह रह नहीं सकेगा। गांधीजी ने इसके लिए एक छोटा-सा आलम्बन दिया। हर व्यक्ति के पास अपना श्रम, अपना कार्य होना चहिए किन्तु वह अब तक नहीं हुआ। बड़े-बड़े कारखाने, उद्योग और उनके द्वारा बड़े-बड़े प्रलोभन दिए जा रहे हैं। अगर यह तर्क दमदार होता तो फिर आज आदमियों को क्यों निकाला जा रहा है आज सारा काम रोबोट पर, मशीनों और यंत्रों पर आ रहा है। हजारों आदमी जिस काम को करते थे, मात्र पांच आदमी उस काम को कर रहे हैं। अगर वास्तव में आदमी की चिन्ता है तो फिर यह क्यों ? फिर यह मशीनीकरण और यंत्रीकरण नहीं होना चाहिए। सब कुछ आदमी के द्वारा आदमी के लिए होना चाहिए था पर आज सब कुछ उलट गया। सारा कुछ अपनी इज्जत, प्रतिष्ठा और शोहरत के लिए हो रहा है।

दुनिया बाजार है या कुटुम्ब

परिसीमन का अर्थ है आवश्यकताओं का अल्पीकरण। महावीर ने कहा—किसी की आजीविका को मत छीनो। यह उस समय बहुत बड़ी बात थी। तुम दूसरों की आजीविका को मत छीनो, उस पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। यह अपने चित्त की व्यवस्था है, केवल कानूनी व्यवस्था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। यह अपना स्व-व्यवस्थापन है। महावीर ने कहा—अपनी अन्तर्दृष्टि का विकास करो और देखो—तुम क्या कर रहे हो दूसरों के प्रति ? उसका असर क्या हो रहा है ? सेल्फ मैनेजमेंट में अनेक सूत्र बतलाए गए हैं। उनमें यह अपना व्यवस्थापन शायद सबसे महत्त्वपूर्ण सूत्र है। अपनी आवश्यकताओं का नियोजन करें, अपनी प्रवृत्तियों और व्यवहार का व्यवस्थापन करें। आज हमारी सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम इन सबका सम्यक् नियोजन नहीं करते। जो व्यक्ति के पास है, उसका भी वह नियोजन नहीं कर पाता। आज इच्छा, आवश्यकता अनियंत्रित है, अनियोजित है। उसी का परिणाम है कि आज आदमी का मूल्य बाजार का मूल्य बन गया है। श्री अटलबिहारी वाजपेयी की एक बात मुझे बहुत अच्छी लगी। उन्होने कहा—'अमेरिका के लिए सारी दुनिया एक बाजार है और हमारे लिए सारी दुनिया एक कुटुम्ब है।' हमारा सारा व्यवहार कुटुम्बवत् है। यह कुटुम्ब की भावना स्वनियोजन में इस तरह मुखरित होती है कि दूसरा भी आदमी है। मैं अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं, अपेक्षाओं और प्रवृत्तियों का ऐसा नियोजन करूं, जिससे दूसरों को हानि न पहुंचे और मेरी वृत्तियों में कहीं क्रूरता न पनपे।

नियोजन निर्मलता के साथ

प्रेक्षाध्यान का संकल्पसूत्र है—चित्त की निर्मलता। इस संकल्प से सम्यक् नियोजन होता है। उद्योग का इतिहास, व्यवसाय और शासन का इतिहास छलना से भरा हुआ इतिहास है। हम ऐसी घटनाएं बहुत सुनते हैं—दो व्यावसायिक साझीदार। दोनों में बड़ा प्रेम। लेकिन इतना अविश्वास का चक्र शुरू हुआ कि एक ने सबका-सब हथिया लिया और दूसरे को बिल्कुल खाली हाथ वापस कर दिया। यह सारा क्यों चलता है ? इसीलिए चलता है कि नियोजन के पीछे हमारे चित्त की निर्मलता नहीं है। हम निर्मलता के साथ अपना नियोजन करें। इस नियोजन में हमारे व्यवहार और प्रवृत्तियों का नियोजन आता है। समय का नियोजन भी इसके साथ जुड़ा हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संप्रेषण का नियोजन

सेल्फ मैनेजमेंट का एक सूत्र है—संप्रेषण का नियोजन। हम अपनी बात को दूसरों तक कैसे पहुंचाएं, उसकी भी एक कला है। दूसरों के साथ कैसे व्यवहार करें ? स्व-प्रबन्धन का यह सूत्र व्यक्ति के व्यवहार में प्रतिबिम्बित होता है।

द्राविड़ी प्राणायाम

इन सारी विषय-वस्तुओं पर स्व-प्रबन्धन में विचार किया गया। इन सबके अध्ययन से जो निष्कर्ष निकलता है, वह यह है कि इधर से जाए या उधर से जाए, आखिर एक जगह पर ही पहुंचेंगे। आत्मा तक हर व्यक्ति को पहुंचना है। उस तक पहुंचने का रास्ता खोजें, स्व-प्रबन्धन अपने आप हो जाएगा। जिन लोगों ने अध्यात्म को नहीं समझा, ध्यान के मर्म को नहीं समझा, उन्हें यह द्राविड़ी प्राणायाम करना पड़ रहा है। हम ध्यान के द्वारा समझें तो बात सरल हो जाती है। कठिनाई है सम्यक् चिन्तन करने की। समय पर सम्यक् चिन्तन होना बहुत मुश्किल है। यदि होता है तो सफलता मिल जाती है।

भाई नहीं मिलेगा

पति, पुत्र और भाई—तीनों बन्दी बन गए। केवल एक महिला बची। उसने अधिकारी से कहा—आपने तीनों को बन्दी बना लिया। उनका कोई अपराध भी नहीं है। अब आप रहम कर इन्हें मुक्त करो। महिला पर अधिकारी को दया आ गई। वह बोला—तीनों में से एक को छोड़ सकता हूं, बोलो किसे छोड़ूं। महिला दो मिनट चिन्तन करने के बाद बोली—मेरे भाई को आप छोड़ दें। अधिकारी बोला—भाई को क्यों ? पति या पुत्र को क्यों नहीं ? वह महिला उस परिवार से संबद्ध थी, जिसमें पुनर्विवाह भी सम्मत था। उसने कहा—पति नहीं रहेगा तो फिर विवाह कर लूंगी। पुत्र नहीं रहा तो विवाह के बाद फिर हो जाएगा। पर मेरी मां और पिता स्वर्गवासी हो गए हैं। मुझे अब दूसरा भाई नहीं मिलेगा इसलिए आप मेरे भाई को छोड़ दें। अधिकारी उसकी बात से प्रसन्न हो गया और उसने तीनों को मुक्त कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतिम लक्ष्य

समय पर चिन्तन करना, सही निर्णय लेना बहुत कठिन होता है। वह तब संभव है, जब व्यक्ति भीतर में चला जाए। प्रेक्षाध्यान का मूल सूत्र रहा अन्तर्दृष्टि का विकास। चिन्तन का विकास मान्य है, पर सर्वथा मान्य नहीं है। चिन्तन करना है तो चिन्तन का निरोध भी करना है। कल्पना का विकास करना है तो कल्पना का निरोध भी करना है। हमारा अंतिम लक्ष्य निर्विचार की स्थिति तक पहुंचना है। ध्यान करने वाला भी तब तक सफल नहीं होता, जब तक वह स्व-नियोजन करना नहीं जानता। बहुत लोग ध्यान का अभ्यास करते हैं, लेकिन सफल नहीं होते। इसलिए कि वे स्व-नियोजन करना नहीं जानते।

पाश्चात्य विद्वानों ने सेल्फ मैनेजमेण्ट की बात अध्यात्म के संदर्भ में नहीं की। समाज में उद्योग-व्यवस्था में एक व्यक्ति सफल कैसे हो, इसके लिए सेल्फ मैनेजमेंट की विधि का विकास किया गया। जिसने दूर का लक्ष्य बनाया है, जिसे बड़े लक्ष्य तक पहुंचना है, वह स्व-प्रबन्धन न करे तो वहां तक कैसे पहुंचेगा ? इसलिए अपेक्षा है कि जो व्यक्ति ध्यान शुरू करे, वह उसके साथ-साथ स्व-प्रबन्धन के सूत्रों को भी समझे। कैसे अपनी शक्तियों का नियोजन करे ? कैसे अपने जीवन की सारी अवस्थाओं का नियोजन करे ?

महत्त्वपूर्ण सूत्र

बाल, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध—ये जीवन की चार अवस्थाएं हैं। मृत्यु पांचवीं अवस्था है। अवस्थाओं के ये जितने पड़ाव हैं, उन सबका ठीक तरह से नियोजन करें। बीस वर्ष की अवस्था में बाल-अवस्था के अनुभवों से लाभ उठाएं। पचास वर्ष में पहुंच जाएं तो युवावस्था के अनुभवों से लाभ उठाएं। एक युवक में इतनी शक्ति है कि वह दो घण्टा बैठकर ध्यान कर सकता है। हो सकता है कि सत्तर वर्ष की अवस्था में ऐसा न कर सके। इसलिए उसे उस समग्र का नियोजन इस दिशा में करना चाहिए। योग का एक नियम है— कुछ शक्तियों का विकास—त्राटक, कुंडलिनी या ऊर्जा शक्ति का विकास जितना यौवन में संभव है, उतना वृद्धावस्था में संभव नहीं है। वृद्धावस्था में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोशिकाएं भी जवाब दे देती हैं और वाइटल एनर्जी भी उतनी नहीं रह पाती। सेल्फ मैनेजमेंट का यह सूत्र महत्त्वपूर्ण है—अपने स्वास्थ्य और प्राणशक्ति का सम्यक् नियोजन करें।

उद्घाटन नई दिशा का

इन सारे सूत्रों पर विचार कर ऐसी जीवन की शैली बनाएं, जो ध्यान के लिए उचित रहे, उपयुक्त बने। व्यवहार के क्षेत्र में भी ध्यान के बहुत लाभ हैं। लेकिन ध्यान सीधा और सस्ता नहीं है। जटिलता हर विकास के साथ रहती है। जो जितना बड़ा और महत्त्वपूर्ण होता है, उसकी प्रक्रिया भी उतनी ही जटिल और महत्त्वपूर्ण होगी। इस सचाई को समझते हुए हम ध्यान का सम्यक् उपयोग करें तो स्व-प्रबन्धन के साथ प्रेक्षाध्यान के व्यवस्थापन की एक श्रेष्ठ विधि हाथ लगेगी। उसके द्वारा बहुत लाभ उठाया जा सकता है, जीवन-निर्माण की नई दिशा का उद्घाटन संभव बन सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शारीरिक स्वास्थ्य

प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद आदि प्रणालियों में स्वास्थ्य विज्ञान पर बहुत ध्यान दिया गया है। मेडिकल साइंस में चिकित्सा विज्ञान बहुत विकसित हुआ है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उसमें स्वास्थ्य विज्ञान कम विकसित हुआ है। दो बातें स्पष्ट हैं—स्वस्थ रहने का विज्ञान और एक कभी आदमी अस्वस्थ बन जाए, रुग्ण हो जाए तो उस बीमारी की चिकित्सा करने का विज्ञान। यद्यपि एलोपैथी चिकित्सा में यह सूत्र बराबर रहा है—चिकित्सा की अपेक्षा पहले स्वास्थ्य की सुरक्षा करना अच्छा है पर इस पर जितना ध्यान 'नेचुरोपैथी' और आयुर्वेद में दिया गया, उतना शायद मेडिकल साइंस में नहीं दिया गया।

स्वस्थ कौन ?

हम सबसे पहले स्वास्थ्य विज्ञान पर ध्यान केन्द्रित करें। व्यक्ति की यह चिर आकांक्षा है कि वह स्वस्थ रहे, बीमार न पड़े। स्वस्थ रहने के लिए यह जानना भी जरूरी है कि किसे स्वस्थ मानें ? स्वस्थ कौन हो सकता है ? आयुर्वेद की परिभाषा है—जिसकी आत्मा और इन्द्रियां प्रसन्न हैं, वह स्वस्थ है। जिसकी आत्मा और इन्द्रियां प्रसन्न नहीं हैं स्वस्थ नहीं है। सम दोष, सम अग्नि—ये छिपे हुए लक्षण हैं। जो सामने हैं, उसे देखें, स्वस्थता का पता लग जाएगा। मन प्रसन्न है, इन्द्रियां निर्मल हैं तो समझें सब क्रियाएं ठीक चल रही हैं। समदोषोसमाग्निश्च—ये बाद में आने वाले लक्षण हैं। जो मूल लक्षण है, जिसको ऐकान्तिक या निश्चित लक्षण कहते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, वह है प्रसन्नात्मेन्द्रियमन—आत्मा, मन और इन्द्रियों की प्रसन्नता।

शरीरशास्त्र की दृष्टि

शरीर शास्त्र की दृष्टि से विचार करें। जिसका पाचनतंत्र और उत्सर्जनतंत्र ठीक काम करता है, वह स्वस्थ है। व्यक्ति ने खाना खाया, जितना काम में लेना था, लिया और जो शेष बचा, उसका उत्सर्जन कर दिया। यदि ऐसा होता है तो मानना चाहिए—व्यक्ति स्वस्थ है। इससे आगे चलें। जिसका नाड़ीतंत्र, ग्रन्थितंत्र संतुलित ढंग से काम कर रहा है, वह व्यक्ति स्वस्थ है। और आगे बढ़ें, स्वस्थ शब्द पर भी विचार करें। प्राचीन कोण है—'जिसका अस्थि संस्थान अच्छा है, वह आदमी स्वस्थ है। जिसकी अस्थियां मजबूत और शक्तिशाली हैं, वह आदमी स्वस्थ है। हमारा सारा शरीर हड्डियों के आधार पर खड़ा है। पूरा ढांचा ही हड्डियों का है। जैन योग में बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से समझाया गया है—जिस व्यक्ति का संहनन—अस्थि संरचना जितनी मजबूत है, वह उतना ही अच्छा ज्ञानी और ध्यानी बन सकता है। ध्यान और ज्ञान का मापन होता है अस्थि संरचना के आधार पर। ध्यान वह कर सकता है, जिसका अस्थिसंस्थान मजबूत है। केवल ज्ञान उसमें अवतरित होता है, जो वज्रऋषभनाराच संहनन से संपन्न है।

हमारे शरीर के स्वास्थ्य का बहुत ज्यादा संबंध है स्पाइनल कोड का सुषुम्ना से। इसमें तैंतीस मनके हैं, जिन्हें बर्टीब्रेट कहते हैं। ये जितने लचीले होंगे, आदमी उतना ही स्वस्थ रहेगा। स्वास्थ्य की परीक्षा करनी हो तो पृष्ठरज्जु को देखें। पृष्ठरज्जु मुड़ी हुई है, तिरछी है तो समझें—स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। **सुअस्थि अस्ति यस्य स स्वस्थः**—जिसका अस्थिसंस्थान अच्छा है, वह आदमी स्वस्थ है। संस्कृत के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति यह भी की जाती है—**'स्वस्मिन् तिस्ठति इति स्वस्थ'** जो अपने आप में ठहरता है, वह स्वस्थ है किन्तु यह बौद्धिक बात है। हमारा जो ग्रे मेटर, मज्जा है, उसमें हमारे ज्ञान का, संस्कारों का बहुत बड़ा भाग है। अस्थियों में होने वाली मज्जा में संस्कार संचित रहते हैं। जिसकी मज्जा जितनी बढ़िया है, उसका ज्ञान भी उतना ही अच्छा होता है, ध्यान भी उतना ही अच्छा होता है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वास्थ्य भी उतना ही अच्छा होता है। इन सबका मज्जा के साथ बहुत गहरा संबंध होता है।

स्वास्थ्य : वैज्ञानिक भाषा

हम स्वास्थ्य के लिए क्या करें ? कैसे अपने स्वास्थ्य को बनाए रखें ? हमारा शारीरिक स्वास्थ्य ठीक कैसे रहे ? इस पर विचार करते समय सबसे पहले आहार पर विचार किया जाता है। आज की वैज्ञानिक भाषा यह है कि संतुलित आहार स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। संतुलित आहार की तालिकाएं आज बहुत मिलती हैं। जिसमें विटामिन्स, लवण, क्षार, कार्बोहाइड्रेट आदि-आदि हों, वह संतुलित आहार है और वह स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। इसे भी हम पर्याप्त नहीं मान सकते।

मित आहार

प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा में जो सूत्र बतलाए गए हैं, वे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी बहुत आवश्यक हैं। उसका एक सूत्र है—मित आहार। संतुलित आहार के साथ एक और जोड़ दें—मित आहार। हित आहार और ऋत आहार का वाचक बनता है मित आहार। केवल संतुलित आहार से स्वास्थ्य पूरा नहीं होगा, उसके साथ मित आहार भी चाहिए। संतुलित तो है, किन्तु मात्रा इतनी बढ़ा दी कि खाने वाला शाम तक बीमार हो जाता है। अब संतुलित आहार क्या करेगा ? पोषक तत्त्व सब हैं, किन्तु मात्रा अतिरिक्त है। कुछ राष्ट्र के लोग बहुत खाते हैं। आहार तो संतुलित करते हैं पर मात्रा अधिक होती है। परिणाम यह होता है—स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। आहार कोरा प्रियकर ही नहीं, हितकर भी होना चाहिए। खाने में तो बहुत अच्छा लगता है, पर हितकर नहीं है तो वह स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है। हित को कई कोणों से समझना होगा। एक कोण है—विरुद्ध भोजन न हो। कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जो एक साथ नहीं खाए जाते। तेल भी खाया और दूध भी पी लिया। खरबूजा खाया और दूध भी पी लिया। यह विरुद्ध भोजन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ अवस्था का

अवस्था की दृष्टि से विचार करें। इस पर आयुर्वेद में वात, पित्त और कफ–इन तीन दृष्टियों से विचार किया गया। एक पुरुष में बचपन से लेकर चालीस वर्ष के आसपास कफ की प्रधानता रहती है। उसके बाद पित्त की प्रधानता रहती है और सत्तर वर्ष के बाद वायु की प्रधानता रहती है। एक आदमी सत्तर वर्ष को पार कर गया और वातकारक चीजें खाता है तो उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा।

संदर्भ काल का

काल की दृष्टि से विचार करें। दिन का पहला भाग कफप्रधान होता है। मध्याह्न का भाग पित्तप्रधान होता है और सायंकाल का भाग वातप्रधान होता है। यदि शाम को खरबूजा खाएं, अमरूद खाएं या उस जैसी दूसरी चीजें खाएं तो बीमार ही पड़ेंगे। इसलिए भोजन के साथ हित का विवेक भी होना चाहिए। सूर्यास्त के बाद भोजन करते हैं, सूर्य की किरणें नहीं मिलती हैं तो पाचनतंत्र सिकुड़ जाता है। यदि वह भोजन संतुलित है तो भी हितकर नहीं है।

संदर्भ स्वरशास्त्र का

स्वर की दृष्टि से विचार करें। स्वरविज्ञान कहता है–जब सूर्यस्वर चले तब भोजन करना चाहिए। सूर्यस्वर नहीं चल रहा है, चाहे जितना संतुलित भोजन करें, स्वास्थ्य अनुकूल नहीं होगा। चंद्रस्वर में पानी पीना और सूर्यस्वर में भोजन करना पाचनतंत्र के लिए बहुत वैज्ञानिक नियम है। भोजन किया चन्द्रस्वर में और पानी पिया सूर्यस्वर में, स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा।

आहार न्यायोपार्जित हो

ऋत आहार का अर्थ है न्यायोपार्जित आहार। न्यायोपार्जित भोजन में पवित्रता होती है। हमारे स्वास्थ्य का सम्बन्ध केवल पदार्थ से ही नहीं है, हमारी वृत्तियों से भी है। बुराई, छल-कपट, धोखा, प्रवंचना आदि से कमाया गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यायोपर्जित है। ऐसा भोजन शरीर पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यदि इसे कसौटी मानें तो ढूंढ़ना पड़ेगा कि आज कौन बच रहा है ? हमारे लिए भी बहुत मुश्किल हो रहा है क्योंकि आता तो वहीं से है। गृहस्थ के यहां से ही तो बना-बनाया मिलता है। ऋत आहार को परमार्जित कर इतना अवश्य करें—'जब तक पूरी भूख न हो, तब तक न खाएं।' आजकल यह भी नहीं चलता है और बड़े लोगों के तो बिल्कुल ही नहीं चलता है। उनके नियम ही अलग हैं। छोटे लोग बार-बार नहीं खाते, उन्हें मिलता भी नहीं है। बड़े लोगों को तो हर समय सुलभ है। कहीं भी जाएं, चाय-नाश्ता तो तैयार है। कितनी ही बार खाएं, उनके लिए चिन्ता की कोई बात नहीं है। यह स्थिति स्वास्थ्य के लिए घातक बनती है।

प्रतिक्रिया से बचें

प्रतिक्रिया हर व्यक्ति में होती है। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा, जिसमें क्रिया हो, लेकिन प्रतिक्रिया न हो। लेकिन कभी-कभी बहुत उग्र प्रतिक्रियाएं होती हैं। वे हमारे पाचनतंत्र को गड़बड़ा देती हैं। स्वास्थ्य का सूत्र है प्रतिक्रिया का भी सीमन करें, विरति करें और अति प्रतिक्रिया न करें। केवल प्रतिक्रिया का जीवन न जीएं उससे बचने का अभ्यास करें।

स्वास्थ्य और मैत्री

स्वास्थ्य का एक सूत्र है मैत्री। जिस व्यक्ति ने शत्रुता के भाव की आदत डाल ली, वह हर बात में दूसरे को शत्रु मान लेता है। मस्तिष्क में हर समय एक ही बात घूमती रहती है कि उसको ऐसे गिराना है, इस तरह मिटाना है, इस तरह सबक सिखाना है। जो इस प्रकार शत्रुतापूर्ण चिन्तन करता है, उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह सकता। यह शत्रुता का भाव बहुत भयंकर होता है। यह वैचारिक जहर है। स्थानांग सूत्र में अकाल मृत्यु के सात कारण बताए गए हैं। सात कारणों से व्यक्ति बिना मौत मरता है। जीना है नब्बे वर्ष, मर जाएगा पचास वर्ष में, चालीस या बत्तीस वर्ष में। एक व्यक्ति को हार्ट अटैक हो गया, कैंसर हो गया पर यह हुआ कैसे ? कैंसर कोई शारीरिक बीमारी तो है नहीं। वह भावनात्मक बीमारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, मनोकायिक बीमारी है। उसके पीछे प्रमुख कारण है दूसरों के प्रति हमारा शत्रुता का भाव, अनिष्ट चिन्तन, अनिष्ट विचार। भीतर ही भीतर जहर का ऐसा चक्र चलता है, जो शरीर को जर्जर बना देता है। स्वस्थ वही रह सकता है, जो मैत्री का जीवन जीता है।

भावक्रिया

स्वास्थ्य का एक सूत्र है भावक्रिया। भोजन करते समय केवल भोजन करना चाहिए। उस समय अन्य चिंतन नहीं करना चाहिए। चरक कहते हैं—**प्रसन्नमना भुंजीत**—खाते समय बिल्कुल मन प्रसन्न रहें और चिन्ता से दिमाग खाली रहे। यह स्वास्थ्य का लक्षण है।

मितभाषण

स्वास्थ्य का एक सूत्र है—मितभाषण। वाणी का संयम रहे। दिन भर का अनुपात देखें कि कितना बोले और कितना मौन रहे। हमारी शक्ति के व्यय के तीन बड़े साधन बनते हैं—ज्यादा सोचना, ज्यादा बोलना और अतिरिक्त प्रवृत्ति करना। वाणी का संयम भी हमारे स्वास्थ्य का एक बड़ा लक्षण है।

निद्रा

आयुर्वेद में स्वास्थ्य के तीन उपस्तंभ बताए गए हैं। प्राणशक्ति हमारे जीवन का स्तंभ है, जो स्वास्थ्य को बनाए रखती है। उसके तीन उपस्तंभ हैं—आहार, नींद और ब्रह्मचर्य। नींद बहुत आवश्यक है। इसके बिना स्वास्थ्य अच्छा नहीं बनता। एक दिन नींद नहीं आती है तो स्वास्थ्य गड़बड़ा जाता है। यदि दो-चार दिन नींद न आए तो व्यक्ति बहुत परेशान हो जाता है। आज अनिद्रा की बीमारी बहुत व्यापक बन गई है। जैसे तनाव की बीमारी विश्वव्यापी बन गई है, वैसे ही यह अनिद्रा की बीमारी भी विश्वव्यापी बनती जा रही है। इस बीमारी को मिटाने के लिए नींद की गोलियों का आविष्कार हुआ। आज इन गोलियों की बिक्री इतनी ज्यादा है कि नींद की गोली बनाने वाली कंपनियां अरबों-खरबों डालर कमा रही हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य

तीसरा उपस्तंभ है—ब्रह्मचर्य। आज की समस्या को देखें। जहां स्वास्थ्य के लिए ब्रह्मचर्य जरूरी था, वहां विचार आ गया उन्मुक्त यौन संबंधों का। ब्रह्मचर्य की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। लोग कहते हैं—आज क्या हो गया ? इतने अस्पताल, इतने डाक्टर, इतनी दवाइयां और इतनी रिसर्च, फिर भी बीमारियां बढ़ती जा रही हैं। रिसर्च के लिए प्रतिवर्ष हजारों-हजारों बेचारे मूक प्राणी, पशु-पक्षी आदि मारे जा रहे हैं। मनुष्य को स्वस्थ रखने के लिए प्राणियों का कितना बलिदान हो रहा है, किन्तु फिर भी मनुष्य स्वस्थ नहीं हो रहा है। नई-नई बीमारियां बढ़ती जा रही हैं। पहले कभी एड्स नाम की बीमारी का नाम भी नहीं सुना गया था, कैंसर का भी कोई विशेष नाम नहीं था। आयुर्वेद में इसे अन्तर्व्रण कहा जाता था। टी॰ बी॰ की बीमारी भी बहुत कम थी। इसका नाम था राजयक्ष्मा। यह राजा-महाराजा या बड़े लोगों को ही होती थी। साधारण आदमी को तो राजरोग होने का कोई प्रश्न ही नहीं था। आज इतनी नई-नई बीमारियां हो रही हैं, जिनकी पहचान ही नहीं हो पाती कि कौन-सी बीमारी है। इन सबका कारण एक ही है कि हमने इन्द्रिय-संयम का मूल्य नहीं समझा।

भरोसा है चिकित्सा पर

ब्रह्मचर्य संयम का मतलब केवल जननेन्द्रिय-संयम से ही नहीं है। ब्रह्मचर्य बहुत व्यापक शब्द है। इसका मतलब है पांचों इन्द्रियों का संयम। इनका संयम कैसे करना चाहिए, यह जब तक नहीं सीखा जाएगा, हमारा शारीरिक स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रह पाएगा। दिल्ली एक महानगर है। यदि आज से पचास वर्ष पहले यहां सौ अस्पताल थे तो आज हजारों अस्पताल हो गए होंगे। फिर भी सबको निदान नहीं मिल रहा है, चिकित्सा नहीं मिल पा रही है। आखिर क्यों ? इसलिए कि हम चिकित्सा पर भरोसा करते हैं, स्वास्थ्य पर भरोसा नहीं करते हैं। हम स्वस्थ रहने की प्रक्रिया को नहीं जानते। थोड़ी-सी बीमारी होती है और आदमी चिकित्सा के लिए दौड़ पड़ता है। होना यह चाहिए कि पहले स्वास्थ्य पर विचार करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरूरी है स्वास्थ्य चेतना का विकास

प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में स्वास्थ्य चेतना के विकास का चिंतन विकसित हुआ है। जैसे आध्यात्मिक चेतना का विकास जरूरी है, वैसे ही स्वास्थ्य की चेतना का विकास अपेक्षित है। पहले स्वास्थ्य की चेतना जगाए। आदमी स्वस्थ कैसे रह सकता है, इसका ज्ञान करें तो वह अपने आप स्वस्थ रहेगा और शायद चिकित्सा की अपेक्षा भी कम हो जाएगी। जो लोग स्वास्थ्य पर ध्यान देते हैं और स्वस्थ रहने के नियमों को जानते हैं, उन्हें चिकित्सा की बहुत कम अपेक्षा होती है। सारे रोग कर्मज नहीं होते। आयुर्वेद में चार प्रकार के रोग माने गए हैं। उनमें एक है कर्मज। कुछ बीमारियां कर्मज होती हैं। उनकी चिकित्सा आत्मशोधन द्वारा ही संभव होती है। कुछ मौसम की होती हैं, जैसे सर्दी का मौसम आया, जुकाम लग गई। गर्मी आयी तो गर्मीजनित बीमारी लग गई। ये सामान्य बातें हैं। किन्तु भयंकर बीमारियों से बहुत बचा जा सकता है, यदि हम स्वास्थ्य के नियमों को जानें और स्वास्थ्य की साधना करें।

आसन

प्रेक्षाध्यान में आसन और प्राणायाम का विधान है। कुछ ध्यान की पद्धतियों में आसन वर्जित माना गया है। बौद्धों की ध्यान पद्धति विपश्यना में आसन वर्जित माना जाता है और हम आसन को अनिवार्य मानते हैं। हमारा मत है—ध्यान के साथ अगर आसन नहीं है तो पाचनतंत्र कमजोर हो जाएगा। ध्यान में बहुत शक्ति लगानी पड़ती है, कान्सन्ट्रेशन में काफी प्राणशक्ति का नियोजन करना होता है। उस अवस्था में अगर आसन का प्रयोग, प्राणायाम का प्रयोग नहीं है तो पाचनतंत्र गड़बड़ा जाएगा। वह न गड़बड़ाए, इसके लिए आसन होना अनिवार्य है। इसीलिए प्रेक्षाध्यान की पद्धति में आसन मान्य है। आसन का मूल्य स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए भी है और चिकित्सा के लिए भी है। पर हम चिकित्सा में पहले क्यों जाएं ?

हम तो स्वास्थ्य के लिए सुरक्षात्मक आसन करें। उन आसनों का प्रयोग करें, जिनसे स्वास्थ्य नहीं बिगड़े। वे आसन करें, जो पाचनतंत्र को सक्रिय रखे, उत्सर्जन तंत्र को सक्रिय रखे, नाड़ीतंत्र का संतुलन बनाए और ग्रन्थितंत्र के स्राव को संतुलित बनाए रखे, श्वसनतंत्र को स्वस्थ रखे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणायाम स्वास्थ के लिए

प्राणायाम भी बहुत जरूरी है। इसके दो रूप हैं—एक प्राणायाम होता है शरीर के लिए और एक प्राणायाम होता है ध्यान के लिए। केवल शरीर के लिए प्राणायाम न हो, कोरा शारीरिक प्राणायाम न हो, ध्यान के लिए भी प्राणायाम हो, अन्यथा मन की चंचलता अधिक बढ़ सकती है।

तुम उत्तीर्ण हो

तक्षशिला विश्वविद्यालय की घटना है। आचार्य ने कहा—जाओ, तक्षशिला के परिपाशर्व में घूमो और ऐसी जड़ी खोज कर लाओ, जिसका औषधि के रूप में कोई उपयोग न हो। पूरे एक वर्ष का समय दिया। शिष्य निकल पड़े। गुरु का आदेश था। बारह महीना बिता कर आए और खाली हाथ आए। गुरु ने कहा—तुम सबके सब खाली हाथ कैसे आए ? क्या एक भी जड़ी नहीं मिली ? शिष्यों ने कहा—हां, गुरुदेव ! नहीं मिली। बहुत प्रयत्न किया, खोजा पर एक भी जड़ी हमें ऐसी नहीं मिली, जिसका औषधि के रूप में कोई उपयोग न हो। गुरु ने कहा—'तुम सब उत्तीर्ण हो।'

एक भी जड़ी ऐसी नहीं है, जो औषधि न हो। हम भी कह सकते हैं कि ऐसा कोई आसन नहीं है, जो औषधि न हो। हर आसन औषधि है। कोई कहीं काम करता है, कोई कहीं काम करता है। हम इन्हें ठीक से जान लें और इनका सम्यक् प्रयोग करें तो बहुत लाभ उठाया जा सकता है। उपसंपदा, आसन, प्राणायाम और मानसिक पवित्रता—इन सबको समझ कर हम शरीर पर विचार करें तो शायद अपने स्वास्थ्य को अपेक्षाकृत बहुत अच्छा, शक्तिशाली, उपयोगी और कार्यकारी रख सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक स्वास्थ्य

शरीर स्थूल है, दृश्य है, हमें दिखाई देता है। मन सूक्ष्म है, अदृश्य है, कार्य से जाना जाता है, पर दिखाई नहीं देता। शरीर, इन्द्रिय और मन—ये तीन कार्यकारी रूप में हमारे सामने आते हैं। जो इन्द्रियों का संचालक है, वह मन है। इन्द्रियों के द्वारा जिन विषयों का ग्रहण होता है, मन उनका संकलन करता है। अगर मन नहीं होता तो प्रत्येक इन्द्रियों का अपना-अपना कार्य होता, उनका संकलन नहीं होता और संकलन के बिना हमारी सारी विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती।

व्याधि और आरोग्य का आश्रय

मन संकलक और प्रवर्तक हैं। कल्पना, स्मृति, चिन्तन, तर्क-वितर्क—ये मन के सामान्य कार्य हैं। मन हमारे लिए बहुत उपयोगी है। जो उपयोगी होता है, वह कष्टदायी भी हो सकता है। मन बहुत उपयोगी है, मन बहुत कष्टदायी भी होता है। महर्षि चरक ने लिखा—

शरीरं सत्वसंज्ञं च व्याधिनामाश्रयोमतः तथा सुखानाम्

शरीर और मन ये दो व्याधियों के आश्रय हैं। शरीर भी रुग्ण बनता है और मन भी रुग्ण बनता है। केवल व्याधि का आश्रय ही नहीं, आरोग्य का आश्रय भी है। स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर हमारे लिए बहुत कल्याणकारी हैं। बीमार मन हमारे लिए परेशानी पैदा करने वाला होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन का कार्य ज्ञानात्मक है, किन्तु साथ-साथ चिन्तात्मक भी है। मनोबल का विकास हो जाए तो शायद इस दुनिया में कष्ट बहुत कम हो जाएं। कहा गया है—'अज्ञानी के लिए यह संसार दुःखों का भण्डार है और ज्ञानी के लिए आनन्दमय है।' पूछा गया—संसार में प्रकाश है या अन्धकार ? इसका उत्तर दिया गया—आदमी अन्धा है, चक्षुहीन है तो अन्धकार ही अन्धकार है और ज्योतिष्मान् है, चक्षुष्मान् है तो प्रकाश ही प्रकाश है। प्रकाश सारा आंख से ही तो है। अज्ञानी के लिए यह संसार दुःखमय है, इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है—जिसका मनोबल मजबूत है, उसके लिए इस दुनिया में दुःख नहीं हैं या बहुत कम हैं और जिसका मनोबल कमजोर है, उसके लिए दुःख ही दुःख हैं।

भगवान् महावीर ने चार प्रकार के सत्त्व बतलाए हैं—

- ह्री सत्त्व
- ह्री मनः सत्त्व
- चल सत्त्व
- स्थिर सत्त्व

ह्री सत्त्व

ह्री सत्त्व व्यक्ति लज्जा से युक्त होता है। उसका आत्मानुशासन इतना गहरा होता है कि वह कष्ट आने पर भी उसको कहीं प्रकट नहीं करता। नीतिमान् पुरुष वह होता है, जो धन के नाश और मन के ताप को किसी के सामने प्रकट नहीं करता।

अर्थनाशं मनस्तापं मतिमान् न प्रकाशयेत्।

ह्री सत्त्व व्यक्ति का मनोबल मजबूत होता है। वह इतना आत्मानुशासी और लज्जालु होता है कि अपनी बात किसी के सामने प्रकट नहीं करता। न उसे भय और शारीरिक चेष्टा के द्वारा प्रकट होने देता है। किसी घटना का उस पर कोई मानसिक असर नहीं होता।

ह्री मनः सत्त्व

व्यक्ति सत्त्व सधा हुआ होता है पर गहरा सधा हुआ नहीं होता। वह मन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सें व्यथा को प्रकट नहीं होने देता पर शरीर पर उसका प्रभाव हो जाता है। शरीर में प्रकम्पन होता है, भय की मुद्रा बन जाती है।

तीसरा है चल सत्त्व। चल सत्त्व वह होता है, जिसका मन बड़ा चंचल है, विक्षिप्त है, जिसमें हर प्रकार की चंचलता बनी रहती है।

चौथे प्रकार का सत्त्व है—स्थिर सत्त्व। जिसका सत्त्व स्थिर है, वह किसी भी स्थिति में डांवाडोल नहीं होता, उसे कोई भी परिस्थिति विचलित नहीं कर सकती।

चल सत्त्व : स्थिर सत्त्व

धनाढ्य व्यक्ति के घर चोरी हो गई। काफी धन चोर ले गए। वह व्यक्ति स्थिर सत्त्व था। लोग संवेदना प्रकट करने आए, बोले—आपके घर चोरी हो गई। सेठ ने कहा—कोई खास बात नहीं है।

'इतना धन चला गया और आप कह रहे हैं—कोई खास बात नहीं ?'

उसने कहा—'हां, इसमें कोई खास बात नहीं है, धन आता है, चला जाता है। मैंने ही कमाया था। फिर कमा लूंगा।'

सेठ की पत्नी चल सत्त्व थी। वह रोने लग गई, हाय-त्राय करने लग गई, हाथ-पैर पटकने लग गई। सेठ ने एक ज्ञानी सन्त को निवेदन किया—महाराज ! आप इसे समझाएं, चिन्ता तो मुझे होनी चाहिए, क्योंकि कमाने वाला तो मैं हूं, यह क्यों दुःख कर रही है। सन्त ने सेठानी से पूछा—'क्या हुआ ?'

'महाराज ! लाखों का धन चला गया।'

'तुम्हारे घर में कुआं है क्या ?'

'हां।'

'पानी है उसमें ?'

'हां, महाराज !'

'तुम्हारे घर में धन का भण्डार सारा ही खाली हो गया ?'

'नहीं, महाराज ! वह तो अभी बहुत है।'

'तुम्हारे घर वालों का व्यवहार, तुम्हारे नौकर-चाकरों का व्यवहार कैसा है ?'

'महाराज ! व्यवहार बहुत अच्छा है। पहले जैसा ही है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तुम्हें फिर किस बात का शौक है ? ऋषियों ने कहा है–

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।

पृथ्वी में तीन ही रत्न होते हैं–जल, अन्न और सुभाषित। पानी का कुआं तुम्हारे घर में विद्यमान है। अन्न का भण्डार भरा है और पारिवारिकजन सब अनुकूल हैं, मृदुवाणी बोल रहे हैं। फिर तुम शोकाकुल क्यों हो ? वह आदमी मूढ़ होता है, जो पत्थर के टुकड़ों को रत्न मान कर रोता है।'

सेठानी को बोध पाठ मिल गया। चल सत्त्व स्थिर सत्त्व बन गया।

स्थिरसत्त्व का निदर्शन

पूज्य गुरुदेव के जीवन में एक प्रकरण आया अग्नि परीक्षा का। अग्नि परीक्षा सीता की हुई थी और अग्नि परीक्षा पूज्य गुरुदेव संत तुलसी की भी हुई। सचमुच वह ऐसा समय था कि अगर कोई चल सत्व व्यक्ति होता तो घुटने टिक जाते। स्थिरसत्त्व गुरुदेव का कुछ भी नहीं बिगड़ा। दूसरों की क्या, अन्तरंग परिषद् के साधुओं और श्रावकों ने कहा–महाराज ! आपने जनता के लिए इतना काम किया, अब आप देख लीजिए कि जनता कैसी होती है ! अब आपको अणुव्रत का सारा काम बन्द कर देना चाहिए। तरह-तरह के सुझाव और परामर्श आए। स्थिरसत्त्व गुरुदेव ने कहा–'हमने काम पूरा नहीं किया, इसलिए ऐसा हुआ है। अब हमें दुगुनी शक्ति से काम करना चाहिए।'

यह अन्तर है चल सत्त्व का और स्थिर सत्त्व का। जिसका सत्त्व या मन बहुत चंचल है, वह तत्काल परिस्थिति के अनुकूल निर्णय ले लेता है। वह यह नहीं सोचता कि आगे चल कर क्या होगा ? स्थिर सत्व परिस्थिति के आधार पर कभी निर्णय नहीं लेता। वह प्रकृति के आधार पर निर्णय लेता है।

परिस्थिति : प्रकृति

सन्त विश्राम कर रहे थे। पास में एक झरना बह रहा था। सन्त ने शिष्य को आदेश दिया–झरने से एक लोटा जल भर कर लाओ। शिष्य गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी समय एक बैलगाड़ी उस झरने के प्रवाह को पार करती हुई निकली। जल गन्दा हो गया। शिष्य वापस आ गया। गुरु से निवेदन किया—गुरुदेव ! वह जल गंदा है, अपने काम का नहीं है। आगे चलकर कहीं पीयेंगे।

गुरु ने कहा—तुम यहीं बैठो। दस मिनट बाद फिर आदेश दिया—जाओ, पानी लाओ। शिष्य गया और उसी झरने का स्वच्छ जल भर ले आया।

गुरु ने कहा—'वत्स ! पानी तो बहुत निर्मल है और तुम कह रहे थे कि बहुत गन्दा है।'

'महाराज ! उस समय बैलगाड़ी से निकलने पर जल गंदला हो गया था।'

'वत्स ! निर्णय परिस्थिति के आधार पर नहीं, प्रकृति के आधार पर लेना चाहिए। झरने की प्रकृति गंदी नहीं है। उसका पानी निर्मल ही होगा। तुमने परिस्थिति के आधार पर निर्णय ले लिया। तुम प्रकृति को नहीं जानते, केवल परिस्थिति को जानते हो।'

स्थायी तत्त्व है प्रकृति

जिसका सत्त्व चल होता है, वह मनोविकारी होता है, परिस्थिति और वातावरण के आधार पर निर्णय लेता है। वर्तमान समाजमनोविज्ञान और समाजशास्त्र में परिस्थितिवाद अधिक प्रभावी है। परिवेश, परिस्थिति और वातावरण ही हमारे लिए निर्णायक बन गए हैं। वास्तव में हमने इस तथ्य को भुला दिया है कि मनुष्य की प्रकृति क्या है ? प्रकृति को जाने बिना केवल परिस्थिति के अनुसार ही सारे निर्णय लिए जा रहे हैं। इससे बहुत भ्रांतियां और गलतियां हो रही हैं। परिस्थति का भी अल्पकालिक मूल्य होता है, सामाजिक मूल्य होता है। परिस्थिति होती है और चली जाती है। स्थायी तत्त्व परिस्थिति नहीं है, स्थायी तत्त्व है प्रकृति। अगर हम प्रकृति को समझें तो हमारे बहुत सारे निर्णय सही होंगे।

मानसिक स्वास्थ्य की कसौटी

गीता, सांख्यदर्शन और चरक ने सत्त्व, रजस्, और तमस्—इन तीनों के आधार पर मन का विश्लेषण किया है, मन को समझने का प्रयत्न किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवस्था में मनोबल और सहिष्णुता बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व होते हैं। हम इस सचाई को समझें—मन, मनोबल, मानसिक स्वास्थ्य का बुद्धि से बहुत निकट का रिश्ता नहीं है। बुद्धि का अलग काम है और मन का अलग काम है। मन का एक काम है सहिष्णुता। सहन करने की शक्ति बुद्धि में कभी नहीं होती। सहन करने की शक्ति हमारे मन की है। जिसका मन स्वस्थ है, वह व्यक्ति हर स्थिति को सहन कर लेता है और जिसका मन रुग्ण होता है, वह सहन नहीं कर सकता। मानसिक स्वास्थ्य की कसौटी है सहिष्णुता। सुश्रुत ने लिखा है—

सत्त्ववान् सहते सर्वं, संस्तभ्यात्मानमात्मना।
राजसः सह्यमानोन्यैः, सहते नेव तामसः।।

तारतम्य सहिष्णुता का

जो सत्त्ववान होता है, वह सब कुछ सह लेता है। कैसी भी स्थिति आए, वह अपने आपको समझा लेता है। जिसका मन रजोगुणप्रधान होता है, वह स्वयं सहन नहीं कर सकता। उसमें सहन करने की शक्ति नहीं होती, किन्तु किसी का सहारा मिला, सहयोग मिला, यह समझ में आ गया—यह अच्छा नहीं है। उसे थोड़ा सम्यक् उपदेश मिला और समझ गया। फिर वह घटना को सहन कर लेगा। जिसका मन तमोगुणप्रधान है, वह न स्वयं समझ सकता है, न समझाने पर समझ सकता है, वह किसी भी प्रकार सहन नहीं कर सकता।

ये तीन प्रकार की स्थितियां घटित होती हैं। कभी-कभी व्यापार में हानि भी हो जाती है, परिवार का कोई इष्ट व्यक्ति चला जाता है। कुछ लोग ऐसे सत्ववान् होते हैं कि वे उस घटना को पी जाते हैं, सारे दुःख को पचा लेते हैं। दूसरों को कुछ पता ही नहीं चलता। कुछ लोग समझाने पर समझते हैं। अनेक परिवार किसी पारिवारिकजन के वियोग होने पर पूज्य गुरुदेव के दर्शनार्थ आते हैं। पूज्य गुरुदेव से उन्हें प्रबोध मिलता है, संबल मिलता है, वे समझ जाते हैं, उनका आर्तध्यान, चिन्ता शोक आदि दूर हो जाते हैं। कुछ लोग तमोगुणप्रधान होते हैं। न वे स्वयं समझ पाते हैं और न समझाने पर समझ पाते हैं। **ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति**—उन्हें ब्रह्मा भी रंजित नहीं कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता, समझा नहीं सकता। सहिष्णु वही हो सकता है, जिसमें सत्व गुण प्रधान होता है।

धृति

मानसिक स्वास्थ्य की दूसरी कसौटी है—धृति। धैर्य कितना है ? धीर वह है, जो कठिन स्थिति आने पर कभी डोलता नहीं, अस्थिर नहीं होता। जो अप्रिय बात सुनकर भी शान्त रहता है, धैर्य नहीं खोता, वह धृतिमान् होता है। धैर्य का निदर्शन है सुमेरु। प्रलयकाल की हवा चलने पर भी सुमेरु पर्वत कभी कांपता नहीं है, डोलता नही हैं। भक्तामर स्त्रोत में ऋषभ की स्तुति इन शब्दों में की गई—इसमें आश्चर्य क्या है कि आपको देवांगनाएं विचलित नहीं कर सकीं। पर्वत को चलित करने वाली प्रलयकाल की हवा क्या सुमेरु पर्वत को प्रकंपित कर पाती है ?

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर्
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्।।

धीर की एक सुन्दर परिभाषा मिलती है—विकार का हेतु होने पर भी जिसका मन विकृत नहीं होता, वह धीर है।

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः।

यह धृति मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण है। जिसमें धृति आ गई, उसकी कठिनाइयां पार हो गईं, दुःख पार हो गए।

बुद्धि

मानसिक स्वास्थ्य की तीसरी कसौटी है बुद्धि का भ्रंश न होना। बुद्धि का काम है निर्णय करना, विवेक करना, किन्तु मनोबल उसका बड़ा सहयोगी बनता है। मानसिक स्वास्थ्य अच्छा है तो व्यक्ति अच्छा निर्णय लेगा, अच्छा बौद्धिक काम कर पाएगा। यदि वह ठीक नहीं है तो निर्णय शक्ति कमजोर हो जाएगी, व्यक्ति सही निर्णय नहीं ले पाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मृति

मानसिक स्वास्थ्य की चौथी कसौटी है—स्मृति अच्छी होना। जब-जब विकार आता है, मानसिक अवसाद (डिप्रेसन) होता है, मानसिक रोग का लक्षण प्रकट होता है तो स्मृति भी विचलित हो जाती है। स्मृति का भ्रंश न होना मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण है।

मन को संभालें

व्यक्ति को मन की बीमारी जितनी सताती है, उतनी शरीर की बीमारी नहीं सताती। हमने बहुत-से मानसिक रोगियों को देखा। प्रेक्षाध्यान के शिविर में बहुत-से मानसिक रोगी आते हैं। कुछ लोगों की मानसिकता को देखकर ऐसा लगता है, जैसे उनके लिए सारी दुनिया कष्टों की दुनिया है। सब कुछ पास में है, किन्तु मन की स्थिति गड़बड़ाने के कारण उनके लिए कुछ भी नहीं है। सबसे ज्यादा जरूरी है मन को संभालना। आदमी शरीर को ज्यादा संभालता है, मन को कम संभालता है। समझदार व्यक्ति शरीर पर अगर बीस प्रतिशत ध्यान देता है तो मन पर पचास प्रतिशत ध्यान देगा। आखिर शरीर का संचालक मन ही तो है। अगर वह स्वस्थ नहीं है, तो स्वास्थ्य कैसे रहेगा ?

अमोघ सूत्र

प्रेक्षाध्यान और मानसिक स्वास्थ्य—इन दोनों के सम्बन्ध की मीमांसा करें। मन के बल को बनाए रखना है तो मन को खाली रखना बहुत जरूरी है। मन से निरंतर काम लेते रहेंगे, निरंतर स्मृति, चिन्तन और कल्पना करते रहेंगे तो मन बीमार हो जाएगा। मानसिक स्वास्थ्य का एक अमोघ सूत्र है मन को खाली रखना, मन को विश्राम देना। सोचना अच्छा है पर निरंतर सोचना अच्छा नहीं है। कल्पना करना अच्छा है, पर अतिकल्पना हानिकारक है, मानसिक बीमारी का लक्षण है। स्मृति, कल्पना और चिन्तन का नियमन करें, मन को विश्राम दें, मन की शक्ति बढ़ेगी, मन स्वस्थ रहेगा।

एक उपाय है श्वासप्रेक्षा का प्रयोग। जिस व्यक्ति ने दीर्घ श्वासप्रेक्षा का प्रयोग किया है, वह मन को खाली रख सकता है। एकाग्रता का अभ्यास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन के लिए सबसे बड़ा टॉनिक है। उससे इतना पोषण मिलता है, जितना और किसी चीज से नहीं। टॉनिक और च्यवनप्राश विशेष ऋतुओं में सेवन की चीज हैं, किन्तु दीर्घश्वास का प्रयोग तो बारह महीने किया जा सकता है। दिन में दो या तीन बार दस-दस मिनट दीर्घ श्वासप्रेक्षा का प्रयोग करें, मन को बहुत विश्राम मिलेगा। जैसे गर्मी के मौसम में वातानुकूलित कक्ष में शरीर शान्ति का अनुभव करता है, वैसे ही दस-दस मिनट के प्रयोग से अनुभव होगा—मन एयरकण्डीशन कक्ष में चला गया है।

मनोगुप्ति

निर्विचार अवस्था इससे भी आगे की अवस्था है। यदि वह आ जाए तो और ज्यादा पोषण मिलेगा। जो अपना मनोबल बनाए रखना चाहता है, उसका विकास चाहता है, उस व्यक्ति को दस-बीस मिनट निर्विचार रहने का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। जैन पारिभाषिक शब्दावली में इसे मनोगुप्ति कहा जाता है। मन का संवरण करें, न चिन्तन, न स्मृति और न कल्पना, न तर्क-वितर्क, कुछ भी नहीं। इस अवस्था का अनुभव मन के स्वास्थ्य को संजीवन देता है।

लेश्या ध्यान

एक प्रयोग है सफेद और हरे रंग के ध्यान का। हरा रंग अन्तर्मुखी बनाने वाला रंग है। यह विजातीय तत्त्वों को दूर करता है। जब दर्शन केन्द्र पर हरे रंग का ध्यान करेंगे तो मन बिलकुल शान्त बन जाएगा, बाहर की सारी बातों से अपने को दूर कर लेगा। ललाट या ज्योतिकेन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान भी मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

महाप्राण ध्वनि

एक है महाप्राण ध्वनि का प्रयोग। महाप्राण ध्वनि हमारे मस्तिष्क के ज्ञानतंतुओं को शक्तिशाली बनाती है। यह मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत बड़ा प्रयोग है। जैसे भंवरा गुंजार करता है, वैसे ही सिर्फ ध्वनि होती है, शब्द नहीं होता। जब हम यह ध्वनि करेंगे तो हमे स्वयं अनुभव होगा—न कल्पना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष रही है और न चिन्तन। मन बिलकुल खाली हो गया है। अगर इसे अभ्यास के द्वारा दस मिनट तक ले जाएं तो ऐसा लगेगा, जैसे मन को इतना हैवी नाश्ता करा दिया है कि पूरे दिन खाने की जरूरत नहीं है।

सर्वेन्द्रिय संयम मुद्रा

एक प्रयोग है सर्वेन्द्रिय संयम मुद्रा का। हमारी इन्द्रियां मन की दुर्बलता को बढ़ाती हैं। ये मन को विषयों की ओर ले जाती हैं, चंचल बनाती हैं और मन की शक्ति को क्षीण करती रहती हैं। हम एक बार बाह्य जगत् से अपना संपर्क काट दें और इन्द्रियों को विश्राम दें तो मन का अपने आप विश्राम हो जाएगा। वह प्रयोग है—दो अंगूठों को कान में डालें। आंखों को बन्द कर दो अंगुलियां उस पर रखें, दो अंगुलियों को नाक पर और चार अंगुलियों को होंठों पर रखें। इस प्रकार कान, आंख, नाक और मुंह बन्द कर सर्वेन्द्रिय संयम मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। इससे लगेगा—बाह्य जगत् से हमारा संपर्क टूट गया है और यहां तक भी अनुभव हो सकता है कि हम स्वयं हैं ही नहीं। पांच मिनट में ऐसा लगेगा, जैसे तीन घण्टे का विश्राम कर उठे हैं। यह द्वैत से अद्वैत में जाने का प्रयोग है, भीड़ में अकेले रहने का प्रयोग है।

अनुभव करें दुःखातीत स्थिति का

प्रेक्षाध्यान के ये सारे प्रयोग मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा हम अपनी मनःस्थिति का निर्माण कर सकते हैं, मानसिक विकास कर सकते हैं। आज मन को दुर्बल बनाने वाली जो परिस्थितियां हैं, जिन्हें मनुष्य ने पकड़ रखा है, जिनके कारण मनुष्य मानसिक रोगों को भुगत रहा है, उन परिस्थितियों को झेल सकते हैं। जहां-जहां भौतिकवाद बढ़ा है, वहां-वहां मानसिक बीमारियां बढ़ी हैं। भारत विकासोन्मुख देश है। यहां भी मनोरोगियों की संख्या बढ़ती जा रही है। इस सारे सन्दर्भ में मानसिक स्वास्थ्य पर विचार करना और मानसिक स्वास्थ्य के लिए जो अनौपचारिक उपाय हैं, उन्हें जानना नितान्त आवश्यक है। इनके द्वारा हम अपने मनोबल को विकसित कर सकते हैं, कष्टों और दुःखों की दुनिया में भी दुःखातीत स्थिति का अनुभव कर सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावात्मक स्वास्थ्य

शरीर और मन—ये बाह्य जगत् में अभिव्यक्त होने वाले तत्त्व हैं। भावात्मक स्वास्थ्य हमारे अन्तर्जगत् का प्रश्न है। भीतरी जगत् में कुछ ऐसी घटनाएं घटित होती रहती हैं, जिनकी अभिव्यक्ति को हम जानते हैं, किन्तु उनके मूल में जो है, उसे शायद बहुत कम जानते हैं। प्रेक्षाध्यान का सूत्र है—आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें। इसका तात्पर्य है—अन्तर्जगत् की यात्रा करें, हमारे भीतर जो घटित हो रहा है, उसे देखें।

कारक है भाव

हमने मन पर बहुत अधिक भार लाद दिया है। यह बेचारा ऐसा दुर्बल घोड़ा है, जिस पर क्षमता से अधिक भार लाद दिया है। इतना भार कि वह उठा नहीं सकता, बार-बार टूटता रहता है। प्रश्न है—लाद कौन रहा है ? इस प्रश्न की गहराई में जाएं तो अन्तर्जगत् का दरवाजा खुलेगा, हमें अनुभव होगा कि हमारे भीतर की दुनिया बहुत बड़ी है और वहां ये सब घटनाएं घटित हो रही हैं। हम मानते हैं, यह आदमी बहुत अच्छा है और वह बहुत बुरा है। यह मित्र है और वह शत्रु है। यह प्रिय है और वह अप्रिय। यह हितकर है और वह अहितकर। यह मानने वाला कौन है ? यह मन का काम नहीं है। मन का काम है स्मृति, कल्पना और चिन्तन करना। यह मानने की बात कहां से आ रही है ? यह सब कुछ हमारे भाव जगत् से आ रहा है। हमने जितना ध्यान मन पर दिया, उतना भावजगत् पर नहीं दिया। कारक और स्रोत वही है, वहीं से सब कुछ घटित हो रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल स्रोत है आत्मा

मूल स्रोत है आत्मा। आत्मा की चेतना बाहर आ रही है। सबसे पहला वलय है, कर्म-शरीर का। वहां से कर्म-शरीर के स्पन्दन आते हैं। एक शरीर है सूक्ष्म शरीर—तैजस शरीर है। यह आभामण्डल और तैजस विकिरणों का शरीर है। वहां वे स्पन्दन एक आकार लेते हैं, लेश्या बनते हैं, भावधारा बनते हैं। वे भाव हमारे मस्तिष्क के एक भाग हाइपोथेलेमस में आते हैं। उसके बाद मन को प्रभावित करते हैं। मन तो अचेतन है। प्रभावित करने वाला है भाव। वही मन को प्रभावित करता है। प्रेक्षाध्यान में मन और चित्त के भेद पर बहुत विचार किया गया है। मन जड़ है। वह संचालक नहीं है। वह संचालित होता है भाव के द्वारा। भाव चेतना है। चेतना के स्पन्दन और उसके साथ जो सूक्ष्म शरीर के स्पन्दन आते हैं, वे भाव बनते हैं, वे ही मन को संचालित करते हैं।

मनोभाव

आज मानसिक चिकित्सा पर बहुत बल दिया गया है। मेडिकल साइंस में मन जितना महत्त्वपूर्ण चित्त नहीं है। फ्रायड ने मन पर ही ज्यादा बल दिया। यूंग ने कहा—मन (माइंड) से अधिक महत्त्वपूर्ण है चित्त (साइक)। यूंग ने साइक चित्त पर बल दिया। मनोविज्ञान में एक नया आयाम खुल गया। हजारों वर्ष पहले जैन दर्शन और पातंजल योग दर्शन ने भी इस पर बहुत विचार किया था। व्यक्ति में क्रोध और अहंकार है। वह छल, कपट और प्रवंचना करता है। वह लोभ, भय, घृणा और कामवासना का जीवन जीता है। यह भावजगत् बाहर से दिखाई नहीं देता, भीतर में रहता है, चित्त की चेतना में काम करता है और मन के माध्यम से प्रकट होता है। इसीलिए साहित्य में एक शब्द बन गया मनोभाव। जब भाव मन पर उतरता है, तब वह मनोभाव बन जाता है। साहित्यिक जगत् में और काव्यानुशासन में मनोभावों का बहुत विशद विवेचन किया गया है।

संघर्ष का जीवन

हमारा जीवन एक सतत संघर्ष का जीवन है। डार्विन ने कहा था—निरन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघर्ष चल रहा है। उन्होंने किसी सन्दर्भ में कहा था—स्ट्रगल फार सर्वाइबल, जीवन के लिए संघर्ष जरूरी है। जीवन के लिए वह संघर्ष बाहरी निमित्तों, परिस्थितियों के साथ होता है किन्तु हमारे अन्तर्गजगत् में भी सतत संघर्ष चल रहा है। कर्म-शास्त्रीय परिभाषा में दो शब्द हैं—औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाव। क्षायोपशमिक भाव का अर्थ है—सतत संघर्ष। औदयिक भाव अहंकार, क्रोध, छल-कपट, ईर्ष्या आदि को बढ़ाता है। उसका काम ही है इन विचारों का संपोषण करना, इन्हें बढ़ाना। क्षायोपशमिक भाव का काम है—विकारों को घटाना, उपशम को बढ़ाना। क्रोध, अहंकार आदि को दबाना, विनम्रता, ऋजुता आदि को पोषण देना। यह दो धाराओं में संघर्ष निरंतर जारी है। एक आत्मा की पवित्र धारा है, दूसरी आत्मा की कार्मिक धारा है। हमारे भीतर ये दोनों धाराएं बराबर अपना काम कर रही हैं। एक श्रेणी है क्रोध, अहंकार आदि की, दूसरी श्रेणी है उपशम, मृदुता, विनम्रता, आदि की। इन दोनों में सदा संघर्ष चलता रहता है।

भाव शस्त्र

प्रश्न है—प्रेक्षाध्यान का अभ्यास क्यों करें ? वह इसीलिए जरूरी है कि जो धारा हमारे भावों को उत्तेजना देती है, उन्हें मलिन बनाती है, मन में अशान्ति पैदा करती है, युद्ध और आतंक पैदा करती है, उस धारा को कमजोर बनाना है। उस धारा को प्रबल बनाना है, जिसमें शान्ति और अहिंसा है, सामंजस्य और समन्वय है, मैत्री और सहअस्तित्व है। हम आज के चिन्तन को पढ़ें। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणाा पत्र का एक वाक्य है—'युद्ध पहले मस्तिष्क में लड़ा जाता है, फिर युद्धक्षेत्र में।' आज यह बात बहुत प्रसिद्ध हो गई। ढाई हजार वर्ष पहले महावीर ने शस्त्रों का वर्गीकरण करते हुए इस सचाई को प्रस्तुत किया था—शस्त्र दस प्रकार के होते हैं। उनमें दसवां शस्त्र है भाव। लड़ाई, संघर्ष, हिंसा, और युद्ध पहले हमारे भावजगत् में पैदा होता है। वह बाह्य जगत् में मात्र अभिव्यक्त होता है।

व्यक्त जगत् : अव्यक्त जगत्

बाहर का जगत् व्यक्त है, भीतर का अव्यक्त। सांख्य दर्शन में माना जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—**गंधवती पृथ्वी**—पृथ्वी गंधवती होती है। पृथ्वी में गंध कहां है ? उसमें गंध है, किन्तु अव्यक्त है। पानी डालो, भीनी-भीनी गंध आनी शुरू हो जाएगी। हमारा मानसिक जगत् व्यक्त जगत् है और भावजगत् अव्यक्त जगत् है। सारी घटनाएं वहां घटित होती हैं, फिर बाहर आती हैं। बच्चा गर्भाशय में पलता है, फिर बाहरी जगत् में आता है। जब से भ्रूण बना, गर्भाशय में पोषण शुरू हुआ, वास्तविक जन्म तो वहीं हो गया। जब वह बाहर की दुनिया में आता है, तभी हम मानते हैं कि जन्म हुआ। यह हमारा उपचार है, क्योंकि हम बाहरी दुनिया में जीते हैं। हमारी इन्द्रियां बाह्य जगत् में काम करती हैं, इसलिए हम बाहर की घटना को महत्त्व देते हैं, भीतर की घटना को महत्त्व नहीं देते। जिस व्यक्ति ने भावजगत् को समझने का प्रयत्न किया है, मेडिकल साइंस की भाषा में जिसने हाइपोथेलेमस को समझने का प्रयत्न किया है, वह जानता है—कहां क्या कुछ हो रहा है। केवल जानना ही पर्याप्त नहीं है। प्रश्न है बदलने का।

प्रश्न है शांति का

पूरे विश्व के सामने प्रश्न है शान्ति का। जागतिक संदर्भ में देखें तो प्रश्न है विश्वशान्ति का। व्यक्तिगत संदर्भ में देखें तो प्रश्न है मन की शान्ति का। अशान्ति कोई नहीं चाहता, सब शान्ति का जीवन जीना चाहते हैं। यह संभव कैसे होगा ? जब तक भावजगत् का परिष्कार नहीं होगा, न व्यक्ति की शान्ति संभव है और न जागतिक या विश्व शान्ति संभव है। हमें परिष्कार करना होगा भावजगत् का, जहां अशान्ति का जन्म हो रहा है।

परिष्कार का मार्ग

परिष्कार का एक मार्ग है—इष्ट का चुनाव। कोई भी धर्म ऐसा नहीं है, जिसमें किसी इष्ट की अवधारणा न हो। इष्ट कौन हो सकता है ? क्या गुरु इष्ट हो सकता है ? नहीं, गुरु पथदर्शक हो सकता है, इष्ट नहीं हो सकता। क्या कोई मनुष्य इष्ट हो सकता है ? एक शिक्षक पथदर्शक हो सकता है, जो पढ़ाता है, कुछ बताता है, मार्गदर्शन देता है। गुरु मनुष्य है। मार्गदर्शन, पथदर्शन देता है, संचालन करता है, पर इष्ट नहीं हो सकता। तीर्थंकर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इष्ट नहीं बन सकते। इष्ट तब बनते हैं, जब सिद्ध बन जाते हैं। जब तक देहधारी हैं, इष्ट नहीं हो सकते। कारण क्या है ? यही है कि इष्ट निर्विकल्प होता है। देहधारी कहेगा—ऐसा करो, ऐसा मत करो। मन में द्वन्द्व पैदा हो जाएगा। व्यक्ति सोचेगा—यह तो मेरे काम का नहीं है। बहुत सारे लोग इसीलिए गुरु को छोड़ कर चले जाते हैं, योग्य शिक्षक को छोड़कर चले जाते हैं कि यह मेरे काम का नहीं है, मुझे बार-बार रोकता है, टोकता है। इष्ट न रोकता है, न टोकता है, केवल आदर्श होता है।

आस्था के केन्द्र

आस्था के केन्द्र दो माने गए हैं—देव और गुरु। देव वह है, जो वीतराग बन गया, साक्षी बन गया। जो साक्षी है, द्रष्टा है, वह इष्ट हो सकता है, पथदर्शक दूसरा होगा। वीतराग पथदर्शक नहीं होते। इसके लिए वे अर्ह नहीं माने गए। अर्ह माना गया है गुरु को, जो पथदर्शन कर सकता है। वीतराग के पास शिष्य ने निवेदन किया—मैं ऐसा करना चाहता हूं तो वीतराग कहेंगे—**जहासुहं**—जैसे तुम्हें सुख हो। महावीर के पास जमाली आया, बोला—मैं स्वतंत्र विहार करना चाहता हूं। महावीर ने कहा—'**अहासुहं**।' यदि गुरु से कहा जाता तो गुरु रोक देते—नहीं, अभी मत जाओ। इष्ट हमारा वही होगा जो भावजगत् से ऊपर चला गया। इष्ट वही हो सकता है जो भावजगत् से अतीत है। न केवल मन से परे (Beyondmind) है किन्तु भाव जगत् से परे (Beyond Eomotion) है, जहां न राग है, न द्वेष, कुछ भी नहीं। वह परम आत्मा, विशुद्ध आत्मा ही इष्ट हो सकता है। अर्हत् वीतराग की ही श्रेणी में आते हैं। जो वीतराग बन गया, अर्हत् बन गया, वह हमारा इष्ट हो सकता है। उसे हम आत्मा, परमात्मा अथवा कुछ भी नाम दे दें।

जीवन के उतार-चढ़ाव

योग का एक सूत्र है—इष्ट के साथ तादात्म्य। यदि परम शान्ति चाहते हैं, परम सुख चाहते हैं तो शान्तिकेन्द्र में इष्ट की अवधारणा करें, वहां इष्ट की मानसिक प्रतिमा की स्थापना करें। जब-जब कोई कठिनाई आए, उस पर ध्यान केन्द्रित करें, कष्ट दूर हो जाएंगे। हम निश्चिन्त माने जब तक परम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द की स्थापना हमारे भीतर नहीं होगी, हमारा आनन्द बार-बार विखंडित होता रहेगा। परम शान्ति की अवधारणा हमारे मस्तिष्क में नहीं है, तो हमारी शान्ति बार-बार खंडित होती रहेगी। परम सुख की अवधारणा हमारे मस्तिष्क में नहीं है तो हमारा सुख बार-बार विघटित होता रहेगा। क्षण में तुष्ट, क्षण में रुष्ट—सारा जीवन ऐसे ही चलता है। न जाने कितनी बार हमारे भावों में परिवर्तन होता है। एक व्यक्ति प्रातःकाल उठता है, तब से लेकर जब रात को सोने जाता है, तब तक अपने भावजगत् की यात्रा करे और कापी में नोट करता जाए—कब मैं सुखी बना, कब मैं दुःखी बना, कब शान्ति का अनुभव किया, कब अशान्ति का अनुभव किया तो संभव है पूरी कॉपी भर जाएगी। इतना उतार-चढ़ाव क्षण-क्षण में आता रहता है। उससे प्रभावित हुए बिना हम रह नहीं सकते। एक व्यक्ति ने कह दिया—यहां मत बैठो, बस इसे अपमान समझ लिया और सारा द्वन्द्व यहीं से छिड़ गया। मन का घोड़ा शीघ्र गति से दौड़ने लगेगा, बदले की भावना तीव्र हो जाएगी।

प्रतिशोध की वृत्ति

एक आदमी ने बहुत बड़ा भोज किया। बड़े-बड़े लोगों को आमंत्रित किया। वह स्वयं लोगों को खाना परोस रहा था। राजस्थान में भोजन के अंत में पापड़ परोसने की प्रथा है। पापड़ परोसने के क्रम में ऐसी स्थिति बनी कि सबसे अंतिम आदमी तक पहुंचते-पहुंचते पापड़ खंडित हो गया। वह आदमी बहुत अहंकारी था। उसेके भावजगत् में हलचल-सी मच गई। उसने सोचा—सबको अखण्ड पापड़ दिया और जान-बूझकर मुझे खंडित पापड़ देकर मेरा अपमान कर दिया। जैरे भी हो, मैं इस अपमान का बदला लूंगा। मन में एक ग्रन्थि बन गई। कुछ दिनों के बाद उसने भी एक भोज का आयोजन किया। वह आयोजन उसने प्रतिशोध लेने के लिए किया। प्रतिष्ठित और बड़े लोगों को आमंत्रित किया। विशेष कर उन सबको, जो पूर्व भोज में शामिल हुए थे। उस व्यक्ति को विशेष रूप से बुलाया, जिससे प्रतिशोध लेना था। आखिर पापड़ परोसने की बारी आयी। सब को समूचा पापड़ दिया। उस व्यक्ति की बारी आने पर पापड़ के कई टुकड़े कर दिए। वह आदमी भद्र था। उसके मन में कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। पापड़ तोड़कर ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो खाना था। प्रसन्नता से ले लिया। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है—कोई व्यक्ति किसी पर प्रतिक्रिया व्यक्त करे और सामने वाले पर उसका कुछ असर न पड़े तो उसे बड़ा कष्ट होता है, मानसिक वेदना होती है। उसने सोचा—सारा किया-कराया व्यर्थ चला गया। जिसके लिए किया, वह वापस नहीं मिला तो प्रतिशोध पूरा कहां हुआ ? उलझन हो गई। एक क्षण तक एकटक देखता रहा। कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। व्यक्ति से रहा नहीं गया, पूछा—आपको पापड़ कैसा मिला ?

'बड़ा अच्छा मिला।'

'तुमने ध्यान नहीं दिया, पापड़ नहीं, पापड़ के टुकड़े मिले हैं।'

'कोई बात नहीं, तोड़कर ही तो खाने थे, हमें तो सुविधा ही हुई।'

'शायद तुम्हें याद नहीं, तुमने भी एक बार मुझे खंडित पापड़ दिया था, यह उसी का बदला है।'

उस भद्र व्यक्ति ने कहा—'भाई ! इतनी सी बात के लिए तुमने इतना आयोजन कर डाला। यदि उसी समय कह देते तो मैं तत्काल तुम्हें पूरा पापड़ परोस देता।'

इष्ट का निर्धारण

इतना विचित्र है हमारा भावजगत्। वस्तुतः हमें उस आत्मा को देखना है, जो पवित्रात्मा है, विशुद्धात्मा है। लेकिन यह बहुत आगे की बात है। वहां तक देखने के लिए बहुत बड़ी साधना करनी पड़ेगी। यदि एक वैज्ञानिक अपना संपूर्ण जीवन इसकी रिसर्च में लगा दे तो इतने रहस्यों का उद्घाटन होगा कि उससे दुनिया का कल्याण हो जाएगा। एक साधक अपना जीवन इस खोज-कार्य में लगा दे तो इतना कुछ पाएगा कि उसका स्वयं का तो कल्याण होगा ही, पूरे विश्व का भला होगा। मुश्किल यह है कि इसका दरवाजा बन्द पड़ा है, इसलिए हम वहां तक पहुंच नहीं पा रहे हैं। भाव जगत् को बदलने का, अखण्ड आनन्द, अविच्छिन्न सुख और शान्ति की धारा प्रवाहित करने का एक ही रास्ता है—इष्ट का निर्धारण, शान्ति केन्द्र पर ऐसे वीतराग या परम आनन्द की प्रतिमा को स्थापित कर लेना, जिससे यह मलिन भावधारा का, औदयिक भावधारा का जो स्रोत बह रहा है, उसे बंद कर सकें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और क्षायोपशमिक भावधारा या निर्मल भावधारा का स्रोत बहा सकें।

दो ग्रंथियां

ललाट और उसके मध्य का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसके आसपास दो ग्रन्थियां काम करती हैं—पीनियल और पिट्यूटरी। पिट्यूटरी ग्लैण्ड पर मेडिकल साइंस में काफी प्रकाश डाला गया है किन्तु लगता है कि अभी वह अधूरा है। शारीरिक दृष्टि से उस पर काफी विचार हुआ है, किन्तु पिट्यूटरी का जो आध्यात्मिक महत्त्व है, उस पर अभी बहुत कम काम हुआ है। पीनियल ग्लैण्ड पर तो बहुत ही कम कार्य हुआ है। यह हमारा अन्तर्दृष्टि (इन्ट्यूशन पावर) का स्थान है। जब अन्तर्दृष्टि जाग जाती है, भावजगत् के संघर्ष में हम विजयी बन जाते हैं।

दृष्टि : अंतर्दृष्टि

महाप्रभु ईशु के पास एक अंधा व्यक्ति आया। ईशु शक्तिशाली पुरुष थे। उनकी प्राणशक्ति बहुत जागृत थी। दया आ गई। उसे दृष्टि दे दी, अन्धे को चक्षुष्मान् बना दिया। एक दिन ईशु जा रहे थे। उनके आगे एक युवक एक वेश्या के पीछे दौड़ता हुआ जा रहा था। यीशु ने देखा—यह तो वही युवक है, जिसे आंख दी थी। उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और कहा—तुम तो वही हो, जिसे मैंने दृष्टि दी थी। यह तुम क्या गंदा काम कर रहे हो ? दृष्टि पाकर भी अंधे बने हो। युवक बोला—महाप्रभु ! एक कमी रह गई। आपने मुझे दृष्टि तो दी पर अन्तर्दृष्टि नहीं दी। अगर दृष्टि के साथ अन्तर्दृष्टि भी दी होती तो मैं वेश्या के पीछे कभी नहीं भागता।

लाइट और ब्रेक

अन्तर्दृष्टि का स्थान है मस्तिष्क का अग्रभाग। इस पर प्रयोग करने से हमारी भावधारा संतुलित बनती है। बहुत आवश्यक है अन्तर्दृष्टि का विकास और अपने पर नियंत्रण।

कार आ रही थी। चौराहे पर पुलिस का सिपाही खड़ा था। संकेत किया—कार को रोको। कार में बैठा ड्राइवर बोला—क्यों ? सिपाही बोला—कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में लाइट नहीं है। ड्राइवर बोला—सामने से हट जाओ, इसमें ब्रेक भी नहीं है। नीचे आ जाओगे।'

वह कार कितनी खतरनाक होती है, जिसमें लाइट और ब्रेक दोनों नहीं हैं। वह आदमी भी बहुत खतरनाक होता है, जिसका अपने भावों पर कण्ट्रोल नहीं है। मष्तिष्क का अग्रभाग ब्रेक का स्थान है। यही लाइट है और यही ब्रेक है। इस स्थान पर ध्यान कर, हम अपनी नियंत्रण-शक्ति को बढ़ा सकते हैं, अपनी अन्तर्दृष्टि को जागृत कर सकते हैं। प्रेक्षाध्यान शिविरों में साधक को इसीलिए दीर्घश्वास, कायोत्सर्ग और उसके बाद ज्योतिकेन्द्र की प्रेक्षा का प्रयोग कराया जाता है। इससे पीनियल और पिट्यूटरी—दोनों प्रभावित होती हैं।

संगम बिन्दु

एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है शान्तिकेन्द्र का स्थान। यहां ध्यान करने से हमारी भावधारा परिष्कृत होती है। एक प्रश्न दार्शनिकों और योग साधकों के सामने बहुत चिरकाल से रहा—आत्मा का या सूक्ष्मजगत् का, शरीर या स्थूल जगत् का संगम बिन्दु कौन-सा है ? कहां वे मिलते हैं ? प्लेटो आदि यूनानी दार्शनिकों ने कहा—आत्मा का स्थान है पीनियल ग्लैण्ड। स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का संगमबिन्दु यह हाइपोथेलेमस है, जहां स्थूल और सूक्ष्म जगत् का संगम होता है। इसलिए इस स्थान को जानना-पहचानना बहुत महत्त्वपूर्ण है। मस्तिष्क विज्ञानियों ने हाइपोथेलेमस पर काफी काम किया है, उसकी कुछ पहचान की है, लेकिन अभी भी काफी काम बाकी है। मस्तिष्क पर हजारों-हजारों वैज्ञानिकों ने शोध की है, लेकिन अभी तक इसके दस-बीस प्रतिशत रहस्य ही उद्‌घाटित हो सके हैं। अभी भी बहुत कुछ अनुद्‌घाटित है। यह मस्तिष्क का यंत्र इतना जटिल है। कर्मशास्त्र की भाषा में कहा जा सकता है—कर्म के असंख्य स्थान हैं, उतने ही स्थान इस मष्तिष्क में हैं। एक्यूप्रेशर में प्वाइण्ट खोजे जाते हैं, कौन-सा प्वाइण्ट कहां का प्रतिनिधित्व करता है। अंगूठे में भी पिट्यूटरी को प्रभावित करने वाला प्वाइण्ट है। आंख ऊपर है, किन्तु अंगुली में भी उसे प्रभावित करने वाला स्थान है। ऊपर के अंगों को प्रभावित करने वाले केन्द्र हमारे पैर के तलवों में भी विद्यमान हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरूरी है पुरुषार्थ और मार्गदर्शन

शान्तिकेन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान, मानसिक प्रतिमा की स्थापना, पवित्र शुक्ल लेश्या की स्थापना, भावधारा के परिष्कार में बहुत सहायक हैं। एक चैतन्य केन्द्र है, ज्ञानकेन्द्र। हठयोग की भाषा में उसे सहस्रारचक्र कहा गया है। वहां से हजारों किरणें फूटती हैं। प्रेक्षाध्यान में इन केन्द्रों को बहुत महत्त्व दिया गया है। हम इनका मूल्यांकन करें, अभ्यास करें तो जो दो धाराओं का आन्तरिक संघर्ष चल रहा है, उसमें हम विजयी बन सकते हैं। जरूरत है केवल पुरुषार्थ की, कर्तृत्व की, गुरु के मार्गदर्शन की। जिसका पुरुषार्थ प्रबल है और मार्गदर्शक उपलब्ध है, उसके भाव सदा स्वस्थ एवं पवित्र रह सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्य-कौशल

गीता का एक पद है—**योगः कर्मसु कौशलम्।** कर्म में कौशल का नाम योग है। यह योग की एक परिभाषा है। यह भी कहा जा सकता है—योग कर्म के कौशल का साधन बनता है। शारीरिक, मानसिक और भावात्मक—इस त्रिविध स्वास्थ्य के सन्दर्भ में ही कार्य कौशल को देखा जा सकता है, समझा जा सकता है।

प्रयोजन कार्य का

काम करना अनिवार्य नहीं है। काम करना अनिवार्य बनता है अपनी आवश्यकता पर। जितनी हमारी आवश्यकता, उतना कार्य। अपने आप में कार्य का कोई अर्थ नहीं होता। मनुष्य उतनी प्रवृत्ति करे, जितनी जरूरी हो। वह चौबीस घण्टे प्रवृत्ति करता रहे तो उसका कोई अर्थ नहीं बनता। प्रयोजन के साथ कार्य आता है। जितना प्रयोजन, उतना कार्य। प्रयोजन समाप्त, कार्य समाप्त। कहा गया—**प्रयोजनमनुद्देश्य मन्दोपि न प्रवर्तते**—प्रयोजन के बिना कोई मन्दमति आदमी भी प्रवृत्ति नहीं करता। प्रवृत्ति के लिए प्रयोजन मुख्य होता है। हमारा प्रयोजन क्या है ? प्रयोजन है जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएं—खाना, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा आदि-आदि। इसी के साथ कार्य का भी विस्तार हुआ।

वह कौशल है

वर्तमान युग में औद्योगिक और व्यावसायिक विस्तार हुआ। हजारों-हजारों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मचारी, मजदूर काम में लगे। इसके साथ कार्य की क्षमता–एफिशिएंसी का एक नया प्रश्न खड़ा हो गया। कार्यकौशल की बात आज ही नहीं, प्राचीन काल में भी रही है। प्रश्न है–कौशल किसको मानें ? वर्तमान चिंतन में कौशल के अनेक सूत्र दिए गए हैं। उनकी चर्चा करने से पूर्व कौशल शब्द को समझें। कार्य का कौशल वह है, जो दूसरे हित को बाधित न करे। कार्यकौशल है और शारीरिक स्वास्थ्य को बाधित करता है तो वह वास्तव में कौशल नहीं है। कार्य आज इतना अधिक बढ़ गया है कि उससे शारीरिक स्वास्थ्य गड़बड़ा रहा है। उससे भी ज्यादा मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है। कौशल वह है, जो लाभ दे, किन्तु हानि न पहुंचाए। यह ऐसी एलोपैथिक दवा न बने, जो एक बीमारी को मिटाए और दस बीमारियों को पैदा करे। उसके साइड इफेक्ट और रियेक्शन न हो कि नई बीमारी पैदा हो जाए। कुशल चिकित्सा वह मानी जाती है, जो बीमारी को मिटाए, किन्तु कोई नई व्याधि पैदा न करे। हमारा कार्यकौशल बढ़ा है, किन्तु उसी के साथ मानसिक अस्तव्यस्तता भी बढ़ी है।

प्रश्न सीमा का

भारतीय चितंन के संदर्भ में एक प्रश्न उभरता रहा है–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–इनकी सीमा क्या है ? कहा गया है–वह काम अच्छा नहीं है, जो अर्थ को बाधित करे। व्यक्ति काम में इतना लिप्त न हो जाए कि रोजी-रोटी भी न जुटा सके, अर्थ का अर्जन भी न कर सके। अर्थ का अर्जन जीवन के लिए अनिवार्य है, किन्तु अर्थार्जन में व्यक्ति इतना न उलझ जाए कि वह काम को बाधित करे। आदमी अपने धर्म को, कर्तव्य और आत्मा की पवित्रता को न साध सके तो अर्थ और काम–दोनों निकृष्ट बन जाएंगे।

दूसरा पहलू

कौशल पर विचार करते समय हमें अनेक पहलुओं पर विचार करना होगा। कौशल बढ़ा है, लेकिन वह स्वास्थ्य को तो नहीं प्रभावित कर रहा है ? वह मानसिक विक्षेप और पागलपन को तो नहीं बढ़ा रहा है, वह हमारे आवेश और उत्तेजना को तो नहीं बढ़ावा दे रहा है। अगर ऐसा हो रहा है तो उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्यकौशल और कार्यक्षमता नहीं कहा जा सकता। एक राष्ट्र के सन्दर्भ में कहा जाता है—वहां कार्यकौशल बहुत बढ़ा है और विश्व बाजार पर उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया है। यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है किन्तु इसका दूसरा पहलू भी देखें। वह यह है कि वहां आत्महत्या सबसे ज्यादा बढ़ी है। तलाक ज्यादा बढ़े हैं। अनिद्रा वहां का प्रमुख रोग बन रहा है और जल्दी मरने की दर भी बढ़ी है। हम उनका कार्यकौशल क्या मानें ? एक संतुलन होना चाहिए। कार्य में दक्षता बढ़े तो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य भी उसी अनुपात में बढ़े।

विकास की अवधारणा

आज विकास और कार्यकौशल की अवधारणा मात्र पदार्थ एवं पदार्थ-निर्माण पर अटक गई है। चेतना के सारे आयामों को गौण कर दिया गया है। चेतना का उसके सामने कुछ भी मूल्य नहीं रहा। आदमी कितना ही बिगड़ता चला जाए, कोई चिन्ता नहीं। पदार्थ का विकास अधिकाधिक होना चाहिए। मल्टीस्टोरीज बिल्डिंग बनें, बढ़िया कारें बनें, शीघ्र गति वाले वायुयान बनें, अंतरिक्षयान बनें, समुद्र और अन्तरिक्ष में नगर बसाने की कल्पना आगे बढ़े। हर दिशा में विकास और कार्यकौशल बढ़ रहा है, लेकिन आदमी अच्छा बने, इसका प्रयास बिल्कुल नहीं हो रहा है। आदमी अपने आप में इतना पीड़ित और अशान्त है कि उसकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती। उसके लिए कोई चिन्ता भी नहीं है। थोड़ी-बहुत है भी तो उसके लिए उपचार के रूप में गोली-टिकिया ईजाद करने के प्रयत्न हो रहे हैं, चेतना को और ज्यादा निकम्मा बनाया जा रहा है। इस स्थिति में कार्य-कौशल को समझना बड़ा कठिन है।

कसौटी भावात्मक स्वास्थ्य की

भावात्मक स्वास्थ्य के अभाव में कार्यकौशल की संभावना नहीं की जा सकती। भावात्मक स्वास्थ्य का कोई पैरामीटर या पैमाना नहीं है, किन्तु व्यक्ति के व्यवहार से हम उसे परख सकते हैं। व्यवहार के आधार पर भावात्मक स्वास्थ्य की चार कसौटियां निर्धारित की जा सकती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

● उपशम—मन की शान्ति
● मृदुता या विनम्र व्यवहार
● मृदुता या निश्छल व्यवहार
● संतोष

भावात्मक स्वास्थ्य की ये चार कसौटियां हैं। हम तुलना करें—कार्यकौशल में कौन घट रहा है ? कौन बढ़ रहा है ? कार्यकौशल मन की अशान्ति तो पैदा नहीं कर रहा है, विनम्र व्यवहार में बाधा तो नहीं डाल रहा है ? आदमी को अहंकारी और उत्तेजित तो नहीं बना रहा है ? हमारी सरलता को भंग नहीं कर रहा है ? लोभ को इतना तो नहीं बढ़ा रहा है कि सारे संसार को अपने में ही समेटने की आकांक्षा जग जाए ? अगर ऐसा होता है तो फिर कार्य की दक्षता को अदक्षता ही कहा जाएगा।

कार्य-क्षमता का प्रयोजन क्या है ? आखिर सब कुछ किसलिए है ? मनुष्य की सुख-सुविधा के लिए सब कुछ हो रहा है और मनुष्य स्वयं टूटता जा रहा है। हमारी प्रवृत्ति का कोई अर्थ नहीं रहा। कार्यकौशल की पहली परिभाषा यह होगी—जो जीवन के किसी अन्य पक्ष को प्रभावित न करे, बाधित न करे, पीड़ित न करे, वह कार्यकौशल है।

चिन्तन, निर्णय और क्रियान्विति

हम कार्य-कौशल के साधनों पर विचार करें। इसके लिए कार्य की एक रणनीति बनानी होगी। कोई भी कार्य हो, उसे योजनापूर्वक करें। कार्यकौशल के लिए लेनिन का एक प्रसिद्ध सूत्र है—**निर्णय, चिन्तन और क्रियान्विति** में दूरी न हो। उनमें सामंजस्य रहे। चिंतन आज किया, निर्णय एक वर्ष के बाद और क्रियान्विति पांच वर्ष के बाद, यह बात नहीं होनी चाहिए। संस्कृत साहित्य में इसे दीर्घसूत्रता कहा गया है। संस्कृत की एक कथा है—कुछ विद्वानों को भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन में परोसी गईं सिवइयां। एक विद्वान् ने लम्बी सिवइयों को देखकर सोचा—**दीर्घसूत्री विनश्यति**। जो दीर्घसूत्री होता है, वह नष्ट हो जाता है। यह तो दीर्घसूत्री है, इसे नहीं खाना चाहिए। इसका तात्पर्य है—जिसका चिंतन लम्बा होता है और अंतहीन चलता है, वह बिलकुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नष्ट हो जाता है, कार्य में असफल हो जाता है। काल पहले ही उसका रस पी जाता है।

दूध कहां गया ?

गाय की दूध देने की क्षमता कम हो गई। पांच किलो देने वाली एक किलो देने लगी। मालिक ने सोचा—घर में एक महीने बाद विवाह का प्रसंग है। उसके मन में विकल्प आया—विवाह में पचास किलो दूध की जरूरत होगी और गाय दे रही है मात्र एक किलोग्राम। मैं क्यों न इसे दुहना बन्द कर दूं। विवाह के दिन एक साथ पचास किलो दूध निकाल लूंगा। चिन्तन की क्रियान्विति की, दुहना बन्द कर दिया। वह विवाह के दिन गाय को दुहने बैठा तो पात्र में एक बूंद भी दूध न गिरा। वह उलझन और चिन्तन में पड़ गया कि दूध आखिर कहां गया ? उसे काल पी गया।

जो काम जिस समय करना चाहिए, उस समय न करके लम्बे अन्तराल के बाद किया जाए तो असफलता ही हाथ लगेगी। कार्यकौशल का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—चिन्तन, निर्णय और क्रियान्विति में लम्बा अन्तराल न हो।

कार्यकौशल का दूसरा सूत्र है—हड़बड़ी में कोई काम न करें। **सहसा विदधीत क्रियाम्**—सहसा कोई काम न करें, चिन्तन और विवेक पूर्वक करें।

एकाग्रता का विकास

हम प्रेक्षाध्यान के सन्दर्भ में विचार करें। कार्यकौशल पहला सूत्र होगा—एकाग्रता का विकास। ध्यान का अर्थ ही है एकाग्रता का विकास। दूसरा सूत्र है—विचारशून्य हो जाना, मन से परे चले जाना। पहला सूत्र कार्य-कौशल के लिए बहुत सफल बनता है। दूसरा सूत्र कार्य-कौशल को बढ़ाता तो है, लेकिन यह बहुत आगे की बात है। हम पहले एक बिन्दु पर टिकना जानें। एक विचार, एक विकल्प, एक कार्य लें और उसी में तन्मय बन जाएं। जो काम करें, उसी में पूरी तरह चित्त को लगा दें। चित्त अलग और कार्य अलग, यह दूरी न रहे। मन को भी उसी में लगाए। हमारी भावात्मक दूरी भी न रहे। व्यक्ति कार्य करने बैठा। यदि भाव क्रोध या अहंकार का है तो कार्य प्रभावित होगा। कार्य करें तो अध्यवसान—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तःकरण की भावना भी उसके साथ जुड़ जानी चाहिए। हमारे अन्तःकरण की सारी प्रवृत्तियां उसके लिए समर्पित हो जाएं। जब तक उस कार्य के लिए समर्पण नहीं होता, तब तक कार्य-कौशल नहीं बढ़ता। समर्पण के बाद फिर शेष कुछ नहीं बचता।

इतना समर्पण चाहिए

अरब के एक बाजार में गुलामों की बिक्री हो रही थी। एक ग्राहक ने किसी गुलाम से कहा—'मैं तुम्हें खरीदना चाहता हूं। क्या तुम मेरे साथ चलोगे ?'

'चलूंगा'

'क्या करोगे ?'

'मालिक ! जो आप कहेंगे।'

'कहां रहोगे ?'

'जहां आप रखेंगे।'

'क्या खाओगे ?'

'जो आप देंगे।'

'कहां सोओगे ?'

'जहां आप बताएंगे।'

मालिक पूछता गया और गुलाम ने एक ही उत्तर दिया—जो आप कहेंगे। एक फकीर पास में खड़ा था। वह देखकर स्तब्ध रह गया। उसकी समझ में आ गया कि वह साधना में सफल क्यों नहीं हो रहा है। उसने सोचा—एक गुलाम अपने मालिक के लिए इतना समर्पित होता है और मैं अपने प्रभु का गुलाम बनकर इतना भी समर्पित नहीं हूं। मुझे इस गुलाम जितना समर्पित होना पड़ेगा, तभी प्रभु के दर्शन होंगे। यह स्थिति बनती है तो कार्य-कौशल बढ़ता है। जो ध्यान साधना में सफल होना चाहता है, एकाग्र होना चाहता है, उसे इतने शब्दों पर ध्यान देना होगा—**तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसाणे, तदत्थोवउत्ते** और **तदप्पियकरणे**—पूर्ण तादात्म्य से लेकर समर्पण तक की व्यवस्था होगी तब कार्य में सफलता मिलेगी।

हमारी एकाग्रता के कई रूप बन जाते हैं—एक बिन्दु पर टिकना या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तादात्म्य स्थापित कर लेना, एक रस हो जाना, जैसे दूध में चीनी और पूरा समर्पण कर देना।

वर्तमान में जीएं

दूसरा सूत्र है—वर्तमान में जीना। वर्तमान का अनुभव, वर्तमान का जीवन और वर्तमान का श्वास। हम श्वास लेते हैं तो कभी अतीत में नहीं लेते, न भविष्य में लेते हैं। कल्पना तो अतीत की भी करते हैं, भविष्य की भी करते हैं, किन्तु हमारा श्वास केवल वर्तमान का ही होता है। हमारी एकाग्रता का एक बहुत बड़ा आलम्बन बनता है श्वास। श्वास पर ध्यान दिया, हम वर्तमान में आ गए, भावक्रिया हो गई। जैन साहित्य में दो शब्द आते हैं—द्रव्यक्रिया और भावक्रिया। द्रव्यक्रिया का तात्पर्य है मुर्दा क्रिया, मृत क्रिया। भावक्रिया का अर्थ है जीवित क्रिया, प्राणवान् क्रिया। वर्तमान में जो जीया जा रहा है, केवल उसी का अनुभव करते रहें, यह कार्य-कौशल का महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

एकाग्रता और कार्यकौशल

एकाग्रता के लिए साधना जरूरी है, अभ्यास जरूरी है। अभ्यास होता है तो एकाग्रता बढ़ जाती है। ऐसे लोगों को देखा है, जिन्होंने श्वास के सहारे, चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा के सहारे अपनी एकाग्रता का विकास किया है और अपने कार्यकौशल को बढ़ाया है। इससे उनकी एकाग्रता भी बढ़ गई। एक समस्या जरूर उनके सामने आयी कि वे खाली हो गए। एक भाई ने कहा—मैं दो घण्टा ध्यान करूंगा।

मैंने कहा—'कैसे करोगे ? समय कहां है, तुम्हारे पास ?

वह बोला—'समय मेरे पास बहुत हो गया है।'

'कहां से आया ? क्या व्यस्तता घटी है ?

'महाराज ! मेरी एकाग्रता इतनी सध गई है कि पांच-सात घण्टे में जो काम करता था, वह तीन घण्टे में हो जाता है। इस अवशिष्ट समय में मैं एकाग्रता के अधिक प्रयोग करना चाहता हूं।'

हम सूक्ष्मता से देखें, पता चलेगा—हमारा समय काम करने में कम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगता है, व्यवधान में ज्यादा जाता है। व्यक्ति ने कोई चिन्तन शुरू किया, लेखा करने बैठा, और बीच में ही कोई ऐसा विकल्प आया कि काम अटक गया। व्यक्ति आधा घण्टा उसी विकल्प में उलझ गया, आधी शक्ति उस विकल्प में खर्च हो गई। आप अनुभव करेंगे कि जब कभी माला फेरने बैठते हैं, ध्यान करने बैठते हैं तो मंत्र के एक-दो उच्चारण के बाद ही कोई ऐसा विकल्प आ जाता है कि मन उसी में उलझ जाता है, ध्यान-सामायिक मन से उतर जाते हैं, मन चक्कर काटता ही रह जाता है।

घटना राजर्षि की

व्याख्या साहित्य की एक कथा है। एक मुनि थे प्रसन्नचन्द राजर्षि। वे कायोत्सर्ग की मुद्रा में एक पेड़ के नीचे खड़े थे। राजा श्रेणिक जा रहे थे। उनके आगे-आगे एक आदमी चल रहा था। उसका नाम था दुर्मुख और प्रकृति का भी वह वैसा ही था। मुनि को देखते ही बोला—साधु बन गया। अब यहां ढोंग और पाखण्ड किए खड़ा है। इसे पता नहीं, इसके पुत्र के राज्य पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया है, वह बेचारा हारता चला जा रहा है और यह यहां ध्यान लगाए बैठा है। यह बात सुनते ही राजर्षि प्रसन्नचन्द्र इस शब्द पर अटक गये— युद्ध में पुत्र पराजित हो रहा है। ध्यान तो छूट गया और युद्ध करना शुरू कर दिया। घण्टों तक युद्ध चलता रहा। न समरांगण, न सामने शत्रु, न शत्रु की सेना, पर अन्तर्गजगत् में ऐसा युद्ध छिड़ा कि सारा जीवन युद्ध के साथ जुड़ गया। श्रेणिक महावीर के पास पहुंचा। वंदना कर बोला—भन्ते ! मुनि प्रसन्नचन्द्र कायोत्सर्ग की मुद्रा में ध्यान की गहराई में हैं। इस समय यदि वे मर जाएं तो कहां जाएंगे। महावीर ने कहा—नरक में। श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह भगवान् की बात को झूठ माने तो कैसे माने और सच माने तो कैसे माने ? दोनों ओर समस्या। अंतिम छोर पर चल रहा आदमी आया, सुमुख नाम था उसका। राजर्षि को वंदना कर बोला—धन्य हैं महाराज ! राजपाट को छोड़कर मुनि बन गए और अब ध्यान में इतनी गहराई में डूबे हुए हैं। मुनि शब्द कान में पड़ा, तब ध्यान आया—अरे, मैं तो मुनि बन गया हूं। किसका राज्य, किसका लड़का, कौन-सा युद्ध ? वे संभले, मुनित्व पर एकाग्र बने और सारी स्थिति बदल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई। श्रेणिक ने फिर पूछा—महाराज ! अब क्या स्थिति है ? महावीर ने कहा—परम तक पहुंच गए। जहां पहुंचना था, पहुंच गए।

पवित्र एकाग्रता

हम जो करना चाहते हैं, उसमें बहुत व्यवधान आते हैं। स्मृति का चिन्तन और कल्पना का, आन्तरिक भावों का, क्रोध आदि संवेगों का व्यवधान आता है, कार्य बीच में रुक जाता है। कार्य-कौशल की वृद्धि के लिए आवश्यक है कि हम पवित्र एकाग्रता की साधना करें। एकाग्रता एक बगुले की भी हो सकती है किन्तु वैसी एकाग्रता नहीं होनी चाहिए। इसीलिए प्रेक्षाध्यान में इस बात पर बहुत प्रकाश डाला गया है कि आर्तध्यान और रौद्रध्यान में होने वाली एकाग्रता सफलता की एकाग्रता नहीं है। एकाग्रता पवित्र लक्ष्य पर होनी चाहिए। लक्ष्य पवित्र बनाओ और उसमें एकाग्र बनो। पवित्रता का व्यावहारिक अर्थ यह है—दूसरे का अहित, अनिष्ट जिस कार्य के साथ जुड़ा हो, उस कार्य में एकाग्रता न बढ़े।

विशुद्धि केन्द्र का ध्यान

विशुद्धि केन्द्र का ध्यान भी कार्य-कौशल की वृद्धि में सहायक होता है। योग में बहुत ठीक नाम का प्रयोग किया गया—विशुद्धि केन्द्र। यह हमारी विशुद्धि का केन्द्र है। शरीरशास्त्र की दृष्टि से इसके अनेक काम हैं। मुख्य काम है चयापचय की क्रिया में संतुलन रखना, उसे ठीक बनाए रखना। इसे आचार्य का स्थान माना गया है। आचार्य का अर्थ है—स्वयं आचारकुशल होना और दूसरों को आचार में प्रवृत्त करना। यह स्थान एकाग्रता और पवित्रता के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

कार्यकौशल का हृदय

हम इन सबका प्रयोग करें, निर्दोष कार्य-कौशल का अर्थ और भाषा समझ पाएंगे। हमारा वह कार्य-कौशल विकसित हो सकता है, जो किसी को अकुशल न बनाए, पीड़ा न पहुंचाए, दूसरों के हितों पर कुठाराघात न करे, दूसरे का शोषण न करे। प्रेक्षाध्यान के सन्दर्भ में ऐसे कार्य-कौशल को ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौशल माना जाता है। गीता के शब्दों में उसी को योग या कार्य-कौशल कहा जा सकता है। इसी सचाई को ध्यान में रखकर हम अपनी दक्षता या एफिशिएंसी को बढ़ाने का प्रयत्न करें तो बहुत भला होगा। केवल कार्य-कौशल शब्द के आधार पर हम शोषण, बाधाकारी कौशल की दिशा में आगे बढ़े तो वह मानव जाति के लिए कल्याणकारी नहीं होगा। हमारा सारा प्रयत्न और पुरुषार्थ इस दिशा में चले कि हमारा अपना कार्य किसी दूसरे के कार्य में बाधा न पहुंचाए। कार्य-कौशल का हृदय यही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन-दर्शन

जीवन के बारे में हमारी धारणा स्पष्ट नहीं है। कुछ लोग जीवन के बारे में सोचते अवश्य हैं, किन्तु अधिकांश लोग जीवन के बारे में नहीं सोचते। शरीर के बारे में जानते हैं, थोड़ा-बहुत मन के बारे में जानते हैं, ज्यादा जीविका के बारे में जानते हैं। जीवन की आवश्यकताएं इतनी प्रखर बन गई हैं कि उनमें ही सारा समय का चक्र घूम जाता है, सारी परिक्रमा केवल उसी की परिधि में होती है।

जीवन की आवश्यकताएं

उपाध्याय यशोविजयी ने जीवन की आवश्यकताओं का मार्मिक चित्रण किया है—

प्रथममशनपानप्राप्तिवांछाविहस्ता,
स्तदनुवसनवेश्मालंकृतिव्यग्रचिन्ताः।
परिणयनमपत्यावाप्तिमिष्टेन्द्रियार्थान्,
सततमभिलषन्तः स्वस्थतां क्वाश्नुवीरन् ?

पहली समस्या है—मनुष्य भोजन-पानी को उपलब्ध करने की इच्छा से व्याकुल है। दूसरी समस्या है, वस्त्र, मकान और अलंकार की प्राप्ति के लिए उसका चित्त व्यग्र बना हुआ है। तीसरी समस्या है—विवाह, संतान-प्राप्ति, मनोज्ञ इन्द्रिय विषयों को पाने की निरंतर अभिलाषा बनी हुई है। जीवन की समस्याओं में उलझा वह स्वास्थ्य को कहां उपलब्ध होता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रियां प्रसन्न रहें

हम जीवन को सर्वांग दृष्टि से देखते भी नहीं हैं और उस पर विचार भी नहीं करते। हमारा ध्यान सबसे ज्यादा अटका हुआ है शरीर पर। यद्यपि उसे भी ठीक रखना नहीं जानते, फिर भी ऊपर से खूब सजा हुआ रखते हैं। थोड़ा-बहुत स्वास्थ्य का भी ध्यान रखते हैं। स्वस्थ रहें, यह कल्पना और चिन्ता रहती है। इससे आगे बढ़ें। इन्द्रियों के प्रति हमारी चिन्ता बहुत कम है। इन्द्रियां स्वस्थ कैसे रहें, इस दिशा में प्रयत्न नहीं करते। शरीर कभी स्वस्थ नहीं रह सकता, यदि इन्द्रियां स्वस्थ नहीं हैं। क्या कभी कान पर विशेष ध्यान दिया ? आंख, नाक और जीभ पर ध्यान दिया ? यदि रसनेन्द्रिय–जीभ प्रसन्न नहीं है, स्वच्छ नहीं है तो जीवन एक समस्या के साथ जुड़ जाएगा। बहुत गहरा संबंध है इसका जीवन के साथ। तंत्रशास्त्र में हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों पर बहुत गहरा विचार किया गया। ये दोनों स्वस्थ नहीं हैं तो जीवन प्रसन्न नहीं रह सकता। जीभ का संबंध हमारी जननेन्द्रिय के साथ भी है। यदि जीभ को प्रसन्न और निर्मल रखने का प्रयत्न नहीं किया, जीभ की चंचलता को कम करने का प्रयत्न नहीं किया तो काम केन्द्र अधिक उत्तेजित रहेगा और वह जीवन में बाधा डालता रहेगा।

जीभ का मूल्य

जीभ का बहुत मूल्य है। बोलने के साथ जीभ का जो संबंध है, वह दूसरे नम्बर पर है। बोलना जीभ का कोई मुख्य काम नहीं है। मुख्य काम है आस्वाद, रसन और उसके प्रभाव को अनुभव कराना। स्वाद का शरीर पर बहुत प्रभाव होता है। हमने इस दृष्टि से जीभ पर अपना अनुशासन स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया। यदि ध्यान करने वाला व्यक्ति इस सचाई को नहीं जानता है–जीभ की चंचलता को कम किए बिना मन की चंचलता को कम नहीं किया जा सकता तो उसका प्रयत्न बहुत सफल नहीं होगा। अनेक बार अभ्यास करने पर भी मन की चंचलता कम नहीं होगी। यह एक बहुत बड़ा रहस्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ नाक का

हम नाक को देखें। इसका सीधा काम तो गंध लेना है पर इतना ही नहीं है। गंध का हमारे जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। गंध के द्वारा मस्तिष्क बहुत प्रभावित होता है। नाक जितना संयत रहेगा, नाक की साधना जितनी अच्छी रहेगी, प्राणकेन्द्र पर जितना ध्यान का अभ्यास होगा, उतना ही मस्तिष्क पर भी हमारा नियंत्रण रहेगा। नाक, आंख—ये सारे एक प्रकार से मस्तिष्क के स्विचबोर्ड हैं। कब स्विच ऑन करें और कब ऑफ करें, इस पर सारा निर्भर है। स्विच ऑन किया, बिजली जल गई, ऑफ किया, बुझ गई। जो इन स्विच बोर्डों को जान लेता है, वह मस्तिष्क के रहस्यों को अनावृत करने में सफल हो सकता है। इन्द्रियां प्रसन्न हैं तो मस्तिष्क प्रसन्न रहेगा। इन्द्रियां अप्रसन्न हैं तो मस्तिष्क में भी बाधा आ जाएगी।

संदर्भ कान का

कान हमारा बहुत महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। इसका मस्तिष्क के साथ, नाड़ीतंत्र और पूरे शरीर के साथ संबंध जुड़ा हुआ है। एक्यूप्रेशर और एक्युपंक्चर की पद्धति में इस पर बहुत ध्यान दिया गया है। यह माना जाता है—कान एक गर्भस्थ बच्चा है। गर्भ में बच्चे का जो आकार होता है, कान का वही आकार है। जितनी क्षमताएं हमारे शरीर की हैं, वे सब कान में निहित हैं। हजारों-हजारों तंतु इससे जुड़े हुए हैं। यह शरीर शास्त्र का विषय है किन्तु इसमें कितने प्वाइण्ट हैं, कितने केन्द्र हैं, ये शरीर शास्त्र से परे का विषय बन जाते हैं। जो व्यक्ति कान को प्रसन्न रखना नहीं जानता, जीवन को प्रसन्न नहीं रख सकता।

संदर्भ आंख का

आंख का काम देखना है, लेकिन ध्यान करने का जितना अधिक अच्छा केन्द्र आंख है, शायद उतना अच्छा केन्द्र दूसरा कम होगा। आंख दूसरों को देखती है। ध्यान का प्रयोग करें और आंख में ध्यान केन्द्रित करें, आंख खुली रहे। ध्येय वस्तु आंख को बनाएं, तो ध्यान बहुत अच्छा होगा और मन इतना शान्त हो जाएगा, ऐसा लगेगा जैसे मन में कोई उत्तेजना ही नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक प्रयोग है—खुली आंख से एकटक देखें। हठयोग में इसे त्राटक कहा जाता है। प्रेक्षाध्यान में इस प्रयोग का नाम है—अनिमेषप्रेक्षा। भगवान् महावीर इसका बहुत प्रयोग करते थे। अतीन्द्रिय चेतना को जगाने का शक्तिशाली साधन है—खुली आंख से अपनी ध्येय वस्तु को देखना। आंख खुली रखें और नाक या प्राणकेन्द्र पर उसे टिका दें। यदि पांच मिनट भी ऐसा कर सकें तो फिर कभी यह प्रश्न नहीं होगा कि मन बहुत चंचल है। **न्यस्तनासाग्रदृष्टि**—दृष्टि को नासाग्र पर न्यस्त करें। यह हमारे शरीर का प्राणकेन्द्र है। प्राणकेन्द्र पर ही ध्यान टिक जाएगा तो फिर मन की चंचलता कहां रहेगी ? खुली आंख के ध्यान को योग की भाषा में सांभवी मुद्रा कहा जाता है। यह शिव की मुद्रा है। शिव इस मुद्रा में बहुत ध्यान करते थे। महावीर की ध्यान मुद्रा भी खुली आंख से नासाग्र देखने की मुद्रा थी। शिवजी की मुद्रा थी खुली आंख से भृकुटी को देखने की।

मन को समझें

मनोविज्ञान में मन को समझने का बहुत प्रयत्न किया गया है। फ्रायड से लेकर आज तक सैकड़ों मनोवैज्ञानिकों ने इस पर प्रकाश डाला है, नए-नए अनुसंधान और नई-नई खोजें की हैं। फिर भी मन का विषय इतना बड़ा है कि हजारों प्रयत्नों के बाद भी उसे पूरा नहीं समझा जा सकता।

जैन साहित्य में एक शब्द आता है पर्याय, अवस्था। वर्णमाला का पहला अक्षर है 'अ'। एक 'अ' को समझने के लिए बहुत समय चाहिए। क्योंकि अक्षर तो एक है किन्तु उसके पर्याय अनन्त हैं। अब इन अनन्त पर्यायों को आदमी एक जीवन में कैसे पूरा समझ पाएगा। संभव ही नहीं है। एक आचार्य के मन में विकल्प उठा—एक अक्षर के अनन्त पर्याय कैसे हो सकते हैं ? यह समझाना चाहिए। समझाने के लिए उन्होंने एक स्थूल उदाहरण लिया। संस्कृत के अनुष्टुप् छंद का एक चरण है—**राजा नो ददते सौख्यम्**। उसके आठ अक्षर हैं। अर्थ केवल इतना है—राजा सुख देते हैं। इस एक चरण के जब उन्होंने अर्थ करने शुरू किए तो इन आठ अक्षरों के आठ लाख अर्थ निकले। इस एक चरण पर एक ग्रन्थ ही बन गया, जिसका नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—अष्टलक्षार्थी। उन्होंने लिखा—मेरे जैसा अल्पज्ञ व्यक्ति आठ अक्षरों के आठ लाख अर्थ कर सकता है तो बहुज्ञानी, विशिष्टज्ञानी और बहुश्रुत न जाने कितने अर्थ कर सकते हैं।

इतना बड़ा है हमारा पर्याय का जगत् और सूक्ष्म जगत्, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मन के पर्याय भी अनंत हैं। अध्ययन करने वाला कितने पर्यायों का अध्ययन करेगा और कितना जानेगा, नई-नई अवस्थाएं आती ही चली जाएंगी।

विचार प्रेक्षा

प्रेक्षाध्यान इसीलिए जीवन का दर्शन है कि उसमें मन को समझने का बहुत प्रयास किया गया है, केवल सैद्धान्तिक रूप में ही नहीं, प्रायोगिक रूप में भी। केवल सिद्धान्त के आधार पर मन को समझें तो, शायद पूरी बात पकड़ में नहीं आएगी। अभ्यास के स्तर पर मन को समझने का प्रयत्न करें। एक संकल्प लिया और मन को ही ध्येय वस्तु बना लिया। जैसे हम ध्यान के लिए श्वास को ध्येय वस्तु बनाते हैं, श्वास हमारे ध्यान का विषय बन जाता है। हम मन को ध्येय वस्तु बना लें। प्रेक्षाध्यान में इसे कहते हैं विचार प्रेक्षा। मस्तिष्क पर ध्यान केन्द्रित करें और जो विचार आएं, उन विचारों को देखना शुरू कर दें। न तो विचारों को रोकें और न अपनी ओर से उन्हें प्रेरित करें। केवल ध्यान को मस्तिष्क पर टिका दें। जो भी विचार आए, अच्छा आए या बुरा आए, उसे केवल देखें, द्रष्टा बन जाएं। यह विचार प्रेक्षा शायद मन को समझने का सबसे शक्तिशाली माध्यम है।

शरीर प्रेक्षा

शरीर प्रेक्षा का अर्थ है—शरीर को देखना और शरीर में होने वाले प्रकम्पनों को देखना। प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में एक प्रयोग और विकसित किया है—सप्तधातुप्रेक्षा। सबसे पहले हम रसधातु पर ध्यान केन्द्रित करें। फिर रक्तधातु—रक्त पर ध्यान केन्द्रित करें, रक्त संचार को देखें और उसे समझने का प्रयत्न करें। तीसरा है अस्थिधातु। हड्डियों पर ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केन्द्रित करें और उन्हें समझने का प्रयत्न करें। फिर मज्जा पर ध्यान केन्द्रित करें, शुक्र पर ध्यान करें। इस प्रकार क्रमशः सातों धातुओं पर ध्यान केन्द्रित करें। यह है शरीर प्रेक्षा के अन्तर्गत सप्तधातुओं को समझने का प्रयोग।

प्राणप्रेक्षा

एक प्रयोग है प्राणप्रेक्षा। सबसे ज्यादा शक्तिशाली प्रयोग है प्राणप्रेक्षा। प्राण पर ध्यान केन्द्रित करना बड़ा जटिल है। मेडिकल साइंस में शरीर, मन और इन्द्रियां—ये सारे विषय आए हैं किन्तु प्राण का विषय अभी भी अछूता है। वाइटल एनर्जी, वाइटल फोर्स—ऐसे शब्द भी चलते हैं किन्तु प्राणपथ और प्राण का प्रवाह कैसा है, इस पर अभी कोई विशेष काम नहीं हुआ है। इस दिशा में ध्यान भी नहीं गया। इस पर एक्युप्रेशर और एक्युपंक्चर पद्धति वालों ने काफी ध्यान दिया है। योग में ईड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि के रूप में इनका दर्शन है। शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियां बतलाई गई हैं। वे नाड़ियां शरीर का अवयव होतीं तो डॉक्टर उन्हें पकड़ लेते। आज का डॉक्टर शरीर के बारे में जितना जानता है, दूसरा नहीं जानता होगा। किन्तु प्राणतंत्र शरीर से भी परे है। वह कोई शरीर का अवयव नहीं है। हमारे शरीर में प्राणप्रवाह के हजारों मार्ग हैं। प्राण को समझने का मतलब अनेक स्थितियों को समझना है।

असंतुलित है प्राण

हम स्वास्थ्य का निदर्शन लें। आज बहुत-से यंत्र विकसित हो गए हैं। निदान करने के इतने उपकरण बने हैं, जितने पहले शायद कभी नहीं रहे। इतनी बड़ी-बड़ी मशीने हैं, जिनमें शरीर के जर्रे-जर्रे को देखा जा सकता है, परखा जा सकता है। मस्तिष्क और हृदय के लिए बड़ी-बड़ी मशीनें तैयार हैं। किन्तु एक विडम्बना है—बहुत-सारे रोगी यह कहते हैं—हमने सारे चेकअप—टेस्ट करा लिए। डॉक्टर कहते हैं—कोई बीमारी नहीं है। यंत्र बतलाते हैं— कोई बीमारी नहीं है किन्तु मैं बहुत कष्ट भोग रहा हूं। हम उन्हें प्राण का प्रयोग बताते हैं। उन्हें यह समझाते हैं, तुम्हारी बीमारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई शरीर की बीमारी नहीं है, जर्म्स और वायरस की बीमारी नहीं है, विजातीय तत्त्व की बीमारी नहीं है, किन्तु तुम्हारा प्राण असंतुलित है।

चेतन यंत्र के अधीन है

इस बात को न डॉक्टर पकड़ पाते हैं और न उनके यंत्र पकड़ पाते हैं। हमने अनेक बार प्राण के प्रयोग कराए, प्राण को समझने का प्रयत्न किया। डॉक्टर यंत्र के बहुत अधीन हैं। वे सबसे पहले यह देखते हैं—रिपोर्ट क्या है। जो यंत्र बताता है, वही चेतन बताता है तो फिर फर्क क्या पड़ा ? चेतन यंत्र के अधीन हो गया। होना तो यह चाहिए—यंत्र चेतन के अधीन रहे। आज ऐसा न होकर उल्टा हो गया।

प्राण संतुलित होता है तो काफी समस्याएं सुलझ जाती हैं। तुलसी अध्यात्म नीडम्, लाडनूं में प्रेक्षा ध्यान का शिविर चल रहा था। जेठाभाई झवेरी शिविर में आए। उनकी कमर में पट्टा बंधा था। मैंने कहा—यह क्या हुआ ? जेठाभाई ने कहा—स्पोन्डेलाइटिस की बीमारी हो गई। अब न तो सीधा बैठ सकता हूं और न सीधा सो सकता हूं। हमने शिविरार्थियों को प्राण का प्रयोग कराया। जेठाभाई ने उसे पकड़ लिया। यह प्रयोग कई बार किया। दूसरे दिन सूर्योदय के समय सूर्य के सामने बैठ कर पुनः प्रयोग किया। तीसरे दिन उनका पट्टा खुल गया। सीधे बैठने लगे और लेटने भी लगे।

ईश्वर तब हंसता है

ईश्वर कब हंसता है, इसके कई कारण बतलाए गए हैं। उनमें एक कारण यह है—रोगी मर रहा है और डॉक्टर कहता है—मैं जिला दूंगा, तब ईश्वर हंसता है। क्या डॉक्टर किसी को जिलाता है ? अगर दवा किसी को जिलाती है तो आज आबादी इतनी बढ़ जाती कि पांच अरब के स्थान पर पचीस अरब होती। कोई मरता ही नहीं। डॉक्टर सबको जिला देते। जिलाने वाली है हमारी प्राणशक्ति। जब तक प्राणशक्ति है, तब तक कोशिका की प्रजनन शक्ति बनी रहेगी। जब तक कोशिका की प्रजनन शक्ति बनी रहेगी, तब तक जीवन रहेगा। कोशिका की प्रजनन शक्ति समाप्त हुई, हमारा रेजिस्टेंस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पॉवर कम हो गया, इम्युनिटी कम हो गई, तो फिर न डॉक्टर जिला सकता है, न दवा जिला सकती है।

जीवन का मुख्य आधार

प्राणशक्ति हमारे जीवन का मुख्य आधार है। संस्कृत में जीवन का अर्थ ही है प्राण। इसे समझना प्रेक्षाध्यान का मुख्य विषय है। प्राण दस बतलाए गए हैं। शरीर तो है किन्तु उसके संचालन की शक्ति का नाम है प्राण। इन्द्रिय और इन्द्रिय प्राण। पांच इन्द्रियों की संचालक शक्ति है प्राण। मन और मनोबल प्राण। इसी प्रकार है श्वास और श्वास का प्राण। हम श्वास लेते हैं, वह श्वास है और जो श्वास लेने वाली शक्ति है, वह है श्वास प्राण। प्रेक्षाध्यान में एक प्रयोग कराया जाता है—श्वास लें और अनुभव करें—श्वास जा रहा है, वह प्राण के द्वारा जा रहा है। श्वास और प्राण को अलग-अलग देखने का अभ्यास करें। जब हम प्राण और श्वास को अलग समझने का प्रयत्न करते हैं तब मन की सूक्ष्मता और एकाग्रता बहुत बढ़ जाती है। ऐसा लगता है— जैसे एक वैज्ञानिक इतने बड़े अनुसंधान में लग गया है, वह सारी बाहरी बातें भूल गया है।

बाहर की विस्मृति

आईंस्टीन ने किसी को खाने पर निमंत्रित किया। वह व्यक्ति भोजन के समय पहुंच गया। आईंस्टीन अपनी रिसर्च में डूबा हुआ था। उसे ध्यान ही नहीं रहा कि किसी को बुलाया है। अतिथि ने देखा—आईंस्टीन अपने उपकरणों में डूबा हुआ है। वह उसकी ओर देख ही नहीं रहा है। भोजन किया और बिना कुछ कहे चला गया। आईंस्टीन प्रयोग से निवृत्त हुए। उन्होंने देखा—जूठा बर्तन खाली पड़ा है। अच्छा ! मैं भूल गया। मैंने भोजन कर लिया। पुनः अपनी प्रयोगशाला में लौट गए।

प्रश्न हो सकता है—इतना बड़ा वैज्ञानिक इस तरह का पागलों जैसा व्यवहार कैसे करता है ? किन्तु जब हम प्राणशक्ति के सूक्ष्म अनुसंधान में लग जाते हैं, तब हमारी सारी स्मृतियां स्वगत हो जाती हैं, बाहर की स्मृति शेष नहीं रहती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरप्रेक्षा, इन्द्रियप्रेक्षा, विचारप्रेक्षा, प्राणप्रेक्षा आदि-आदि के जो प्रयोग हैं, वे जीवन को समग्रता से समझने के प्रयोग हैं। इस अर्थ में यह कहा जा सकता है कि प्रेक्षाध्यान की पद्धति कोरा ध्यान नहीं है, जीवन का दर्शन है।

अस्तित्ववाद : उपयोगितावाद

दर्शन पक्ष पर भी विचार करें। दर्शन शब्द बहुत पुराना है और हजारों वर्षों से यह शब्द प्रयोग में आ रहा है। आज के विश्वविद्यालय में जो दर्शन पढ़ाया जाता है, वह कोरा वैचारिक दर्शन है। दर्शन को हम दो आयामों में देखें। एक दर्शन का अर्थ विषय के साथ जुड़ा हुआ है और एक दर्शन का अर्थ विचार के साथ जुड़ा हुआ है। उसका विषय तथ्य है। विज्ञान का विषय भी तथ्य है। हम किसी तत्त्व को जानें, बस इतना-सा दर्शन का काम है। यह हमारा तथ्यात्मक, तथ्यपरक दर्शन है। तत्त्व को जान लिया, सत्य को जान लिया। इसे दर्शन की भाषा में अस्तित्ववादी धारा कहा गया है।

दर्शन की दूसरी धारा है उपयोगितावाद। इसमें तथ्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। मात्र उपयोगिता से संबंध रहता है। आजकल अप्लाइड फिलॉसफी का बहुत प्रयोग होता है। वह दर्शन नहीं, जिसे अप्लाई न किया जा सके। दर्शन केवल तथ्यपरक नहीं, प्रयोगात्मक होना चाहिए।

जीवन को भी समझें

दर्शन की दो धाराएं बन गईं—आदर्शवादी और यथार्थवादी। यथार्थवादी धारा में अस्तित्व और तथ्य का प्रश्न आ जाता है, किन्तु आदर्शवाद में एक विचार है, एक प्रकल्प है, उसी पर सारा दर्शन चलता है। हम इन दोनों से हटकर दर्शन को जीवन के साथ जोड़ें। न विश्व की व्याख्या करें, न परम सत्य या निरपेक्ष सत्य की व्याख्या करें। हम मात्र जीवन की व्याख्या करें, जीवन को समझें। यह दर्शन जीवन को समझने का दर्शन है। हमारी ऐसी दृष्टि बने, जिससे हम जीवन को समझ सकें।

आज की समस्या यही है कि जीविका को समझने के लिए सारी शक्ति का नियोजन किया जा रहा है। कुछ विद्यार्थी आए। मैंने कहा—कभी जीवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बारे में भी कुछ सोचते हो ? वे मेरे कथन का आशय समझ नहीं सके। मैंने पूछा—तुम किसलिए पढ़ रहे हो ? उन्होंने कहा—अच्छी पढ़ाई का उद्देश्य है अच्छी कमाई करना। एक लड़की का उद्देश्य होगा—अच्छी पढ़ाई और अच्छे लड़के के साथ विवाह। अब इतने में ही सारा जीवन सिमट गया। जीवन की कथा को इतने छोटे में समाप्त कर समस्याएं अपने आप पैदा कर ली गईं।

जीवन का उद्देश्य

रामायण को एक वाक्य में समाप्त नहीं किया जा सकता। वाल्मिकी के एक लाख श्लोक पढ़ें, तब रामायण समझ में आती है। हमारे सामने आज कोई वाल्मिकी और व्यास नहीं है। कोई हेमचन्द्र और जिनसेन नहीं हैं, जिन्होंने विस्तार से पुराण लिखे। क्या जीवन की कथा भी विस्तार से लिखनी जरूरी नहीं है ? जीवन को इतना छोटा कर देने का एकमात्र कारण जीविका को प्रधान मान लेना है। जीवन को इतना गौण मान लिया, उस पर इतने परदे डाल दिए कि मूल तस्वीर दिखाई ही नहीं दे रही है। जीवन का एकमात्र उद्देश्य धन की कमाई रह गया है। उसी से सुविधा मिलती है, प्रतिष्ठा मिलती है, सुख का संवेदन मिलता है। यह मान कर जीवन की जो उपेक्षा की गई है, उसी का परिणाम है—समस्या का चक्र और उलझता जा रहा है।

चिन्तन का कोण बदलें

प्रेक्षाध्यान एक दर्शन है जीवन का। उसका मुख्य संदेश है—जीविका के साथ जीवन को भी समझने का प्रयत्न करें। सामाजिक व्यक्ति के लिए जीविका की अनिवार्यता है। इसे गौण नहीं किया जा सकता किन्तु कम से कम जीवन का मूल्यांकन तो करें। जीविका आखिर है किसके लिए ? क्या वह जीवन के लिए नहीं है ? उसे गौण करने का परिणाम क्या होगा ? आज का युवक बहुत जल्दी परलोकगामी होता है। इन वर्षों में तीस और चालीस वर्ष के अनेक युवक हृदयरोग से चले गए। इतना जल्दी हृदय बन्द नहीं होना चाहिए। शरीरशास्त्र का मत है—हमारे हार्ट में सौ से ज्यादा वर्ष तक काम करने की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमता है। एक-एक अवयव पर विचार किया गया और यह पाया गया कि सैकड़ों वर्ष से भी ज्यादा उनकी काम करने की क्षमता है। कम से कम सौ वर्ष के आसपास तो जिएं, लेकिन मर रहे हैं तीस-चालीस के बीच में ही। कारण एक ही है—जीविका को जीवन मान लिया, सिंहासन पर बिठा दिया और जीवन को उसके नीचे दबा दिया। चिन्तन के इस कोण को बदलने का एक दर्शन है—प्रेक्षाध्यान। केवल एक घण्टा आंख मूंद कर ध्यान करेंगे तो प्रेक्षाध्यान के प्रति न्याय नहीं होगा! प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन और दर्शन है—जीवन को समग्रता से समझें, उसे समग्रता से समझकर जीवन के साथ उचित और न्यायसंगत व्यवहार करें, संतुलित व्यवहार करें। एक हाथ में जीविका रहे तो दूसरे हाथ में जीवन रहे। दोनों को बराबर रखें तो जीवन सुचारु रूप से चलेगा, काफी समस्याएं कम होंगी और व्यक्ति शान्ति के साथ जीवन जी सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेक्षाध्यान के मूलस्रोत

शब्द शाश्वत नहीं होता, अर्थ शाश्वत होता है। शब्द बदलते रहते हैं, भाषा बदलती रहती है, किन्तु तात्पर्य कभी नहीं बदलता। जो है, वह रहता है। उसके लिए समय-समय पर नए-नए शब्दों का सृजन होता है और भाषा में परिवर्तन होता रहता है।

योग के प्रवर्तक

प्रश्न है—प्रेक्षा शब्द कितना पुराना है ? यह महावीर जितना पुराना तो है ही। उससे भी आगे यह शब्द रहा है या नहीं—नहीं कहा जा सकता। किन्तु इसका अर्थ बहुत पुराना है। अर्थ की दृष्टि से विचार करें तो हम ऋषभ तक पहुंच जाते हैं। भगवान् ऋषभ पहले पुरुष हुए हैं, जिन्होंने आत्मवाद का प्रवर्तन किया, योग साधना का मार्ग बतलाया। हठयोग विद्या में आदिनाथ को नमस्कार किया गया है, जिन्होंने योग का प्रवर्तन किया।

आदिनाथ नमोस्तु तस्मै, येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।

आदिनाथ ऋषभ हैं। कुछ लोग कहते हैं—शिव हैं। शिव हैं तो आदिनाथ हैं और आदिनाथ हैं तो शिव हैं। आज मान लिया गया—आदिनाथ ऋषभ और शिव—ये कोई दो व्यक्ति नहीं हैं। आदिनाथ ऋषभ योग के प्रवर्तक हैं। हिरण्यगर्भ हैं आदिनाथ, जिन्होंने योग का प्रवर्तन किया, ध्यान मार्ग का प्रवर्तन किया।

हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्व भरत :

प्रेक्षा का मूल स्रोत है आदिनाथ ऋषभ। एक घटना है—भरत ने स्नान किया। स्नान कर भवन में बैठे। वह आदर्श भवन था। पूरा शीशे का बना हुआ भवन था। आसन पर बैठ गए। सामने दर्पण था। उसमें वे अपने आपको देख रहे हैं, अपनी प्रेक्षा कर रहे हैं। प्रेक्षा करते-करते, अपने आपको देखते-देखते वे सम्राट् से केवली बन गए। यह ध्यान की परंपरा का आदि स्रोत है।

भगवान् पार्श्व की ध्यान साधना विशिष्ट थी। पार्श्व की ध्यान साधना का प्रभाव बहुत व्यापक बना। पार्श्व की साधना से नाथ सम्प्रदाय प्रभावित है, बौद्ध धर्म और जैन धर्म प्रभावित है। पार्श्व का इतना व्यापक प्रभाव है कि उनकी ध्यान साधना से कितने ही सम्प्रदाय प्रभावित हुए हैं। डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय की शोध में इन तथ्यों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है।

महावीर की साधना

पार्श्व के पश्चात् महावीर ने ध्यान की उत्कृष्ट साधना की। सोलह-सोलह दिन और रात वे एक ध्यान की मुद्रा में, कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़े रहे। वे कभी 'ऊर्ध्वलोक को देखते, कभी अधोलोक को देखते और कभी मध्यलोक को देखते। जब ऊर्ध्वलोक के तत्त्वों को जानना होता तो ऊर्ध्वलोक की प्रेक्षा करते। जब मध्यलोक के तत्त्वों को जानना होता तो मध्यलोक के तत्त्वों की प्रेक्षा करते और जब नीचे के लोक के तत्त्वों को जानना होता, तब नीचे के लोक की प्रेक्षा करते। उनकी प्रेक्षा अनवरत चलती रही। महावीर के निर्वाण के पश्चात् ध्यान की साधना चलती रही और लम्बे समय तक यह क्रम चला। बीच में प्रश्न भी खड़े हुए। बौद्धों ने प्रश्न खड़ा किया—जैनों में ध्यान साधना कमजोर है। पुष्यमित्र का प्रसंग इस बारे में स्पष्ट है। बौद्ध भिक्षु आए। आचार्य ने कहा—तुम यहां हमारे पास रहो और देखो कि दुर्बलिका पुष्यमित्र कैसे ध्यान करता है ? ध्यान की प्रकृष्ट साधना उस समय चल रही थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप बदल गया

भगवान् महावीर के निर्वाण के हजार वर्ष बाद ऐसा लगता है कि एक मोड़ आया और जैन धर्म में ध्यान-साधना कुछ कमजोर पड़ी। वीर-निर्वाण के पन्द्रह सौ वर्षों के बाद ध्यान का स्वरूप बदल गया। जो मूल ध्यान साधना की पद्धति थी, जैनधर्म की प्राचीन पद्धति थी, वह छूट गई और हठयोग, तंत्र आदि से प्रभावित ध्यान की पद्धति चली। आचार्य हरिभद्र, हेमचन्द्र, शुभचन्द्र, पूज्यपाद आदि-आदि ने ध्यान की साधना को फिर आगे बढ़ाया। किन्तु उसका स्वरूप बदल गया। इन पांच-सात सौ वर्षों में ध्यान की साधना अत्यन्त क्षीण हो गई। जैसे बहते-बहते नदी का प्रवाह क्षीण हो जाता है, वैसे ही जैनधर्म में ध्यान की सरिता का प्रवाह क्षीण हो गया। स्थिति यह बन गई—जैन लोग यह भी भूल गए कि हमारे यहां भी ध्यान की कोई पद्धति है।

कमिश्नर का प्रश्न

दिल्ली की घटना है। हम लोग अणुव्रत भवन से प्रेक्षा-ध्यान-शिविर के लिए अध्यात्म-साधना केन्द्र आ रहे थे। रास्ते में एक भाई मिला। वह रिटायर्ड इन्कमटैक्स कमिश्नर था। वंदना की, पूछा—आप कहां जा रहे हैं ? हमने बताया—अध्यात्म साधना केन्द्र जा रहे हैं। ध्यान का शिविर है। तत्काल उसने कहा—क्या जैनों में भी कोई ध्यान की विधि है ? हमें यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। इतना पढ़ा-लिखा आदमी, इन्कमटैक्स का ऑफीसर और वह भी जैन, यह पूछता है कि क्या जैनों में भी कोई ध्यान की विधि है ? इन शताब्दियों में वातावरण ही कुछ ऐसा बन गया था कि ऊपर की बातें, क्रियाकाण्ड ज्यादा प्रभावी बन गए और ध्यान छूट गया।

प्रेक्षाध्यान का अभ्युदय

आगम संपादन का कार्य चल रहा था। हम उत्तराध्ययन का संपादन कर रहे थे। उत्तराध्ययन के तीसवें अध्याय में ध्यान का एक लम्बा प्रकरण जोड़ा गया। उस सन्दर्भ में मैंने अनेक जैन ग्रन्थों का पारायण किया। कई ग्रन्थ देखे। श्वेताम्बर और दिगम्बर—दोनों सम्प्रदायों के ध्यान संबंधित ग्रन्थों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारायण किया और उनका उसमें यथावकाश सन्निवेश भी किया।

उदयपुर का पंचायती नोहरा। रात्रि प्रतिक्रमण के पश्चात् मैं गुरुदेव की सन्निधि में बैठा था। प्रसंगवश मैंने निवेदन किया—जैनों में तो ध्यान पर बहुत कुछ लिखा गया है। तत्काल गुरुदेव ने कहा—हां, लेकिन अब यह परम्परा छूट गई। अब क्यों न इस पर अनुसंधान किया जाए ? यह मंत्र था प्रेक्षाध्यान के अभ्युदय का। प्रेक्षाध्यान के मंत्रदाता बने आचार्य तुलसी। वहीं से बीज की बुवाई हो गई। बीज बोया गया, अंकुरित हुआ और बड़ी तेजी से बढ़ने लगा। सफल बीज था, व्यर्थ और निकम्मा बीज नहीं था।

एक आदमी बीज बो रहा था। किसी ने पूछा—क्या बो रहे हो ? उसने कहा—नहीं बताऊंगा। 'तुम मत बताओ, उगेगा तो स्वयं पता लग जाएगा।' उसने कहा—ऐसा बोऊंगा ही नहीं, जो उगे।

नामकरण

इस तरह का बीज नहीं था प्रेक्षाध्यान। सार्थक बीज था। भीतर ही भीतर पकता रहा और एक दिन ऊपर आ गया। न कोई नाम का विज्ञापन और न कुछ विशेष प्रचार। शिविर होने लगे। सन् १९७४ में भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी पर जयपुर और दिल्ली में ध्यान के शिविर चले। उसके पश्चात् सन् १९७५ में जयपुर में चिंतन किया गया—जब हमारी ध्यान पद्धति का प्रारंभ हो गया है, शिविर भी लग रहे हैं तो क्यों न इसका नामकरण कर दिया जाए। यह चिन्तन क्रियान्वित हुआ ग्रीन हाउस में और ग्रीन हाउस के शीशमहल में।

ध्यान के लिए आगम में दो शब्द मिलते हैं—विपश्यना और प्रेक्षा। ये पुराने शब्द हैं। विपश्यना बौद्ध ध्यान पद्धति है। हमने प्रेक्षा शब्द का चुनाव किया। पूज्य गुरुदेव की सन्निधि में इस नाम का निर्धारण हुआ।

अर्वाचीन स्रोत

भगवान् ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र भरत ने प्रेक्षा-प्रयोग किया था और वहां से गुजरता हुआ वह अर्थ सन् १९७४ में प्रेक्षा में समाहित हो गया। अर्थ पुराना, शब्द नया। यह प्रेक्षा के प्राचीन से वर्तमान स्रोत तक की संक्षिप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मीमांसा है। अर्वाचीन स्रोत अनेक हैं। उन स्रोतों की चर्चा के अनेक सन्दर्भ हैं।

श्वासप्रेक्षा और कायोत्सर्ग—ये दो प्रेक्षाध्यान के आधारभूत तत्त्व हैं। इनका स्रोत आवश्यक निर्युक्ति और कायोत्सर्ग शतक मे मिला। वहां कहा गया—श्वास को सूक्ष्म करें, कायोत्सर्ग करें। श्वास को सूक्ष्म करना, श्वास को मन्द करना एक ही बात है। श्वास को सूक्ष्म बना लें और उसकी गति को मन्द कर दें, कायोत्सर्ग में रहे। कायोत्सर्ग और दीर्घश्वास प्रेक्षा का यह महत्त्वपूर्ण आधार-सूत्र है।

आधार शरीरप्रेक्षा का

शरीरप्रेक्षा का सूत्र आचारांग सूत्र से मिला। आचारांग का सूत्र है—**जे इमस्स विग्गहस्स अयं खणेत्तिमन्नेसि।** इस विग्रह, शरीर का जो वर्तमान क्षण है, उसका अन्वेषण करें। शरीर के वर्तमान क्षण का अन्वेषण करना—इस समय शरीर में क्या परिणमन, परिवर्तन हो रहा है ? कौन-सा जैविक, रासायनिक परिवर्तन हो रहा है ? यह शरीर प्रेक्षा है और इसका बोध आचारांग सूत्र में स्पष्ट मिलता है।

श्वास प्रेक्षा और शरीर प्रेक्षा—ये बौद्ध साधना पद्धति में आनापानसती और कायविपश्यना के नाम से प्रचलित हैं। हमने उनका भी अध्ययन किया, प्रयोग भी किया पर प्रेक्षाध्यान में इनके जो प्रयोग हैं, वे विपश्यना से बहुत भिन्न हैं।

आधार चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का

एक प्रयोग है चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा। प्रेक्षाध्यान में तेरह चैतन्य केन्द्र (साइकिक सेण्टर) स्वीकृत हैं। हठयोग में छह चक्र माने गए हैं, कहीं-कहीं नौ चक्र माने गए हैं। प्रेक्षाध्यान में कुछ नए चैतन्य केन्द्र खोजे गए। ये कैसे खोजे गए, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। बस आ गए, किन्तु इनका स्रोत फिर खोजा गया। आखिर ये कहां मिलेंगे ? हठयोग और तंत्रशास्त्र में भी नौ ही हैं। हमने तेरह निर्धारित किए हैं। क्या ये निराधार हैं ? इनका आधार कहां मिलेगा ? जब इस पर ध्यान दिया, खोजा तो पाया—नंदीसूत्र में सैकड़ों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैतन्यकेन्द्रों की चर्चा है। नन्दीसूत्र ज्ञानमीमांसा का आगम है। एक ज्ञान है अवधिज्ञान। यह अतीन्द्रिय चेतना को जागृत करने वाला पहला ज्ञान है। इसके अनेक प्रकार बतलाए गए हैं।

- पुरओ—आगे का अवधिज्ञान।
- पिट्ठओ—पीछे का अवधिज्ञान।
- पासओ—दोनों पार्श्व का अवधिज्ञान।
- मज्झओ—ऊपर का अवधिज्ञान।

कितने हैं चैतन्य केन्द्र

चूर्णिकार ने बहुत स्पष्ट किया है—जैसे एक दीप का प्रकाश उस पर ढक्कन देने से अवरुद्ध हो जाता है। उसे जालीदार बना देने पर प्रकाश की रश्मियां उसमें से बाहर निकलने लगेंगी। हमारी चेतना पर भी एक आवरण पड़ा हुआ है ज्ञानावरण कर्म का। साधना के द्वारा आवरण को भेद कर जालीदार बना लें तो फिर उसमें से अतीन्द्रिय ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलेंगी, चारों तरफ से निकलेंगी। एक स्पष्ट संकेत मिला—चैतन्यकेन्द्र तेरह ही नहीं, तेरह सौ भी हो सकते हैं, तेरह हजार भी हो सकते हैं। हमारा यह शरीर चैतन्यकेन्द्रों से भरा हुआ है। जहां से भी भेदो, वहीं से प्रकाश निकलना शुरू हो जाएगा। आज स्नायुतंत्र के विशेषज्ञ बतलाते हैं—आंख से हमने देखना शुरू किया, इसका तात्पर्य है—इस स्थान का हमने क्रिस्टेलाइजेशन कर दिया। अगर यह क्रिस्टेलाइजेशन अंगुली का कर दें तो अंगुली से देखने लग जाएंगे। एक लब्धि है—संभिन्नस्रोतोलब्धि। उसका अर्थ ही यही है—शरीर के हर किसी भाग से देख सकते हैं, सुन सकते हैं, चख सकते हैं। सब इन्द्रियों का काम किसी एक अंगुली से कर सकते हैं, पैर के अंगूठे से कर सकते हैं, जहां से चाहें, वहां से कर सकते हैं, यदि उसका क्रिस्टेलाइजेशन हो जाए। चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का अर्थ है—शरीर के किसी भी भाग को हम सक्रिय कर सकते हैं, इलेक्ट्रोमेग्नेटिक फील्ड बना सकते हैं, उसमें से झांक सकते हैं।

संदर्भ धवला का

दिगम्बर साहित्य में बहुत विस्तार से 'करण' के नाम से इसकी चर्चा की गई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। हठयोग में इसका आकार चक्र जैसा या कमल जैसा बतलाया गया है। किन्तु 'धवला' में स्वस्तिक, कलश, चक्र, शंख, पद्म आदि इसके अनेक प्रकार के आकार बतलाए गए हैं। नाभि से ऊपर के केन्द्रों के आकार प्रशस्त होते हैं और नाभि से नीचे के जो चैतन्यकेन्द्र हैं, उनके आकार अप्रशस्त होते हैं। पशुओं में नीचे के केन्द्र ज्यादा जागृत रहते हैं और मनुष्य यदि साधना करे तो वह ऊपर के केन्द्रों को जागृत कर सकता है, विशिष्ट शक्तियों को प्राप्त कर सकता है।

आधार लेश्या ध्यान का

लेश्याध्यान का प्रयोग आकस्मिक ढंग से हुआ। न कभी सोचा था, न कभी चिन्तन किया था। शिविर में गए, ध्यान का प्रयोग कराना था। एक मिनट पहले सोचा—क्या कराएं और दूसरे ही मिनट लेश्याध्यान का प्रयोग चालू हो गया। बाद में उसका स्रोत खोजा और वह मिल गया। लेश्या हमारे भावों का प्रतिनिधित्व करने वाली, व्याख्या करने वाली एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। जयाचार्य ने रंगों के ध्यान का अच्छा वर्णन किया है। इस विषय में उनके दो ग्रन्थ हैं—छोटा ध्यान और बड़ा ध्यान। दो छोटे ग्रन्थों में रंगों का ध्यान करने की बहुत अच्छी पद्धति मिली।

अप्रमाद केन्द्र

आधार विकसित होते गए। हमने कान पर प्रयोग कराए। इसका नाम रखा अप्रमाद केन्द्र। यदि पूछें—यह नाम क्यों रखा गया ? इसका बोध उस समय नहीं था किन्तु यह नाम निर्धारित हो गया। इसका प्रयोग करने से नशे की आदत बदलती है। यह प्रयोग हम वि॰ सं॰ २०३२ से करा रहे थे। वि॰ सं॰ २०३५ में पूज्य गुरुदेव गंगाशहर में चातुर्मास कर रहे थे। उस दौरान रूस की एक पत्रिका सोवियत भूमि हमारे हाथ में आयी। उसमें पढ़ा—सोवियत वैज्ञानिकों ने नशा छुड़ाने के लिए सत्तर आदमियों के कान पर बिजली के प्रकंपन का प्रयोग किया। उनमें से पचास आदमी तो नशे से मुक्त हो गए। शेष बीस-पचीस आदमियों की आदत अत्यन्त कम हो गई। हमें लगा—हम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो प्रयोग करवा रहे हैं, वह निराधार नहीं है। उसका एक वैज्ञानिक आधार भी है।

अनुप्रेक्षा

एक प्रयोग है अनुप्रेक्षा का। बारह अनुप्रेक्षा या सोलह अनुप्रेक्षा—ये बहुत प्राचीनकाल से प्रचलित हैं। कुन्दकुन्द ने बारह अनुप्रेक्षा पर लिखा। स्वामी कार्तिकेय ने इस पर लिखा। विनयविजयजी ने लिखा, अनेक आचार्यों ने लिखा। किन्तु यह सौभाग्य पूज्य गुरुदेव की अनुकंपा और अनुग्रह से हमें मिला कि अनुप्रेक्षा की पद्धति को हमने विकसित किया। शब्द तो प्राचीन थे। कायोत्सर्ग शब्द भी ग्रन्थों में बार-बार मिलता है—एक साधु को दिन में इतनी बार कायोत्सर्ग करना चाहिए किन्तु इनकी पद्धति को विकसित करने का श्रेय हमें है। अनुप्रेक्षा की पद्धति विकसित हुई और आज पचीस-तीस अनुप्रेक्षा के प्रयोग सामने हैं। स्वभाव परिवर्तन के लिए अनुप्रेक्षा का प्रयोग शायद सबसे शक्तिशाली प्रयोग है। पुरानी आदत को मिटाने और नए संस्कार के निर्माण हेतु अनुप्रेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है।

लचीलापन

पहले कायोत्सर्ग का एक प्रयोग कराते थे, किन्तु जैसे-जैसे गहराई में उतरते गए, स्रोत मिलते गए। आज कायोत्सर्ग की पांच विधियां हमने विकसित कर ली हैं। इन सब विधियों की खोज में हमें हठयोग, तंत्र, शैव-साधना पद्धति, विज्ञान भैरव आदि-आदि ग्रन्थों का यत्किंचित् मात्रा में स्रोत और सहयोग मिला है। हमने उनका भी उपयोग किया है। हम रूढ़ परंपरावादी नहीं बने। कुछ लोग ऐसे हैं, जो कहते हैं—जो पुराना है, उससे हम एक अक्षर भी इधर-उधर नहीं होंगे। यह उनका अभिमत है। किन्तु हमें जो गुरु मिले हैं, वे लचीले हैं, उनमें रूढ़ता नहीं है। यही भूमि का मध्य है, ऐसी आग्रह युक्त दृष्टि हमारी नहीं है।

किसी ने पूछा—भूमि का मध्य कहां है ? हाथ में लाठी थी, लाठी गाड़ दी और कहा—यह भूमि का मध्य है। 'इसका प्रमाण क्या है ? उत्तर मिला—'नाप लो।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमें तर्कपूर्ण पद्धति मिली, ऐसे लचीलेपन की प्रेरणा मिली कि हमें सबका प्रयोग करना चाहिए। हमने केवल प्राचीन साहित्य का ही प्रयोग नहीं किया, विज्ञान का भी इसमें भरपूर प्रयोग किया है। हमारी यह धारणा है—बहुत सारे साधना के तत्त्व ऐसे हैं, जो प्राचीन हैं किन्तु उनकी व्याख्या वर्तमान विज्ञान से जितनी अच्छी हो सकती है, किसी प्राचीन ग्रन्थ से उतनी अच्छी नहीं हो सकती।

विज्ञान का उपयोग

आज शरीरशास्त्र और शरीर क्रियाशास्त्र भी बहुत विकसित हो गया है। साइकोलोजी का भी बहुत विकास हुआ है। कोई भी ध्यान की पद्धति हो, यदि उसमें वर्तमान की वैज्ञानिक विधियों का समावेश नहीं है तो वह शायद अंधेरी कोठरी में पत्थर फेंकने जैसी बात होगी। उसका पूरा उपयोग करना चाहिए। हमने प्रेक्षाध्यान की पद्धति में वर्तमान शरीरविज्ञान, शरीरक्रिया विज्ञान और मनोविज्ञान का भरपूर प्रयोग किया है, उसकी व्याख्या को एक नया आयाम और नया रूप दिया है। इसीलिए एक चिकित्सक प्रेक्षाध्यान को बहुत जल्दी पकड़ लेता है। एक डॉक्टर ने कहा—प्रेक्षाध्यान हमारे लिए बहुत सहज है, क्योंकि शरीर के बारे में मैं अच्छी तरह जानता हूं, हर अवयव से मैं परिचित हूं, इसलिए ध्यान करना मेरे लिए सहज है। यह एक यथार्थ है—शरीर को जाने बिना ध्यान ठीक से हो नहीं सकता। वर्तमान चिकित्सक प्राण-प्रवाह को नहीं जानते। यदि उसे जान जाएं तो चिकित्सा विज्ञान बहुत आगे बढ़ जाए। शरीर में प्राण प्रवाह एक ठण्डा चलता है एक गरम चलता है। कब किसका प्रयोग करना चाहिए, इस बारे में जानना बहुत आवश्यक है।

यह स्रोत कहां से आया

बहुत वर्ष पहले मैंने एक निबंध लिखा—शरीर के किसी भी भाग से देखा जा सकता है। वह निबंध 'अणुव्रत' में प्रकाशित हुआ। दिल्ली विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने उसे पढ़ा। उसने पत्र के संपादक को बुलाकर पूछा—किसने लिखा है यह लेख। उसे बताया गया—यह लेख मुनि नथमल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(आचार्य महाप्रज्ञ) ने लिखा है। उन्होंने कहा—यह हमारी बायोकेमिस्ट्री में सौ वर्ष बाद आने वाली हाइपोथिसिस होगी। कहां से आया यह स्रोत ? अणुव्रत के संपादक ने उनकी जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए पूछा—इसका स्रोत आपको कहां से मिला ? हमने कहा—कहीं से चुराया नहीं है। हम इसे बाहर से नहीं लाए हैं। बौद्धिक संपदा चुराई नहीं जाती, अर्जित की जाती है। आज तो अमेरिका बौद्धिक संपदा पर नियंत्रण लगा रहा है। हमने कहीं से आयात नहीं किया है। यह हमारा पुराना स्रोत है और इतना समृद्ध है कि किसी को भी आश्चर्य हो सकता है।

दोनों के लिए अवकाश

प्रेक्षाध्यान में इस प्रकार पुराने स्रोतों और नवीन वैज्ञानिक खोजों का सम्यक् समन्वय किया गया है। प्रेक्षाध्यान की पद्धति इसीलिए एक लचीली पद्धति है। आज भी उसमें नया जोड़ने के लिए अवकाश है। पुराने का संकलन और नए का समन्वय—दोनों के लिए द्वार खुले हैं। पूज्य गुरुदेव ने प्रारंभ से ही एक सूत्र दिया—न प्राचीनता का मोह हो और न नए से एलर्जी। दोनों ही चाहिए। इसीलिए हम न पुराणपंथी रहे और न नवीनपंथी। जो बातें पुरानी अच्छी हैं, उनका उपयोग करें और जो नई बातें आज प्रकाश में आ रही हैं, उनका भी उपयोग करें। हमारा यह अनेकान्तवादी दृष्टिकोण प्रेक्षाध्यान का मूल आधार बना है।

मंत्रदाता

प्रेक्षाध्यान के आधार-सूत्रों का यह एक संक्षिप्त विश्लेषण है, जिसका प्राचीन स्रोत है, ऋषभ एवं भरत। वर्तमान युग में मंत्रदाता हैं—पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी। शक्ति तो हर व्यक्ति में होती है, किन्तु उस शक्ति को जागृत करने वाला चाहिए। मैं स्वयं अनुभव करता हूं—अगर नथमल नाम का छोटा-सा बच्चा तेरापंथ धर्मसंघ में दीक्षित नहीं होता, पूज्य कालूगणी का वरदहस्त उस पर नहीं टिकता और मुनि तुलसी के पास शिक्षा-दीक्षा का अवसर नहीं मिलता तो शायद वह इस रूप में (आचार्य महाप्रज्ञ) में प्रतिष्ठित नहीं हो पाता। कर्म सिद्धान्त का एक सूत्र है—बहुत बार शक्तियां सुप्त ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रह जाती हैं। एक गुरु का मार्गदर्शन और वरदहस्त प्राप्त होता है तो वे जाग जाती हैं। मैंने तो यह अनुभव किया है—आचार्य तुलसी ने मुझे जितने अवसर दिए हैं, कोई गुरु अपने शिष्य को इतने अवसर देता है, इतिहास में यह अनुसंधान का विषय होगा। उन अवसरों की बहुत लंबी तालिका है। यदि यह ध्यान पद्धति के अन्वेषण का आदेश न मिलता तो जैसे मैं थोड़ा-बहुत ध्यान करता था, वैसा करता रहता, किन्तु प्रेक्षाध्यान की पद्धति का प्रणयन नहीं होता।

हर बीज यह सोच सकता है कि मुझमें पेड़ बनने की शक्ति है। वह पेड़ बनने की प्रक्रिया भी शुरू कर सकता है किन्तु माली अगर रूठ जाए कि मैं पानी के रूप में सिंचन नहीं दूंगा तो उसके पेड़ बनने का संपना कभी पूरा नहीं होगा। माली पानी से सींचता है और पवित्र भावना से सींचता है, तभी पेड़ पल्लवित और पुष्पित होता है। शक्ति का महत्त्व है, किन्तु उससे भी ज्यादा महत्त्व है उसे जागृत करने वाले का। मंत्र का महत्त्व है, किन्तु उससे भी ज्यादा महत्त्व है मंत्रदाता का। हमारा यह सौभाग्य है कि गुरु के रूप में हमें आचार्य तुलसी मिले, जिनका ध्यान की इस पद्धति को विकसित करने का आदेश मिला, प्रेरणा और मार्ग-दर्शन मिला, एक ऐसी पद्धति विकसित हो गई, जिसमें नए मानव और नए विश्व की संरचना का सामर्थ्य सन्निहित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन-विज्ञान

मूल्यपरक शिक्षा एवं योगशिक्षा का अभिनव उपक्रम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण

महावीर ने कहा—स्वयं सत्य खोजो। यह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। आज का वैज्ञानिक सत्य की खोज करता है यंत्रों के आधार पर, सूक्ष्मदर्शी माइक्रोस्कोप, टेलीस्कोप के आधार पर। महावीर ने कहा—'जिन उपकरणों का तुम निर्माण करते हो और जिन उपकरणों के माध्यम से तुम सत्य की खोज करते हो, वे उपकरण तुम्हारे स्वयं के भीतर विद्यमान हैं। तुम्हारी चेतना में विकास की असीम संभावनाएं हैं। उसे विकसित कर लो तो सूक्ष्मदर्शी यंत्रों का सहारा लिए बिना सूक्ष्म, विप्रकृष्ट और व्यवहित सत्य को जान सकते हो। पूरा सत्य तुम्हारे सामने हैं, पूरा आकाश तुम्हारे सामने है, पूरा काल तुम्हारे सामने है। ऐसे सत्य की अनुभूति हो सकती है, ऐसी चेतना का जागरण हो सकता है, जो देशातीत और कालातीत है, जहां देश और काल की सीमाएं समाप्त हो जाती हैं।

भौतिक दृष्टि

आज का वैज्ञानिक भी सत्य खोज रहा है। उसने बहुत सूक्ष्म नियमों की खोज की है और इतनी सूक्ष्मता से छानबीन की है कि परमाणु तक पहुंच गया है। सत्य की खोज की वैज्ञानिक दृष्टि बन गयी, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि नहीं बनी, मैत्री का विकास नहीं हुआ। विकास हुआ अणु अस्त्रों का, जैविक-रासायनिक अस्त्रों का, रश्मि अस्त्रों का, जिनसे कुछ ही मिनटों में इस संपूर्ण विश्व को समाप्त किया जा सके। यह आज के मनुष्य की भौतिक दृष्टि है।

सत्य खोजो और जो सत्य, सूक्ष्म रहस्य ज्ञात हो जाए, उसके साथ मैत्री करो। प्राणीमात्र के साथ, जीव-जगत् के साथ मैत्री करो। जीवन विज्ञान के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप में शिक्षा की कल्पना इन्हीं दो सत्यों पर आधारित है।

आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कसौटी

आध्यात्मिक वह होता है, जिसमें आत्मौपम्य की भावना का विकास होता है। यह चेतना जाग जाती है कि जैसी मेरी आत्मा है, वैसी ही आत्मा सबमें विद्यमान है। प्रत्येक प्राणी में वैसी ही आत्मा है, जैसी मेरी है और मुझमें वैसी ही आत्मा है, जैसी दूसरों में है। यह आत्मतुला का तराजू एक है सबके लिए। जिसमें यह चेतना जाग जाती है, वह आध्यात्मिक व्यक्तित्व है।

इन्द्रियजयी

जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों और मन पर संयम करने का मूल्य समझ लेता है, वह आध्यात्मिक व्यक्तित्व है। इन्द्रियों की अतृप्ति, उनकी वासनाएं, लालसाएं असीम हैं। जो व्यक्ति इनका संयम न करे, वह समाज के लिए वरद नहीं बन सकता, सुखद नहीं बन सकता। आज की बड़ी समस्या है—शासक है, किन्तु इन्द्रियजयी नहीं है। समाज का मुखिया है, बहुत बड़ा उद्योगपति है, किन्तु इन्द्रियजयी नहीं है। चाणक्य ने कहा था—जो समाज का नेतृत्व करता है, उसे सबसे पहले इन्द्रियजयी होना चाहिए। वह इन्द्रियजयी नहीं होगा तो सारी प्रजा को कष्ट देगा, दुःखी बना देगा। पहली शर्त है इन्द्रियजयी होना। आध्यात्मिक व्यक्तित्व की भी यही शर्त है—व्यक्ति इन्द्रिय के वश में न रहे, किन्तु इन्द्रियों को वश में रखे। मन बड़ा चंचल होता है। वह मन के अधीन न रहे, बल्कि मन को अपने अधीन बनाए।

दमित वासनाओं का परिष्कार

आध्यात्मिक व्यक्तित्व की तीसरी कसौटी है दमित वासनाओं का परिष्कार। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होता, जिसमें वासना न हो। न जाने कितने जन्मों की वासनाएं, कितने जन्मों के संस्कार हमारे जीवन के साथ जुड़े हैं। उन दमित वासनाओं का परिष्कार करते जाएं, तो सब ठीक रहेगा। यदि उनका परिष्कार नहीं कर पाता, उनके अधीन चलता है, तो व्यक्ति स्वयं विकृत बनता है और समाज को भी विकृत बनाता है। आध्यात्मिक व्यक्ति वह है जो परिष्कार करना जानता है और परिष्कार करने का प्रयत्न करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्ति के संदर्भ में अर्थ का बोध

आध्यात्मिक व्यक्तित्व की चौथी कसौटी है वृत्ति के सन्दर्भ में सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति का बोध। आज का समाज सबसे ज्यादा आर्थिक परिस्थिति से दबा हुआ है। आर्थिक प्रभाव इतना है कि अर्थ को ही सब कुछ मान लिया गया। अर्थशास्त्र की कुछ ऐसी अवधारणाएं सामने आयी हैं जिनसे मनुष्यता प्रभावित हुई है।

एंजिल्स, जो मार्क्स के साथी थे, ने कहा—'हमारे सिद्धान्तों को तोड़-मरोड़ कर यह निष्कर्ष निकाला गया है—आर्थिक पहलू ही जीवन का निर्णायक पहलू है। जबकि मैंने ऐसा नहीं कहा।' आज के इस अर्थप्रधान युग में, प्रतिस्पर्धा के युग में हर आदमी में यह धारणा बन गयी—अर्थ ही सब कुछ है। जो मात्र प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन था, उसे जीवन का साध्य बना लिया, परम पद पर बिठा दिया। इस भ्रान्ति ने आदमी को बहुत दुःखी बनाया है। आज आदमी के दुःख का सबसे बड़ा कारण है अर्थ को सब कुछ मान लेना। उसके सामने सब कुछ गौण है। इस मनोवृत्ति ने समाज के सामने अनगिनत समस्याएं पैदा की हैं।

मूल है वृत्ति

आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कसौटी है वृत्ति के सन्दर्भ में अर्थ को देखना। आध्यात्मिक व्यक्ति अर्थ को स्थान देगा, किन्तु आन्तरिक वृत्तियों की अवहेलना कर अर्थ को स्वीकार नहीं करेगा। अर्थ का प्रभाव है, समाज का प्रभाव है, इस सचाई को स्वीकार करना ही होगा। किन्तु वृत्ति के प्रभाव को अस्वीकार कर अर्थ और समाज के प्रभाव को स्वीकार करना अपने आप में बड़ी भ्रान्ति है। आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियां तब बाधित करती हैं, जब हम वृत्ति पर ध्यान नहीं देते। मनुष्य की वृत्ति मूल है और वह प्रभावक तत्त्व है, उस पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आज की शिक्षा में यही तो हो रहा है। शिक्षा में अर्थाभिमुखता है, समाजाभिमुखता है, किन्तु स्वाभिमुखता नहीं है, अपनी वृत्ति की ओर उन्मुखता नहीं है। एक विद्यार्थी को यह नहीं बताया जाता कि तुम्हारे भीतर वृत्तियां हैं और वे ही आर्थिक स्पर्धा पैदा करती हैं। वे वृत्तियां ही समाज में समस्याएं पैदा करती हैं। वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दमित वासनाएं ही तुम्हारे सामने संघर्ष का वातावरण निर्मित करती हैं। उन्हें यह भी नहीं बताया जाता कि इन वृत्तियों का तुम्हें परिष्कार करना है, संयम की साधना करनी है, इन्द्रिय और मन पर नियंत्रण पाना है।

वृत्ति का निरोध : संयम

हम वृत्ति को छोड़ कर केवल परिस्थितिवाद पर चलेंगे तो इस चक्र का कभी अन्त नहीं होगा। परिस्थितियां तो उलझती रहेंगी। चूहे के सामने बिल्ली के भय की परिस्थिति है तो बिल्ली के सामने भी कुत्ते के भय की परिस्थिति है। कुत्ते के सामने शेर के भय की परिस्थिति है तो शेर के सामने भी मनुष्य के भय की परिस्थिति है और मनुष्य के सामने मृत्यु के भय की परिस्थिति है। इसीलिए शिव ने सोचा—इस श्रृंखला का कोई अन्त नहीं है और उन्होंने पुनर्मूषको भव का वर दे दिया।

मुकाबला करो, पलायन मत करो, परिस्थिति का सामना करो। यह सामना करने की बात नहीं सिखाई जाती। परिस्थिति के सामने दब कर जीने की बात सिखाई जाती है। परिस्थिति का मुकाबला तभी किया जा सकता है, जब हम वृत्तियों का मुकाबला करें। इस सत्य को अध्यात्म के आचार्यों ने खोजा था—'संयम करो, वृत्तियों का निरोध करो। 'महावीर ने कहा था—'संयम करो।' पतंजलि ने कहा—'चित्तवृत्तियों का निरोध करो।' अणुव्रत का धोष बना—'संयम ही जीवन है।' जीवन का जीवन है संयम। आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कसौटी है—वृत्ति पर ध्यान केन्द्रित रहे और वृत्ति के संदर्भ में आर्थिक या सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन तथा परिष्कार होता रहे।

अनासक्ति

आध्यात्मिक व्यक्तित्व की पांचवीं कसौटी है अनासक्ति। यह सच है कि पदार्थ से बिना जीवन की यात्रा नहीं चलती। खाना-पीना, मकान, कपड़ा, दवा, शिक्षा के साधन—ये सब पदार्थ अर्थ पर निर्भर हैं। उसके बिना काम नहीं चलेगा। आध्यात्मिक व्यक्तित्व वह है, जो पदार्थ को पदार्थ मानता है, उपयोगी और आवश्यक मानता है, किन्तु आत्मीय नहीं मानता। आध्यात्मिक व्यक्तित्व उसे 'मेरा' कभी नहीं मानेगा। जहां केन्द्र में मैं और मेरा है, वहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज अच्छा नहीं चलेगा। जहां केन्द्र में आत्मा है, वहां सब कुछ ठीक चलेगा। मनोविज्ञान ने 'ईगो' और 'सुपर ईगो' पर बहुत विचार किया। अध्यात्म के आचार्यों ने 'मेरा' पर बहुत विचार किया। यह मम की बुद्धि एक भ्रान्ति है। सचाई यह है—शरीर भी मेरा नहीं है। अगर शरीर मेरा है तो वह एक दिन छूट क्यों जाता है ? शरीर मेरा है, यह कोरी मान्यता है, मात्र माना हुआ सत्य है, यथार्थ का सत्य नहीं है। वास्तव में मेरा कुछ नहीं है। यदि मेरा होता तो कभी मुझसे अलग नहीं होता।

अपना अपना : पराया पराया

बहुत वर्ष पहले मैंने एक कविता लिखी—'उसका तात्पर्य यह था—पानी बहुत बरसा। वह फैला तो गड्ढों ने स्वागत किया। जितना आवश्यक था, अपनें में समेटा, बाकी बह जाने दिया। आगे चला, फिर तालाब आए, झीलें आयीं, जितना आवश्यकता थी, ले लिया, शेष ढकेल दिया। नदी आयी। उसने पानी को बहाया। समुद्र ने उसे स्थान दिया—तुम आओ और रहो। आखिर अपना अपना होता है और पराया पराया। पराया उतना ही रखेगा, जितनी उपयोगिता है। उपयोगिता समाप्त हुई तो धक्का दे देगा।

दो शर्तें

हम कैसे कहें कि वह मेरा है ? अपना तो केवल चैतन्य है, जो कभी अलग नहीं होता। एक बच्चे की चेतना जागृत थी। यह नहीं मान लेना चाहिए—बड़ा आदमी ही बुद्धिमान् और विवेकवान् हो सकता है। एक छोटा बच्चा भी जाग जाता है और एक प्रौढ़ या बूढ़ा आदमी भी सोया रह जाता है। चेतना की अवस्था को शरीर के आधार पर नहीं तोलना चाहिए। छोटा बच्चा मिट्टी के साथ खेल रहा था। राजा की सवारी निकली। राजन ने बच्चे को देखा। उसे वह इतना मोहक लगा कि बिना बुलाए राजा उसके पास गया। बच्चा खेलने में व्यस्त रहा, राजा की तरफ देखा भी नहीं। राजा ने कहा—'बच्चे, तुम देखो, तुम्हारे सामने कौन खड़ा है ? बच्चे ने राजा की ओर देखा। राजा ने कहा—'तुम बहुत अच्छे बच्चे हो, फिर भी मिट्टी के साथ खेल रहे हो ?' बच्चे ने कहा—आप इतना भी नहीं जानते ? यह मिट्टी का पुतला मिट्टी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साथ नहीं खेलेगा तो फिर किसके साथ खेलेगा ?'

राजा यह सुनकर अवाक् रह गया। उसने कहा—'तुम बहुत अच्छे बच्चे हो। मैं तुम्हें अपने महल में ले जाना चाहता हूं। क्या तुम मेरे साथ चलोगे ?

बच्चे ने बड़ी गम्भीरता से कहा—'चल सकता हूं, किन्तु मेरी दो शर्तें हैं।'

राजा ने पूछा—'कौन-सी शर्त ?

बच्चे ने कहा—'पहली शर्त—जब मैं सोऊं तो तुम जागते रहो, दूसरी शर्त—तुम निरन्तर मेरे साथ रहो, एक क्षण के लिए भी मुझे छोड़ कर कहीं मत जाओ।'

राजा बोला—'यह कैसे संभव है ? मैं सोता हूं तो प्रहरी जागते हैं। मैं कैसे जागूंगा ? राज्य के संचालन में मुझे कई जगह जाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में तुम्हारी दूसरी शर्त कैसे मान सकता हूं ?'

बच्चे ने कहा—'तो फिर मुझे भी आपकी बात मान्य नहीं है। मैं अपने प्रभु के साथ रहता हूं। मेरा प्रभु हमेशा मेरे साथ रहता है। मैं सोता हूं तो वह जागता रहता है। उसे छोड़ कर मैं तुम्हारा साथ क्यों स्वीकार करूं ?'

ममत्व की भ्रांति से परे

यह है अध्यात्म की चेतना। मेरा कुछ भी नहीं, मेरा है सिर्फ मेरी आत्मा, उसे चाहे ईश्वर कहें, प्रभु या परमात्मा कहें। जब हम अपनी आत्मा के साथ रहते हैं तो पदार्थ मात्र उपयोगी और आवश्यक रहते हैं। उनमें आसक्ति नहीं जागती। अनासक्ति का विकास चेतना की अनुभूति के बिना कभी संभव नहीं होता। अन्यथा एक करोड़पति आदमी में भी पदार्थ की इतनी आसक्ति होती है कि मुट्ठी से सौ का नोट गिर जाए तो वह पूरे दिन रोटी नहीं खाता। सौ रुपये गिर जाने से क्या फर्क पड़ा ? मूल्य रुपये का नहीं, उसके लगाव का होता है। वह लगाव ही दुःख देता है। मैंने कई बड़े आदमियों को देखा है, जिनका थोड़ा-सा भी कुछ इधर-उधर हो जाता है तो उन्हें ऐसी अनुभूति होती है कि जैसे सब कुछ चला गया। एक धनाधीश के लिए पांच-दस लाख रुपये कोई बड़ी बात नहीं है, किन्तु एक पैसा देना भी उन्हें भारी पड़ता है। कारण क्या है ? कारण है आसक्ति।

हम सत्य को देखें, खोज करें तो यह बोध होगा—वास्तव में हमारा कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। कुछ को इस सचाई का भान बहुत पहले हो जाता है तो बहुतों को बुढ़ापे में भी नहीं होता। एक व्यक्ति ने बहुत कमाया। अवस्था के साथ इन्द्रियां कुछ कमजोर हुईं, शक्ति कुछ क्षीण हुई। चाबियां बेटे और बहुओं के हाथ में चली गईं। उसे यह प्रतीक्षा करनी पड़ती कि कुछ मिल जाए। ऐसे लोगों के बारे में भी सुना है, जिन्होंने अरबों की संपत्ति छोड़ी, किन्तु मरते समय भी उनके पास में कोई नहीं था। आध्यात्मिक व्यक्तित्व का निर्माण होगा तो इस झूठ से, ममत्व की भ्रान्ति से परे होगा।

सत्य की खोज

हम वैज्ञानिक व्यक्तित्व की कसौटी पर विचार करें। वैज्ञानिक व्यक्तित्व की पहली कसौटी हैं सत्य की खोज। वैज्ञानिक व्यक्तित्व वह है, जिसमें मिथ्या आग्रह नहीं है, अनेकान्त का दृष्टिकोण है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कोई पकड़ नहीं होती, आग्रह नहीं होता। मैंने मान लिया या मैं मानता हूं, ऐसा कुछ नहीं होता। जानने का प्रयत्न होता है और निरन्तर नये-नये तथ्यों को उद्‌घाटित करने का प्रयत्न होता है। भगवान् महावीर ने कहा—'सत्य अनन्त हैं। पर्याप्त अनन्त हैं। नियम अनन्त हैं। 'सत्य का अर्थ है सामयिक पर्याय। सत्य का अर्थ है अस्तित्व और सत्य का अर्थ है नियम। पर्याय अनन्त हैं, नियम अनन्त हैं। हम कुछेक नियमों को जानकर सब कुछ जान लेने का दावा नहीं कर सकते। लोकभाषा में कहें तो सोंठ की एक गांठ लेकर पंसारी नहीं बन सकते।

बहुत मार्मिक उत्तर

न्यूटन से कहा गया—'आपने बहुत से नियम खोजे हैं।' उन्होंने बहुत मार्मिक उत्तर दिया—'तुम लोग कुछ भी कहो। लेकिन मेरी स्थिति तो समुद्र के तट पर खड़े उस बालक जैसी है, जो समुद्र के किनारे पड़ी सीपियों को बटोर रहा है। किन्तु विशाल समुद्र के गर्भ में छिपे रत्न उससे बहुत दूर हैं।

जिसमें नये सत्यों को ग्रहण करने का इतना विनम्र दृष्टिकोण होता है, वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संपन्न होता है। वह सत्य को स्वीकार कर सकता है, कभी दरवाजा और खिड़कियां बन्द नहीं करता। कुछ लोग यह आग्रह रखते हैं—जितना जानना था, जान लिया, अब कुछ भी शेष नहीं है। यह ऐकान्तिक आग्रह है और इसी से असत्य का विवाद खड़ा होता है, लड़ाइयां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और संघर्ष शुरू होते हैं। जिसने आग्रह का रंगीन चश्मा लगा लिया, उसके लिए सब कुछ रंगीन हो गया। जब जीवन में ऐसा कोई मिथ्या आग्रह पनपता है तो समस्याएं उलझती हैं।

चेतना की खोज

वैज्ञानिक व्यक्तित्व की दूसरी कसौटी है—चेतना की खोज, मानव की खोज। आज इसकी सर्वाधिक अपेक्षा है। मानव की खोज बहुत कम हुई है। वैज्ञानिकों ने जितने परीक्षण किये हैं, चूहों पर, मेढकों और बन्दरों पर किए हैं। सारे प्रयोग पशुओं पर हुए हैं। मनुष्य को उसने अपनी प्रयोग भूमि नहीं बनाया। मनुष्य को समझने का सबसे कम प्रयत्न हुआ है। अब आवश्यकता है कि मानव का भलीभांति अध्ययन हो। मानवीय मस्तिष्क का अध्ययन उसमें प्रमुख बने। हमारी सारी शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति, सारे जीवन-मूल्य—इनका अधिष्ठाता प्रतिष्ठाता तो मनुष्य का मस्तिष्क है, नाड़ीतंत्र है, ग्रंथितंत्र है। इन सबका अध्ययन तो नहीं किया जा रहा है, समझने का प्रयत्न नहीं किया जा रहा है, सारी रिसर्च पदार्थ पर हो रही है। यह मूल में भूल है। फिर समस्या का समाधान कैसे होगा ? आवश्यक है मानव और मानवीय चेतना का अध्ययन। जिस दिन यह हमारी वृत्ति बनेगी उस दिन अध्यात्म और विज्ञान, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्यक्तित्व की युति बनेगी, दोनों का योग बनेगा, दोनों एक बनेंगे।

पहला प्रस्थान

पूज्य गुरुदेव के ७५ वें वर्ष के संदर्भ में आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व की परिकल्पना प्रसूत हुई। उस समय इस सन्दर्भ में सोचने-समझने का अवसर मिला। आध्यात्मिक गुफा में मौन बैठा रहेगा और वैज्ञानिक अणुबम बनाता रहेगा तो उस अणुबम की अणुधूलि उस गुफा तक भी पहुंचेगी। इसलिए आज की अपेक्षा है कि हर विद्यार्थी वैज्ञानिक बने किन्तु कोरा वैज्ञानिक न बने, आध्यात्मिकवैज्ञानिक बने। आज हर धर्म संस्थान में जाने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह केवल आध्यात्मिक न बने। उसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक बने। इन दोनों का योग ही वर्तमान की समस्या का समाधान है और यही जीवन विज्ञान का पहला प्रयत्न या पहला प्रस्थान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्यक्षेत्रीय कौशल

हर व्यक्ति अपने कार्य क्षेत्र का चुनाव करता है। कार्य करना अलग बात है और दक्षता के साथ करना बिल्कुल अलग बात है। एक व्यक्ति डॉक्टर है, एक इंजीनियर है, प्रोफेसर अथवा वैज्ञानिक है। अलग-अलग कार्यक्षेत्र हैं और हर क्षेत्र में हजारों-हजारों व्यक्ति लगे हुए हैं।

आत्मविश्वास

एक व्यक्ति अपने कार्य में सफल होता है और बड़ी दक्षता के साथ कार्य करता है। एक व्यक्ति कार्य ठीक नहीं कर पाता, असफल हो जाता है। केवल चिकित्सा में कुशल होना ही पर्याप्त नहीं है, उसके साथ जो कार्यक्षेत्रीय दक्षता भी होनी चाहिए। डॉक्टर ने रोगी को देख लिया। उसे दवा देनी है। मन में संशय हो गया—यह दवा दूं या नहीं, इससे ठीक हो जाएगा या नहीं, बस इसी में चित्त उलझ जाता है। ऐसा चिकित्सक सफल नहीं हो सकता। कार्यक्षेत्रीय कौशल के लिए आवश्यक है आत्मविश्वास। यदि आत्मविश्वास नहीं है तो सफल नहीं हो सकता। एक डॉक्टर अपने कार्य में, चिकित्सा में तो बहुत कुशल था किन्तु उस क्षेत्र का कौशल उसको प्राप्त नहीं था। उस चिकित्सक ने तीन दिन जीवन विज्ञान का प्रयोग किया। उसे अभुभव हुआ—आत्मविश्वास बढ़ा है और जो संशयशीलता की जो वृत्ति थी, उसमें परिवर्तन आया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्णय की शक्ति

सफलता का दूसरा सूत्र है निर्णायक शक्ति का विकास। बहुत लोग निर्णय नहीं ले पाते। निर्णय की शक्ति कमजोर होती है। एक अधिकारी को किसी संदर्भ में निर्णय लेना है। सहयोगी इस प्रतीक्षा में हैं—इसका निर्णय जल्दी होना चाहिए, किन्तु दिन पर दिन बीतते जाते हैं और निर्णय हो ही नहीं पाता।

आत्मविश्वास और निर्णय लेने की शक्ति—ये दोनों सफलता के लिए बहुत जरूरी हैं। जो निर्णय लेना हो, वह तत्काल लिया जाये। दो मिनट का अन्तराल बहुत बड़ी गड़बड़ी कर देता है। निर्णय की शक्ति का विकास, यह सफलता का बहुत बड़ा सूत्र है।

एकाग्रता का विकास

तीसरा सूत्र है एकाग्रता। एक व्यक्ति कार्य करने बैठा, एक काम शुरू किया। यदि एकाग्रता नहीं है तो कुछ देर में दूसरा काम शुरू कर देगा, फिर तीसरा काम शुरू कर देगा। फ्रांस के एक वैज्ञानिक ने अपने जीवन में विज्ञान के विभिन्न विषयों पर नौ सौ लेख लिखे, बहुत महत्त्वपूर्ण लेख लिखे । कहा गया—अगर वह एक दिशा में काम करता तो दुनिया का सबसे बड़ा वैज्ञानिक होता किन्तु एकाग्रता के अभाव में असफल हो गया। अनेक लोग इस समस्या के कारण सफल नहीं हो पाते। जिस समय जो काम करें, उस समय उसी कार्य के प्रति समर्पित हो जाना, दत्तचित्त हो जाना, अवधान करना, बहुत बड़ी बात है। जैन मुनियों में अवधान विद्या का प्रयोग चलता है। अवधान, प्राणिधान और समाधान—एकाग्रता का एक प्रयोग है। सौ प्रश्न पूछे गये। घण्टा-दो घण्टा या चार घण्टे बाद सारे प्रश्नों को उत्तरित कर देना, समाहित कर देना, एकाग्रता का प्रयोग है। कार्यक्षति का बहुत बड़ा हेतु है मन का विक्षेप। चंचलता की समस्या आम है। जिस कार्य को करने में एक घण्टा का समय लगना चाहिए, मन की चंचलता है तो चार घण्टे का समय लग जायेगा। यदि मन की एकाग्रता है तो उसी कार्य को आधे घण्टे में ही पूरा किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास से सधती है एकाग्रता

बहुत कठिन है एकाग्रता। मन इतना दौड़ता है कि बड़े साधक के लिए भी कठिनाई है। एक विद्यार्थी के लिए यह बहुत बड़ी समस्या है। यदि विधिवत् प्रयोग किया जाये तो एकाग्रता का विकास संभव है। अर्जुन ने योगिराज कृष्ण से पूछा—मन बहुत चंचल है। उसका निग्रह करना वायु को पकड़ने जैसा है। कृष्ण ने उत्तर दिया—अर्जुन ! उसको पकड़ने के दो उपाय हैं—अभ्यास और वैराग्य। यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि हर विद्यार्थी वैरागी होगा, विरक्त होगा। किन्तु अभ्यास सर्वसाधारण के लिए हो सकता है। अभ्यास किया जाये तो मन को पकड़ा जा सकता है, मन की एकाग्रता साधी जा सकती है। जीवन विज्ञान में इनके प्रयोग निर्दिष्ट हैं—अभ्यास के द्वारा मन की चंचलता को कैसे कम किया जाये और कैसे एकाग्रता को साधा जाये ? एक युवक बम्बई यूनिवर्सिटी में पढ़ रहा था। वह यूनिवर्सिटी छोड़ काम-धंधे में लग गया। कुछ वर्ष बाद मन में आया—मुझे उच्च शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। उसने पुनः यूनिवर्सिटी में एशोसियेशन सेक्रेटरी का कोर्स ले लिया। उसने सोचा—इतने वर्ष अध्ययन छोड़ चुका हूं। इस क्षेत्र में फिर आ रहा हूं तो इससे पहले मुझे प्रेक्षाध्यान का एक शिविर कर लेना चाहिए। वह शिविर में आया, एकाग्रता की अच्छी साधना की। उस एकाग्रता के अभ्यास का परिणाम यह रहा—बम्बई यूनिवर्सिटी में वह प्रथम स्थान पर रहा। वह अनुभव करता है—अगर मेरी ध्यान की साधना नहीं होती, एकाग्रता का अभ्यास नहीं होता तो यह कभी संभव नहीं था कि बम्बई यूनिवर्सिटी में मैं प्रथम स्थान पर रहता। एकाग्रता और आशीर्वाद ने मुझे सफल बनाया।

स्मृति का विकास

चौथा तत्त्व है स्मृति का विकास। कार्यक्षेत्र में वह व्यक्ति सफल होता है, जिसकी स्मृत्ति अच्छी होती है। स्मृति कमजोर है तो सफल नहीं हो सकता। स्मृति प्रखर होनी चाहिए। जो व्यक्ति मन के रहस्यों को समझ लेता है, उसकी एकाग्रता भी अच्छी होती हैं, स्मृति भी अच्छी रहती है। आश्चर्य होता है—कुछ व्यक्तियों की स्मृति अस्सी वर्ष की अवस्था में इतनी प्रबल है, जितनी एक युवक की भी नहीं है। पूज्य गुरुदेव बहुत बार ऐसी घटनाओं का उल्लेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं कि सुनने वाले दंग रह जाते हैं। आज भी एक युवक में जितनी स्मृति प्रखर है। स्मृति की प्रखरता कार्यक्षेत्रीय कौशल के लिए आवश्यक है।

संवेग संतुलन

पांचवां तत्त्व है संवेग संतुलन। यह कार्यक्षेत्रीय कौशल का सबसे प्रभावी सूत्र है। जो व्यक्ति अपने संवेगों को संतुलित रखना नहीं जानता, वह कार्य में सफल नहीं हो सकता। सबसे कठिन है संवेग का संतुलन। कार्य में अस्तव्यस्तता, लड़ाई-झगड़े, पारिवारिक और संस्थागत कलह—ये सब असंतुलित संवेगों के परिणाम हैं। दो व्यक्ति हैं, दोनों का लक्ष्य एक है, दोनों कार्य की सफलता चाहते हैं, पर दोनों का अहं ऐसा टकराता है कि असफलता हाथ लगती है। अहं का टकराव कार्य में सबसे ज्यादा विघ्न और बाधा उपस्थित करने वाला तत्त्व है। मनुष्य जानता है कि इससे काम बिगड़ जायेगा, किन्तु फिर भी वह इस अहं वृत्ति को छोड़ नहीं पाता। यदि विद्या के क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में कुछ करना है तो सबसे पहले अध्यापक, विद्यार्थी और अधिकारी—इन सबको संवेग संतुलन का अभ्यास करना चाहिए।

असहिष्णुता की समस्या

असहिष्णुता आज की सबसे बड़ी समस्या है। एक व्यक्ति ने जान्सन के शिष्य का अपमान कर दिया। वह अपने गुरु जान्सन के पास गया। उसने शिकायत की और कहा—'मैं इस अपमान का बदला लूंगा।' जान्सन ने कहा—वत्स, आज तुम इतना आवेश कर रहे हो, एक वर्ष बाद तुम्हें मालूम होगा कि इसका मूल्य बहुत कम है। तुम कुछ मत करो।' उसने गुरु की बात मान ली। वह चुप रहा, आवेश शान्त हो गया। एक वर्ष बाद उसने अपना अनुभव लिखा—मैंने गुरु की बात मान ली और कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। इसका परिणाम यह हुआ कि जब-जब भी जीवन में वैसे क्षण आते हैं, मैं बहुत संतुलित रहता हूं और सफलता मेरे पीछे दौड़ती है।

बड़ा कठिन है सहना किन्तु जो सहन कर लेता है, वह अपने कार्यक्षेत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सफल हो जाता है।

आचार्य भिक्षु दूसरे संप्रदाय के साधु के साथ चर्चा कर रहे थे। चर्चा के प्रसंग में आवेग संतुलित नहीं रहा। दूसरे संप्रदाय का साधु आवेश में आकर बोला—'साले का सिर काट दूं।' अब दूसरी ओर भी आवेश आना चाहिए था पर आचार्य भिक्षु सधे हुए व्यक्ति थे। उन्हें आवेश नहीं आया, प्रत्युत वे मुस्कुराते हुए बोले—'आपने मुझे साला कहा, कोई बात नहीं। क्योंकि दुनिया की जितनी स्त्रियां हैं, वे सब मेरी बहिन हैं, किन्तु क्या आपने संन्यास लेते समय ब्रह्मचर्य महाव्रत में कोई छूट रखी थी ? आपने अगर शादी की है तो ठीक है, आपकी पत्नी मेरी बहिन और मैं आपका साला। किन्तु यदि नहीं की है तो आपको असत्य भाषण का दोष लगेगा।

यदि सहनशीलता बढ़ जाये तो हजारों सफलताएं हमारे साथ हैं।

अहं, क्रोध, भय असहिष्णुता, लोभ, वासना—ये जो संवेग हैं, इन्हें संतुलित करना और इन पर नियंत्रण पाना सफलता का हेतु बनता है। कार्य क्षेत्रीय कौशल के लिए ये सबसे आवश्यक तत्त्व हैं।

कर्मजा शक्ति का विकास

कार्यक्षेत्रीय कौशल का छठा सूत्र है—कर्मजा शक्ति का विकास। इसके अभाव में कुशलता की बात ही बेमानी है। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी में कर्मजा शक्ति का विकास नहीं होता है तो उस शिक्षा को व्यर्थ मानना चाहिए। यदि पढ़ा-लिखा आदमी अकर्मण्य, निकम्मा, निठल्ला और आलसी बनता है, तो इससे बड़ी लज्जा की बात और कुछ नहीं हो सकती। उसमें कुछ करने की चेतना जागृत होनी चाहिए, उसकी कर्मजा शक्ति का विकास होना चाहिए।

सृजनात्मक शक्ति का विकास

कार्य क्षेत्रीय कौशल का सातवां सूत्र है—सृजनात्मक शक्ति का विकास। यदि सृजनात्मक शक्ति नहीं है, न नई कल्पना, न नई रचना, न नया निर्माण, न नया उन्मेष, न नया स्पंदन, कुछ भी नहीं है तो व्यक्ति भोथरा बन जाएगा, वह कुछ भी नहीं कर पाएगा।

आज की एक ज्वलंत समस्या है—शिक्षा लेने के बाद हर विद्यार्थी कुर्सी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर बैठना चाहता है। वह ऑफिस में जाकर काम करना चाहता है, खेत-खलिहान में काम करना पसंद नहीं करता। बड़ी विचित्र बात है—किसान का बेटा भी नौकरी करना पसंद करेगा, खेती करना पंसद नहीं करेगा। कोई भी अपने पुस्तैनी धंधे से जुड़ना नहीं चाहता। बाबूगिरी का इतना प्रबल आकर्षण है। इसका कारण क्या है ? एक ऐसा मानदण्ड बन गया, बड़प्पन की झूठी कसौटी बन गई कि खेती करने वाला छोटा होता है। वास्तव में यदि कर्म की दृष्टि से देखा जाए तो खेती करने वाला सबसे उत्तम आदमी होता है। कहा गया है—

उत्तम खेती मध्यम बान
निषिध चाकरी भीख निदान।

जीवन का आधार है खेती

जैन दर्शन ने अहिंसा पर बहुत विचार किया। आचार्य जिनसेन ने लिखा—खेती करना अल्प सावद्य है, अल्पारंभ है और ब्याज का धंधा महाआरंभ है, महान् हिंसा है। जिसमें कोई प्रत्यक्ष हिंसा नहीं है, उसे महारंभ माना गया और खेती को अल्पारंभ। बात कितनी विचित्र-सी लगती है। कृषि, वाणिज्य, गो पालन आदि आदिकर्म माने गए हैं। किन्तु आज युग इतना बदल गया है कि व्यक्ति घर में निकम्मा बैठ जायेगा, लेकिन खेती करना नहीं चाहेगा। जबकि खेती ही जीवन का आधार है। सारे खाद्य-पदार्थ खेती से ही निःसृत हैं। कृषि के बिना कुछ होता ही नहीं है। आज के मनुष्य ने कृषि को हेय मान लिया। इसका परिणाम है—बेरोजगारी की समस्या। शिक्षा के साथ यह जो अहं और बड़प्पन की झूठी बात चल पड़ी, इससे शिक्षा दूषित हुई है।

पहली आवश्यकता

संवेग संतुलन सबसे पहली आवश्यकता है। आदमी का संपूर्ण जीवन ही संवेग के आधार पर चलता है। मनुष्य ऊपर से शान्त दिखाई देता है, किन्तु उसके भीतर संवेगों का एक ज्वार है। संवेगों से प्रभावित आदमी मकड़ी के जाल-सा ताना-बाना बुनता रहता है। आश्चर्य तो यह है कि शिक्षा के क्षेत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में भी संवेगों की प्रक्रिया पर बहुत कम ध्यान दिया गया। प्रशासनिक परीक्षाओं में प्रशिक्षण का लम्बा कोर्स है किन्तु उसमें भी संवेग-संतुलन का कोर्स समुचित नहीं है। पूज्य गुरुदेव जयपुर में विराज रहे थे। प्रशासनिक परीक्षा के डाइरेक्टर दर्शन करने आए। उन्होंने कहा—'हम राजस्थान प्रशासनिक सेवा के विद्यार्थियों को दो सप्ताह के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करवाना चाहते हैं। गुरुदेव ने अनुमति प्रदान कर दी। प्रशिक्षण के पश्चात् अपने अनुभव सुनाते हुए उन्होंने कहा—हमारा कोर्स बहुत बड़ा है। भारी तनाव रहता था। नींद की गोलियां लेकर हम सोते थे। इससे हमारा स्वास्थ्य भी प्रभावित होता था। हमने दो सप्ताह का प्रयोग किया। अब हमारी मन की एकाग्रता बढ़ गयी है, बहुत थोड़े समय में हम अपना कोर्स पूरा कर लेते हैं। नींद की गोलियों की अब आवश्यकता नहीं रही, सिरदर्द की समस्या भी दूर हो गयी। उनके अनुभवों की एक पूरी फाइल है, उसे पढ़ें तो लगेगा कि आज शिक्षा में इस तत्त्व को कितना उपेक्षित किया गया है।

अलग पहचान बन गई

जयपुर की ही एक घटना है। राजस्थान पुलिस एकेडेमी के आई. जी. आए। गुरुदेव से प्रार्थना की—हम पुलिस के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए एक शिविर रखना चाहते हैं। गुरुदेव ने स्वीकार कर लिया। हम लोग दो सप्ताह राजस्थान पुलिस एकेडेमी में रहे। वहां लगभग सौ पुलिस अधिकारियों और जवानों को प्रेक्षाध्यान के प्रयोग सिखाए। दो सप्ताह चले उस शिविर की अनेक आश्चर्यजनक घटनाएं हैं।

पूज्य गुरुदेव मेवाड़ की यात्रा कर रहे थे। मेवाड़ और मारवाड़ दोनों के बीच में स्थित अरावली की उपत्यका में एक गांव है भीम। वहां गुरुदेव पधारे। दूसरे दिन जैसे ही प्रस्थान किया, वहां के सब इंसपेक्टर ने दर्शन किए। उसने कहा—महाराज ! आपने मुझे पहचाना ? मैंने आपके उस जयपुर शिविर में भाग लिया था। उसने बताया—मैं यहां नियुक्त हूं। भीम ट्रकों का एक बड़ा स्टैण्ड है। इस कारण यहां शराब का अड्डा भी है, और भी अनैतिक धंधे स्वाभाविक हैं। भीम के कुछ नागरिक भी उपस्थित थे। वे बोले—गुरुदेव ! इतना अच्छा थानेदार हमारे इस इलाके में कभी नहीं आया। यहां यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीधा-सच्चा पुलिस अधिकारी आता है तो वह भी बिगड़ जाता है। रिश्वतखोरी की बीमारी आते ही लग जाती है। ये पहले अधिकारी हैं, जो हर प्रकार के नशे से दूर हैं, किसी के साथ अन्याय नहीं करते, अन्याय होने नहीं देते। उस संब इंस्पेक्टर ने बताया—महाराज ! हम जितने लोग उस शिविर में रहे, आज भी अपने कर्तव्य का पालन कुशलता से कर रहे हैं। उससे हमारी एक अलग ही छवि बन गयी है। यदि राजस्थान सरकार उस क्रम को जारी रखती तो पुलिस विभाग में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन आ जाता, उसकी छवि सुधर जाती। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप राजस्थान सरकार को प्रेरित करें कि वह उस क्रम को फिर से शुरू करे।'

संतुलन की प्रक्रिया

शिक्षा के संदर्भ में या कार्यक्षेत्रीय कौशल के संदर्भ में एक बड़ा तत्त्व है संवेग का संतुलन। प्रश्न होगा कि यह संतुलन कैसे हो ? यही शिक्षा का महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। इस बिन्दु का स्पर्श न करें तो शिक्षा शाब्दिक और बौद्धिक विकास के लिए बन जायेगी, किन्तु वह चरित्र का विकास और व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली नहीं बनेगी। इस बिन्दु पर ही जीवन विज्ञान की उपयोगिता हमारे सामने आती है। कुछ लोग कहते हैं—हम एक महापुरुष की जीवनी पढ़ा देंगे तो विद्यार्थी अच्छा बन जायेगा। हम इसको अस्वीकार नहीं करते। गांधी के साहस की एक घटना पढ़ेंगे तो साहस का विचार स्फुरित होगा। कर्तव्यपरायणता, ईमानदारी की कोई घटना पढ़ेंगे तो दिमाग में एक बिजली कौंध जायेगी, एक तरंग पैदा हो जायेगी। किन्तु यह मानव मस्तिष्क भी अजीब है। क्या यह कह सकते हैं—एक बार जो तरंग आयी, वह मस्तिष्क में छायी रह जायेगी ? समुद्र में कितनी ही तरंगें उठती हैं, किन्तु वापस गिर जाती हैं। तरंग टिकती कहां है ? उसे टिकाने की कोई प्रक्रिया खोजें।

आज शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यों की चर्चा है। हम पुस्तकों के माध्यम से कर्तव्यबोध, दायित्वबोध, राष्ट्रीय एकता आदि का पाठ कितना ही पढ़ा दें, तब तक इनकी कोई सार्थकता नहीं होगी, जब तक इनकी अनुप्रेक्षा नहीं कराई जायेगी। जब तक स्वतःसूचन या सजेस्टीलौजी के प्रयोग नहीं कराए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जायेंगे, कायोत्सर्ग की मुद्रा में शिथिलीकरण कराकर उन शब्दों को हृदयंगम नहीं करा दिया जायेगा और वह भी एक बार में नहीं, महीनों तक निरंतर सातत्य की प्रक्रिया नहीं चलेगी, तब तक जो पढ़ाया जा रहा है, उसके साथ तादात्म्य स्थापित नहीं होगा।

कार्यक्षेत्रीय कौशल के क्षेत्र में जीवनविज्ञान के प्रयोग बहुत सार्थक हैं। आत्मविश्वास के लिए कौन-सा प्रयोग होना चाहिए, निर्णयशक्ति बढ़ाने के लिए कौन-सा प्रयोग करें, स्मृति-विकास और एकाग्रता के लिए कौन-सा प्रयोग करें। इन सबके विकास के लिए जीवनविज्ञान के प्रयोग निर्धारित हैं। उनका दीर्घकालिक अभ्यास बहुत जरूरी है। अगर ऐसा होता है तो कार्य क्षेत्र में ही नहीं, हर क्षेत्र में व्यक्ति सफलता का अनुभव कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिक्षा का नया आयाम

मनुष्य का जीवन बहुआयामी है। भौतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि जीवन के अनेक पक्ष हैं। उसकी व्याख्या किसी एक के पक्ष के आधार पर नहीं की जा सकती। शिक्षा को भी एकपक्षीय नहीं बनाया जा सकता। शिक्षा का काम किसी एक पक्ष को उजागर करना कैसे हो सकता है ? शिक्षा वह है, जो जीवन की सारी अपेक्षाओं को पूरा करे।

सामान्यीकरण : विशिष्टीकरण

हम कभी सामान्यीकरण की पद्धति से काम लेते हैं और कभी विशिष्टीकरण की पद्धति से। एक डॉक्टर एम. बी. बी. एस. करता है। यह सामान्यीकरण की प्रक्रिया है। फिर स्पेशेलाइजेशन करता हैं, आंख, स्नायु अथवा हृदय का विशेषज्ञ बनता है। शिक्षा के सामान्यीकरण और विशिष्टीकरण दोनों स्वरूपों पर विचार करें। एक विद्यार्थी हायर सेकेंडरी तक अध्ययन करता है, यह एक सामान्यीकरण की प्रक्रिया है। पहले अक्षरबोध—सामान्य ज्ञान करा दिया जाता है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में पढ़ने-लिखने की क्षमता, बौद्धिक विकास, सोचने-विचारने की पृष्ठभूमि निर्मित हो जाती है। विशिष्टीकरण की प्रकिया में वह फिर कॉमर्स लेता है साइंस अथवा साइकोलाजी पढ़ता है। विद्या की सैकड़ों शाखाएं हैं। वहां उसका विशिष्टीकरण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरित्र की शाखा

आर्थिक पक्ष के लिए अर्थशास्त्र की पूरी शाखा है। शरीर विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान की पूरी शाखा भौतिकपक्ष के लिए है, शरीर के लिए है, स्वास्थ्य के लिए है। समाजविज्ञान सामाजिक पक्ष के लिए है। जीवन के हर पक्ष के लिए एक शाखा है, जहां विशेष अध्ययन होता है, व्यक्ति विशेषज्ञ बनता है। किन्तु चरित्रपक्ष के लिए कोई स्वतंत्र शाखा नहीं है। व्यवहार मनोविज्ञान में कुछ बातें बताई जाती हैं, किन्तु चरित्र विकास के लिए विशेषज्ञता की बात नहीं आयी और अपेक्षित भी नहीं लगी। आश्चर्य है—विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों की सैकड़ों-सैकड़ों शाखाएं हैं, कहीं दो सौ डिपार्टमेंट हैं, कहीं चार सौ हैं किन्तु एक भी फैकल्टी चरित्र विज्ञान या अहिंसा प्रशिक्षण के लिए नहीं है। इसका अर्थ है—विद्या की ये शाखाएं जीविका के साथ जुड़ी हुई मान ली गई हैं और चरित्र के विषय को जीविका से बाहर रख दिया गया इसलिए अपेक्षित नहीं समझा गया।

प्रश्न आचरण की शाला का

कहा जाता है—नारद एक बार रावण के यहां चले गए। रावण बहुत विद्वान् था। वैदिक साहित्य में उसे शिवभक्त और प्रकाण्ड विद्वान् माना गया है। वह विद्या का अनुरागी था, इस तथ्य का जैन साहित्य भी समर्थन करता है। हजार विद्याएं उसने सिद्ध कर ली थीं। वह शक्तिशाली विद्याधर था। रावण ने नारद को अपने विद्या के कक्ष दिखाते हुए कहा—यह मेरी अध्ययनशाला है, यह मेरी प्रयोगशाला है, यह विज्ञानशाला है। नारद को विद्या की सारी शालाएं दिखा दीं। नारद ने एक प्रश्न किया—'महाशय ! बहुत सारी शालाएं दिखा दीं, कहीं कोई आचरण की शाला भी है ? रावण ने कहा—'वह तो नहीं है।' नारद बोले—'आचरण की शाला नहीं है तो ये सारी शालाएं आपका ही विनाश करेंगी।'

अनिवार्य बने चरित्र की शिक्षा

यह बहुत गंभीर बात है। आचरण की शाला नहीं होती है, विद्या की दूसरी सारी शालाएं बन जाती हैं, तो वे स्वयं मनुष्य के संहार के लिए आगे आ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाती हैं। एक बड़ा प्रश्न है— शिक्षा जगत् में इसे महत्त्व क्यों नहीं दिया गया ? शिक्षाशास्त्रियों ने इस ओर ध्यान क्यों नहीं दिया ? समाधान के दो विकल्प हो सकते हैं—

- आचरण की स्वतंत्र शाला—आचरण की विशेषज्ञता।
- आचरण का सामान्यीकरण

पहला विकल्प अच्छा लगता है। विद्या की किसी भी शाखा में जाएं, आचरण या चरित्र की शिक्षा सबके लिए अनिवार्य हो, इतना तो होना ही चाहिए। जहां विशिष्टीकरण की बात है, कोई चरत्रिविज्ञान में भी विशेषज्ञ बनें, विशेषज्ञता प्राप्त करें। सामान्यीकरण की शाखा अनिवार्य है, विशेषज्ञता अनिवार्य नहीं हो सकती। कुछ व्यक्ति, जो रुचि वाले हैं, वे इस शाखा में विशेषज्ञता भी प्राप्त करें। आवश्यक है— विश्वविद्यालय में एक फैकल्टी हो, जो चरित्र की विशेषज्ञता प्राप्त कराए। किन्तु जहां सामान्यीकरण का प्रश्न है, वहां प्राथमिक शिक्षा से विश्वविद्यालयी शिक्षा तक चरित्र विज्ञान का प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। आचरण की सामान्य शिक्षा तो मिलनी ही चाहिए। हर कक्षा में और अध्ययन की हर शाखा में वह मिले। प्रश्न होगा—कैसे मिले ? इसके लिए प्राथमिक कक्षाओं में एक स्वतंत्र विषय होना जरूरी है, जिससे विद्यार्थियों को चरित्रविज्ञान, नैतिकता, अध्यात्म की जानकारी मिले। अहिंसा, सत्य आदि अध्यात्म के समग्र पक्षों का ज्ञान देना, उनका प्रयोग कराना—यह प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होना चाहिए। ग्रेजुएशन या पोस्टग्रेजुएशन में थोड़ा-सा परिवर्तन हो जाएगा। बी॰ ए॰ अथवा एम॰ ए॰ का जो सब्जेक्ट है, उसी में उसका समावेश हो जाए।

समाहार कैसे हो ?

अर्थशास्त्र के अध्ययन के साथ-साथ चरित्र के तत्त्व उसमें इस प्रकार समाहित कर लिए जाए जैसे दूध में चीनी मिला दी जाती है। दूध में चीनी का पता नहीं चलता और दूध में मिठास आ जाती है। वैसे अहिंसा और अहिंसा का पूरा परिवार, जिसमें जातीय उन्माद या अभिनिवेश नहीं है, सांप्रदायिक कट्टरता नहीं है, मानवीय एकता का संबोध है, नशामुक्ति, पर्यावरण और लोकतंत्र विशुद्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की चेतना जागृत है, प्रामाणिकता है। अहिंसा के सारे तत्त्वों को इस प्रकार उसमें गर्भित कर दिया जाए, जिससे ऐसा न लगे कि कुछ अतिरिक्त दिया जा रहा है और अहिंसा की अवधारणाएं उसमें इस प्रकार समाहित हो जाएं कि उसकी मिठास पूरे पाठ्यक्रम में आ जांये। विद्यार्थी अर्थशास्त्री बनें, समाज शास्त्री बनें या पर्यावरणशास्त्री बनें। अध्यात्म के तत्त्व भी इस प्रकार समाहित हों कि पढ़ने वाले की चेतना जागृत हो जाये, उसका मस्तिष्कीय परिवर्तन हो जाए। सबसे बड़ी बात है—इस प्रकार की चेतना का जाग जाना, मस्तिष्कीय परिवर्तन का हो जाना लेकिन यह हो नहीं रहा है।

अहिंसा और अर्थशास्त्र की अवधारणाएं

पूज्य गुरुदेव जैन विश्व भारती में विराज रहे थे। अजमेर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर आहूजा आए। वार्तालाप के एक प्रसंग में हमने कहा—अर्थशास्त्र के साथ अहिंसा जुड़नी चाहिए। हमारा अर्थशास्त्र अहिंसा का अर्थशास्त्र होना चाहिए। उन्होंने कहा—आप क्या कह रहे हैं ? अर्थशास्त्र तो प्रारंभ से ही हिंसा की बात सिखाता है। अर्थशास्त्र की सारी अवधारणाएं हिंसा की ओर ले जाती हैं, भोगोन्मुख बनाती हैं, स्पर्धा को जन्म देती हैं। मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है और उसमें यह क्षमता है कि वह ज्यादा कमाए। ज्यादा इच्छा, ज्यादा आवश्यकता, ज्यादा संग्रह, ज्यादा उत्पादन—ये सारी अवधारणाएं तो हिंसा की ओर ले जाने वाली अवधारणाएं हैं और आप कह रहे हैं—अर्थशास्त्र को अहिंसा का अर्थशास्त्र बनाएं। इनमें कोई मेल नहीं है। हमने कहा—आज अर्थशास्त्र की अवधारणाओं को बदलना जरूरी है। गांधीजी के परिपार्श्व में जो अर्थशास्त्री थे, उन्होंने कुछ ऐसा प्रयत्न किया था किन्तु आज के भौतिकताप्रधान और अर्थप्रधान युग के लोगों को ऐसी बातें मान्य नहीं होतीं। आज की अवधारणा है—**'अर्थसारं सर्वस्वम्'**--अर्थ ही सब कुछ है। ऐसी स्थिति में नैतिक अवधारणाएं काम नहीं कर रही हैं।

अनुकूल वातावरण

आज फिर एक अवसर है और वह इसलिए है कि शायद उस समय आज जितने आर्थिक अपराध नहीं थे, इतनी आर्थिक जटिलताएं भी नहीं थीं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतनी हिंसा भी नहीं थी। आज कमाई का सबसे बढ़िया तरीका है अपहरण और फिर फिरौती की मांग। आज तो यह लगभग उद्योग का रूप ले चुका है। न कोई दुकान या शोरूम, न फैक्टरी और उद्योग। आजकल समाचार पत्रों में ऐसी खबरें प्रायः मुखपृष्ठ पर रहती हैं– जो बच्चे को प्रतिदिन गाड़ी से स्कूल ले जाता था, उस ड्राइवर ने ही बच्चे का अपहरण कर लिया और दस लाख फिरौती की मांग कर दी। आज आर्थिक अपराध इतने बढ़ गए हैं कि पहले शायद इनकी कल्पना भी नहीं की गई होगी। शिक्षा ने दक्षता बढ़ा दी, बौद्धिकता बहुत बढ़ा दी, अब उसका उपयोग आर्थिक अपराध, सामाजिक अपराध के क्षेत्र में हो रहा है।

यह स्वाभाविक बात है—जब समस्या गहराती है, तब समाधान खोजने की चाह बढ़ती है। आज आदमी सोच रहा है– इसका कोई समाधान होना चाहिए और वे लोग विशेषकर सोच रहे हैं, जो अपहरण के शिकार हुए हैं, जिनसे दो करोड़, पांच करोड़, दस करोड़ की मांग हुई है और जिन्हें ले-देकर समझौता भी करना पड़ा है। ऐसे समझौते सरकार को भी करने पड़े हैं। जिनके घरों में दिन-दिहाड़े डकैती हो जाती है, वे इस बारे में बहुत सोचते हैं। जो आतंकवाद के साये में जी रहे हैं, भारी रिश्वत और दहेज की समस्या से प्रताड़ित हो रहे हैं, वे अवश्य सोचते हैं कि स्थिति बदलनी चाहिए। इस सोच ने जीवन विज्ञान या अहिंसा प्रशिक्षण के लिए अधिक अनुकूल वातावरण बनाया है। इस अवसर पर भी हमारे शिक्षाशास्त्रियों ने कुछ नहीं सोचा, शिक्षा में कोई परिवर्तन की बात नहीं सोची तो शायद इससे भयंकर भूल और कुछ नहीं होगी। आज भले ही कोई न करे, लेकिन भावी पीढ़ी उनकी मूर्खता का उल्लेख अवश्य करेगी। इतिहास इस भयंकर भूल का अहसास करेगा, उल्लेख करेगा और मानेगा—जिनके हाथ में बदलने का सूत्र था, वे कुंभकर्णी नींद में सोते रहे और अपनी रोटी पकाते रहे, उन्होंने देश के लिए कुछ नहीं किया।

दायित्व धर्म गुरु का

यही प्रश्न आज धर्मगुरुओं के सामने है। दो ही तंत्र हैं, जिनमें बदलने की क्षमता है। राजनीतिज्ञ बदल नहीं सकते। उन्हें तो स्वयं बदलना है। वे किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को क्या बदलेंगे ? मस्तिष्कीय चेतना को बदलने के दो ही तंत्र हो सकते हैं—एक धर्म का तंत्र और दूसरा शिक्षा का तंत्र। यदि शिक्षा-तंत्र और धर्म-तंत्र के लोगों ने ध्यान नहीं दिया तो इतिहास में वे भी इस भयंकर भूल के साक्षी माने जाएंगे।

पूज्य गुरुदेव ने इस दिशा में ध्यान दिया है। कोई स्वार्थ नहीं, कोई प्रयोजन नहीं, कुछ लेना-पाना नहीं। मात्र कल्याण भावना की दृष्टि से परिवर्तन की दिशा में गंभीर चिन्तन किया। आचार्य हेमचन्द्र ने भगवान् महावीर की स्तुति में कहा—आप अबन्धु के बन्धु हैं, अकारण वत्सल हैं।

अनाहूत सहायस्त्वं, खमकारण वत्सलः

यह अहैतुकी वृत्ति परमार्थ की चेतना से स्फुरित होती है। एक ही उद्देश्य है कि मनुष्य चरित्रवान् रहे, समाज चरित्रवान् रहे। शिक्षातंत्र के लोगों को भी यह सोचना चाहिए— मस्तिष्कीय परिवर्तन कैसे हो। उसके लिए हमें नया आयाम खोलना होगा। जो शिक्षा का वर्तमान आयाम है, उससे हटकर कुछ करना होगा।

शिक्षा के दो हेतु

शिक्षा के दो हेतु बनते हैं—भाषामुक्त शिक्षा और भाषा युक्त शिक्षा। गणित, व्याकरण, तर्क, साइंस—ये सब भाषा के द्वारा पढ़ाये जाने वाले विषय हैं। साइंस में जरूर कुछ भाषामुक्त शिक्षा भी दी जाती है। वहां भाषा कम है, प्रयोग ज्यादा हैं। किन्तु शेष विषयों में भाषायुक्त शिक्षा ही चलती है। भाषायुक्त शिक्षा के साथ भाषामुक्त शिक्षा को जोड़ना जीवन विज्ञान का एक लक्ष्य है। यह शिक्षा का एक नया आयाम है—भाषामुक्त शिक्षा भी शिक्षा के साथ जुड़े।

भाषा के प्रयोग की उपयोगिता है, उससे मस्तिष्क को प्रशिक्षित किया जाता है, किन्तु हमारे मस्तिष्क का कुछ भाग ऐसा है, जो भाषा के संकेतों को ग्रहण नहीं करता, स्वीकार नहीं करता। वह अभ्यास और प्रयोग को स्वीकार करता है। मस्तिष्क का दायां पटल भाषा को कम ग्रहण करता है। वह मुख्यतः ग्रहण करता है, अभ्यास को, प्रयोग और प्रवृत्ति को। उसको जागृत करना है तो भाषामुक्त शिक्षण का प्रयोग करना होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्या और तनाव

एक विद्यार्थी तनाव में है तो वह उद्दण्ड भी बनेगा, आक्रामक भी बनेगा और भविष्य में वह आक्रमकता का संस्कार अर्जित करता रहेगा, उसके मस्तिष्क में आक्रामकता की वृत्तिं पैठ करती रहेगी। आवश्यक है कि विद्यार्थी को सदा तनावमुक्त रखा जाए। परीक्षा का समय हो या अध्यापक का व्यवहार, घरेलू समस्या हो या आर्थिक समस्या, उसको तनावमुक्त रखा जा सके, यह बहुत आवश्यक है। क्या उपरोक्त परिस्थितियों में वह तनावमुक्त रह सकेगा ? अगर हम बौद्धिक स्तर पर सोचें तो उत्तर होगा—नहीं रह सकेगा। किन्तु भाषामुक्त विधि के आधार पर हम चिन्तन करें तो हम कह सकते हैं कि समस्या के होते हुए भी वह तनावमुक्त रह सकेगा, रहेगा। यही जीवन की कला है—हजार समस्या है, पर फिर भी तनावमुक्त रहें। यह न मानें कि समस्या तनाव पैदा करती है। कोई समस्या तनाव पैदा नहीं करती। हमारी मस्तिष्क की दुर्बलता तनाव पैदा करती है या मस्तिष्क का एक भाग, जो हर समय सक्रिय रहता है, तनाव पैदा करता है। अगर हम मस्तिष्क के उस भाग को जागृत कर लें, जो सारे तनावों को रिलीज करता है, कभी भी तनाव को संचित नहीं होने देता, तो बड़ी-से-बड़ी समस्या के आने पर भी तनाव नहीं होगा। ऐसा भी नहीं होगा कि वह समस्या को झेलता रहे। वह तनावमुक्त होकर समस्या का समाधान ढूंढ़ेगा। क्या तनाव में किसी समस्या का समाधान खोजा जा सकता है ? तनाव में समस्या को सुलझाने का अर्थ है—एक समस्या को समाहित करना, दूसरी समस्या को पैदा कर लेना। समाधान का यह तरीका नहीं है—समस्या को सुलझाने का तरीका है—स्वयं स्थिर रहे, स्वयं समस्या न बने।

विजय का सूत्र

प्रचीन काल में शास्त्रार्थ बहुत होते थे, वादविवाद बहुत चलते थे और उनके बड़े-बड़े अखाड़े चलते थे। आगम साहित्य में बतलाया गया—जब वाद विवाद चल रहा हो, प्रतिपक्ष उत्तेजनापूर्ण व्यवहार कर रहा हो, ऐसी स्थिति में अगर तुम्हें विजयी होना है तो तुम शान्त रहो। चर्चा करने वाला उत्तेजित होता है और यदि तुम उत्तेजित हो गये तो तुम्हारी पराजय निश्चित है। तुम शान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहोगे और वह उत्तेजित रहेगा तो तुम जीत जाओगे, वह हार जायेगा। पूज्य कालूगणी का वह उदाहरण बहुत सार्थक है—दो व्यक्तियों ने एक रस्से को खींचना शुरू किया। अगर दोनों तानते हैं तो रस्सी टूट जायेगी और दोनों गिर जाएंगे। एक तानता है और दूसरा ढील दे देता है तो तानने वाला गिर जायेगा। जीवन विज्ञान यही सिखाता है-कोई भी समस्या आए, चाहे वह विद्यार्थी जीवन में आए या पारिवारिक जीवन में, समस्या का समाधान तनावमुक्त रह कर करें।

भीतर : बाहर

सूफी सन्तों के बारे में एक बहुत सुन्दर बात कही जाती है। किसी ने पूछा—पुराने सूफी सन्तों में और आज के सूफी सन्तों में क्या अन्तर है ? इस प्रश्न का बहुत मार्मिक उत्तर दिया गया—अन्तर केवल इतना है कि पुराने सूफी सन्त भीतर में स्थिर रहते थे और बाहर में चंचल रहते थे। आज के सूफी सन्त भीतर में तो चंचल हैं और बाहर में बहुत स्थिर हैं।

भीतर में चंचल रहना और बाहर में स्थिर रहना दिखावा है, समस्या के समाधान का सूत्र नहीं है।

मानसिकता बदले

जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण व्यक्ति को भीतर में स्थिर करेगा, वह बाहर से चंचल रह कर समस्या का समाधान खोजेगा। आज इसके सर्वथा विपरीत चल रहा है। आज का सूत्र यह है— **'शठे शाठ्यं समाचरेत्'** —कोई तुम्हारे साथ शठता का व्यवहार करे तो तुम्हें भी उसके साथ शठता का व्यवहार करना चाहिए। अगर कोई तुम पर कंकड़ फेंके तो तुम उस पर पत्थर फेंको। जैसे को तैसा उत्तर दो। ये सूक्तियां और लोक कहावतें बता रही हैं कि हमारी मानसिकता क्या है? इस मानसिकता को बदलना है। हाथ पर हाथ धरकर मत बैठो, समस्या का समाधान खोजो, किन्तु शठ के साथ शठ बन कर नहीं। अगर शठ बन कर समाधान खोजने की कोशिश करोगे, तो वह शठता पहले तुम्हें खायेगी, समाधान होगा नहीं, समस्या और उलझ जायेगी। यही जीवन का रहस्य है कि हर स्थिति में तुम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनावमुक्त रह सको और जहां भी समस्या आये, वहां दायें पटल से काम लो।

शिक्षा की समस्या

मस्तिष्क का दायां पटल चरित्र के लिए उत्तरदायी है, आत्मानुशासन के लिए उत्तरदायी है। इसका काम ही हमारे चरित्र के साथ जुड़ा हुआ है। लौकिक विद्या के लिए मस्तिष्क का बायां पटल उत्तरदायी है। आज की शिक्षा की समस्या है— केवल बायें पटल को जागृत करने का प्रयत्न हो रहा है। अब उसके साथ नया आयाम जुड़ना चाहिए—दायें पटल को भी जागृत करें। बायें को सुला दें, यह तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसके बिना जीवन की यात्रा नहीं चलती। वह आवश्यक है किन्तु उसके साथ दायें मस्तिष्क पटल को भी सक्रिय करना जरूरी है। जीवन विज्ञान के मंच से हम यह अनेक बार कहते हैं—शिक्षा में जो चल रहा है, उसमें कुछ छोड़ना चाहिए और कुछ जोड़ना चाहिए। जोड़ना यह चाहिए— विद्यार्थी को तनावमुक्त कैसे रखा जा सके, कैसे उसके दायें मस्तिष्कीय पटल को जागृत किया जा सके ? कैसे नाड़ीतंत्रीय संतुलन पैदा किया जा सके ? कैसे अन्तःस्रावी ग्रंथियों के स्राव को संतुलित और नियोजित किया जा सके ?

शिक्षा के अनेक पहलू

शिक्षा में अनेक पहलुओं से विचार किया गया। जैसे—बुनियादी तालीम, उद्योग के साथ शिक्षा का सम्बन्ध जुड़ना चाहिए, व्यवसाय के साथ शिक्षा जुड़नी चाहिए आदि-आदि जीविकापरक अनेक पहलुओं से विचार किया गया। इन्हें व्यर्थ भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि ये जीवन की आवश्यकताएं हैं। किन्तु जैविक दृष्टि से, बायोलाजिकल आस्पेक्ट से जितना विचार होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। जैविक-रासायनिक परिवर्तन की दृष्टि से जितना विचार होना चाहिए, उतना नहीं हुआ है। थोड़ा-बहुत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हुआ है, किन्तु वह भी बहुत नगण्य और प्रायोगिक विधि के रूप में नहीं हुआ है। जीवन विज्ञान में इन सारी प्रायोगिक विधियों पर चिन्तन हुआ है, विचार-विमर्श हुआ है, प्रयोगों का निर्धारण हुआ हे और यह प्रयत्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो रहा है कि कैसे विद्यार्थी के मस्तिष्क का संतुलित विकास किया जाये ? मस्तिष्क के वे सारे प्रकोष्ठ जागृत हों, जो जीवन के साथ जुडे हुए हैं। नाड़ीतंत्रीय असंतुलन जो पैदा होता है, उसका कैसे बैलेंस किया जाये ? इन सारी आध्यात्मिक, यौगिक और वैज्ञानिक प्रविधियों का सम्मिश्रण कर एक पद्धति का निर्धारण हुआ है और उसको हम शिक्षा की पूरक पद्धति के रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं।

पूरक पद्धति

दूध का अपना काम है। यह नहीं कहा जा सकता—चीनी दूध का काम करेगी। बहुत लोग फीका दूध नहीं पी सकते, शायद स्वाद भी उन्हें नहीं आता होगा। चीनी मिला कर उसमें मिठास पैदा करते हैं। अच्छे भोजन के लिए तेल, मसाले और नमक का प्रयोग होता है। ये हमारे भोजन के पूरक तत्त्व हैं। हिन्दुस्तान में इन पूरक तत्त्वों का बहुत महत्त्व किया गया और बड़े वैज्ञानिक ढंग से इन्हें खोजा गया। पाचनतंत्र के लिए हल्दी जरूरी है तो भोजन में हल्दी का प्रयोग शामिल कर लिया। इसी प्रकार जीरा, सोंठ, काली मिर्च आदि को शामिल किया गया। हम जीवन विज्ञान को इसी रूप में देखते हैं। अगर जीने की कला, जीवन के रहस्य और जीवन के सूत्र शिक्षा के साथ नहीं जुड़ते हैं तो नमक के बिना भोजन वाली बात होगी। इसीलिए आज इस नये आयाम पर काफी चिन्तन जरूरी है। इसे समझें, इस प्रकार नियोजित करें, जिससे विद्यार्थी पर भार भी न पड़े।

सोचें स्वार्थ से परे

गांधीजी ने इस बात पर बल दिया था—पाठ्यपुस्तकों से मुक्त शिक्षा होनी चाहिए पर इसे कोई भी आज सुनने-समझने को तैयार नहीं है और सुने भी कैसे ? अगर पाठ्यपुस्तकविहीन शिक्षा हो जाये तो करोड़ों-अरबों का धंधा ही सामप्त हो जायेगा। शिक्षा के क्षेत्र में बड़े धंधे चल रहे हैं। ऐसे धंधेबाज कब चाहेंगे कि ऐसी शिक्षा हो ? न जाने कितने लोगों का स्वार्थ इसके साथ जुड़ा हुआ है। वे कभी पसंद नहीं करेंगे। यह बहुत आगे की बात है किन्तु जो चल रहा है, उसमें कुछ छोड़ दें, कुछ जोड़ दें तो शायद एक नया आयाम,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नया चिंतन हमारे सामने प्रस्तुत होगा। ऐसा लगता है कि यह बात कुछ समझ में आ रही है। कुछ लोग सोच भी रहे हैं। किन्तु स्वार्थमुक्त होकर केवल शिक्षातंत्रीय दृष्टिकोण से कब सोचा जायेगा, इसकी प्रतीक्षा है। अगर समाज को कुछ बदलना है तो इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प भी नहीं है। ऐसा नहीं माना जाना चाहिए कि जीवनविज्ञान पूज्य गुरुदेव तुलसी की सन्निधि में विकसित हुआ है। यह तो वास्तविकता है। इस वास्तविकता को उल्टा नहीं जा सकता। जो यथार्थ है, उस यथार्थ की स्वीकृति ही हमारी समस्या का सबसे बड़ा समाधान होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वस्थ समाज संरचना का संकल्प

हम सब देखते हैं, किन्तु जिसे देखना चाहिए, उसे कम देखते हैं, वहां तक कम पहुंच पाते हैं। व्यक्ति को देखते हैं, समाज को देखते हैं। एक दृष्टिकोण है व्यक्ति को देखने का, समाज को देखने का। देखते हैं तो कुछ विकार सामने आते हैं, कुछ बीमारियां सामने आती हैं। प्रतीत होता है—व्यक्ति रुग्ण है और समाज भी रुग्ण है। आदमी चाहता है—वह रुग्ण न रहे। प्रत्येक युग के जो चिंतक व्यक्ति हुए हैं, उन्होंने सामाजिक स्वास्थ्य के लिए योजना बनाई है, दर्शन दिया है, प्रयत्न किया है।

बीमारी कहां है ?

कुछ दार्शनिकों और अर्थशास्त्रियों ने समाज की बीमारी का कारण अर्थ की समस्या को बताया। अर्थ के आधार पर समाज बनता है और बिगड़ता है। यदि अर्थ की व्यवस्था ठीक कर दी जाये तो समाज स्वस्थ बन जायेगा। इसी आधार पर एक दर्शन चल पड़ा साम्यवाद का, सामजवाद का। काफी प्रयत्न किये गये अर्थ की व्यवस्था को संतुलित करने के लिए, समाज को स्वस्थ बनाने के लिए, किन्तु व्यवस्था संतुलित नहीं हुई। असंतुलन बढ़ता रहा। आर्थिक समस्या नहीं सुलझी, आर्थिक अपराध बढ़े हैं, स्वास्थ्य बिगड़ा है। बीमारी आखिर कहां है ? बीमारी क्या है ? इन दो बिन्दुओं पर विचार करना होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काम और अर्थ

काम और अर्थ—ये दो समाज की मूलभूत प्रवृत्तियां हैं। प्रश्न है— काम के सुधरने से अर्थ सुधरता है या अर्थ के सुधरने से काम सुधरता है ? इस बिन्दु पर कम ध्यान दिया गया, इसकी मीमांसा कम की गयी। आर्थिक अवधारणा बाद में बनती है। काम की चेतना स्वाभाविक है। हर व्यक्ति कामना के साथ जन्म लेता है। इच्छा, काम या कामना—यह मनुष्य की मौलिक मनोवृत्ति है। यदि मनोवृत्तियों का वर्गीकरण किया जाये और समाहार किया जाये तो एक ही मनोवृत्ति अंतिम होगी, वह है काम, कामना या इच्छा। प्रत्येक प्राणी में यह होती है। अर्थ का हेतु भी काम है। मूल कामना है, जो सारी प्रवृत्तियों को जन्म दे रही है और सारा विस्तार कर रही है।

काम का अर्थ

मार्क्स ने अर्थ पर ध्यान केन्द्रित किया और उसका ऐतिहासिक सन्दर्भ में अध्ययन किया। यदि वैसे ही काम पर ध्यान दिया जाता और उसका ऐतिहासिक सन्दर्भ में अध्ययन किया जाता तो समस्या काफी सुलझ जाती। मूलभूत समस्या अर्थ नहीं है। यह नम्बर दो की समस्या है। एक नम्बर की समस्या है काम। **'काम जानामि ते रूपं' संकल्पात् किल जायसे**— काम एक संकल्प के साथ व्यक्त होता रहता है। हम काम को विस्तार से समझें। काम का अर्थ कोरा सेक्स नहीं है, कोरा यौन सम्बन्ध नहीं है। हमारी इन्द्रियों की अतृप्ति, इच्छा—ये सब मनुष्य में नाना रूपों में पैदा होती रहती हैं। आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा—सब इन्द्रियों की कामनाएं हैं, अतृप्ति हैं और वे अपनी अतृप्ति को पूरा करनी चाहती हैं। जैसे इन्द्रिय की इच्छा और कामना है, वैसे ही मन और भावनागत कामना है।

काम, अर्थ और भोग

पुरुष क्या है ? काम ही तो है—**एष वै काम :** अगर कामना न हो तो पुरुष का जीवन बदल जायेगा। गीता में जो निष्काम शब्द का चुनाव किया गया है, वह बहुत सटीक है। निष्काम वह है, जो कामना रहित है। फल की कामना नहीं है तो फिर अर्थ की स्पर्धा नहीं होगी, अर्थ का अपराध भी नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगा। यदि अर्थ और काम दोनों का समवेत अध्ययन किया जाता तो शायद हम समाधान के बहुत निकट पहुंच जाते।

धर्म के लोगों ने काम का अध्ययन बहुत विस्तार से किया। समाजवाद और साम्यवाद के दार्शनिकों ने अर्थ का अध्ययन बहुत विस्तार से किया। दोनों के अध्ययन अलग-अलग रहे। यदि मिला दें तो समस्या का बहुत कुछ हल हो जाए। काम और अर्थ—दोनों का संयुक्त अध्ययन भी होना चाहिए। काम शास्त्र की बात सेक्स के सन्दर्भ में नहीं कह रहा हूं। कामशास्त्र यानी इच्छा का शास्त्र, कामना का शास्त्र। कामशास्त्र, अर्थशास्त्र और इनके साथ जुड़े उपभोगशास्त्र। इन तीनों का एक समवाय बनता है तो समाज को स्वस्थ बनाने वाली प्रक्रिया उपलब्ध हो जाती है।

स्वस्थ समाज के लक्षण

एक व्यक्ति चोरी करता है। भीतर में अगर कामना नहीं है तो कठिनाई झेल लेगा, किन्तु चोरी नहीं करेगा। चोरी के पीछे कोई गरीबी कारण नहीं है। ऐसे चोर हैं जो बहुत संपन्न हैं, किन्तु चोरी आदतन करते हैं, संस्कारवश करते हैं, दमित वासना की पूर्ति हेतु करते हैं। जितने अपराध होते हैं, वे किसी प्रयोजन के साथ ज्यादा नहीं होते। यह एक बहाना है कि इस स्थिति में बेचारा क्या करता ? उसके पीछे दमित वासनाए हैं संस्कार हैं, और भीतर जाएं तो कामना का चक्र चल रहा है। कामना का संयम नहीं है, इसलिए अपराध में जा रहा है।

स्वस्थ समाज के तीन लक्षण हैं—

- जिस समाज में काम पर नियंत्रण किया जाता है, वह स्वस्थ समाज है।
- जिस समाज में अनावश्यक हिंसा नहीं होती है, वह स्वस्थ समाज है।
- जिस समाज में आर्थिक अपराध नहीं होता है, वह स्वस्थ समाज है।

जड़ की बात

स्वस्थ समाज के लिए पहला लक्षण ही पर्याप्त है, किन्तु अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए दो और जोड़ दें। मूल है काम। भगवान् महावीर ने कहा—'**कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं**— सारे दुःख कामना के साथ होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कामना का अतिक्रमण करो, दुःख अपने आप मिट जायेगा। दुःख को मिटाने का प्रयत्न मत करो। तुम दुःख की जड़ तक जाओ। दुःख की जड़ है काम काम तक जाओ, वहां समाधान करो, तुम्हें अनुभव होगा—दुनिया में दुःख नाम की कोई चीज नहीं है।

अध्यात्म के आचार्यों ने सचमुच जड़ को पकड़ा था। समाजवाद और साम्यवाद के कर्णधारों ने जड़ को नहीं पकड़ा, तने को पकड़ लिया। स्वस्थ समाज की जड़ है कामना का संयम और उसका तना है अर्थ का संयम। ये दो बातें आती हैं तो स्वस्थ समाज के लिए हमारी पृष्ठभूमि प्रशस्त बन जाती है। कामना का संयम है तो उपभोग की सीमा अपने आप हो जाती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें। पहले व्यक्ति के मन में कामना पैदा होती है। एक स्त्री के मन में कामना पैदा हुई—मुझे हार पहनना है। पति से हार की मांग की। हार प्राप्त हो गया। कामना की पूर्ति हो गयी, संतुष्टि हो गयी। किन्तु दूसरे दिन पड़ोसिन के गले में उससे भी बढ़िया हार देखा। उसकी कामना को पुनः उत्तेजना मिली। पति से बोली—जो कल लाए थे, वह तो साधारण हार है, मुझे तो उससे बढ़िया हार चाहिए।

यह काम-प्रेरित समस्या है। आज के ये सारे फैशन इसीलिए चल रहे हैं कि एक दूसरे को देखकर कामना का उद्दीपन हो रहा है। वर्तमान में कामना के उद्दीपन के जितने भी उपक्रम चल रहे हैं, उन्हें असीम कहा जा सकता है और उसी आधार पर सारा अर्थ चक्र चल रहा है। एक भाई ने बताया—हम लड़कियों के लिए बढ़िया से बढ़िया कपड़ा लाते हैं, किन्तु एक महीने बाद वह सब उनके लिए बेकार हो जाता है। वे कहती हैं— अब यह किसी काम का नहीं, फैशन बदल गया। फिर नया लाते हैं, कुछ ही दिनों के बाद वह भी बेकार हो जाता है। डिजाइनर नए-नए, आकर्षक परिधान निकालते हैं, जिससे ज्यादा से ज्यादा बिक्री हो, किन्तु बेचारा ग्राहक जो उपभोक्ता है, उसके सिरदर्द हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपराध क्यों

कामना का चक्र भीतर से चलता है। एक उद्योगपति से मैंने पूछा—'तुम्हारे पास इतना धन था, फिर तुमने इतनी अप्रामाणिकता और आर्थिक अपराध क्यों किये ? उसने कहा—'महाराज, अब आपसे क्या छिपाऊं ? मेरे मन में यह कामना थी कि मुझे हिन्दुस्तान का प्रथम नम्बर का उद्योगपति बनना है, ए-वन बनना है। इस कामना ने मुझसे सारे आचरण करवा लिये।

पाप को कौन कराता है ? गीता में इस बात को ठीक पकड़ा गया—यह काम करवा रहा है। जब तक काम पर नियंत्रण नहीं होगा, अर्थ पर नियंत्रण नहीं हो पायेगा। आज यही हो रहा है—हम अर्थ की व्यवस्था को तो संतुलित करना चाहते हैं किन्तु काम पर ध्यान दे नहीं दे रहे हैं। इसीलिए समाजवाद और साम्यवाद की कल्पना सफल नहीं हुई। यही वह बिन्दु है, जहां अध्यात्म को जोड़ना चाहिए। काम की व्यवस्था को ठीक किये बिना समाज और अर्थ की व्यवस्था ठीक हो सकती है, इसका सपना भी नहीं देखना चाहिए।

हर व्यक्ति के मन में काम प्रबल है। अर्थ को नियंत्रित करेंगे तो इतना संभव है—व्यक्ति कठोर दण्ड, कारावास के डर से सामने कुछ नहीं करेगा, किन्तु भीतर में तो अपराध का चक्र चलेगा और कामना उसको प्रेरित करती रहेगी। सबसे बड़ी जो मौलिक प्रेरणा है, वह है काम। काम के द्वारा ही सारा चक्र संचालित हो रहा है। स्वस्थ समाज वह है, जिसने इस सचाई को समझा है और काम को नियंत्रित करने का प्रबन्ध किया है।

स्वस्थ समाज के लिए

इस बिन्दु पर अध्यात्मवाद और समाजवाद दोनों जुड़ जाते हैं। मार्क्स और एंजिल्स ने अपने अंतिम वर्षों में कहा था—यदि यह अध्यात्म का सूत्र पहली अवस्था में हमें प्राप्त होता तो हमारी संपूर्ण दार्शनिक कल्पना दूसरे प्रकार की होती। किन्तु अब हमारी अवस्था हो गई और हम उसे सुधारने की स्थिति में नहीं हैं। उन्होंने इस सच्चाई का खुल कर प्रतिपादन किया—अध्यात्म के बिना, चरित्र के बिना कोरी अर्थव्यवस्था की बात चल नहीं पायेगी। अध्यात्म का अर्थ है कामना पर नियंत्रण करना। इसके साथ अर्थ की व्यवस्था को ठीक करना चाहें तो काफी सुविधा हो जायेगी। स्वस्थ समाज के लिए प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकता है काम को समझना; काम की समस्याओं का अध्ययन करना, काम के द्वारा होने वाली अभिवृत्तियों का अध्ययन करना, उसके दुष्परिणामों का अध्ययन करना और काम पर नियंत्रण करने वाली आध्यात्मिक विधियों का अध्ययन करना, प्रयोग करना। इस स्थिति में आर्थिक अपराध और भोग-उपभोग की जटिल समस्या का परिष्कार करने में बहुत सुविधा हो जायेगी।

मूल समस्या है काम

हमारे सामने सबसे पहली समस्या उपभोक्तावाद की है। पदार्थ कम और उपभोक्ता ज्यादा, यही संघर्ष है। यह स्थूल संघर्ष है। हमारी बुद्धि के सामने स्थूल संघर्ष ही आयेगा। हम उसी से जूझने का प्रयत्न करते हैं। एक समस्या है—पदार्थ की समस्या कैसे सुलझाएं। दूसरी समस्या है—आर्थिक समस्या को कैसे सुलाझाएं। इन दो पर आकर अटक जाते हैं। बुद्धि की सीमा इन दो तक ही है। इससे आगे हमें जाना होगा अनुभव और प्रज्ञा के माध्यम से। प्रज्ञा और अन्तर्दृष्टि से देखना होगा कि आर्थिक समस्या मूल नहीं है। उपभोक्ता की समस्या भी मूल नहीं है। मूल समस्या है कामना की।

कारण क्या है ?

अध्यात्म की प्रत्येक शाखा ने चाहे वह वैदिक और उपनिषद् की धारा हो, जैन और बौद्ध दर्शन की धारा हो, इस पर प्रकाश डाला। महावीर ने कहा—**'इच्छा हु आगाससमा अणन्तया।'** इच्छा आकाश के समान अनंत है। जब तक कामना का संयम नहीं करोगे, किसी भी समस्या का समाधान नहीं होगा।

अतृप्त वासना कथनी और करनी की दूरी पैदा करती है। आज का बड़ा प्रश्न है—कथनी और करनी की दूरी क्यों है ? इसका कारण न आर्थिक है, न सामाजिक है, बल्कि आत्मिक है। यह भीतर की समस्या है, काम की समस्या है। एक साम्यवादी शासनप्रणाली के मुखिया को बंदी बनाने के बाद उसके प्रासाद को देखा गया तो हीरे जड़े जूते मिले। इतनी मूल्यावान् वस्तुएं मिलीं, जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती। राजप्रासाद की उस सारी सामग्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को बांटा जाता तो शायद हजारों-हजारों परिवार तृप्त हो जाते। संग्रह और शोषण के विरोध में चलने वाली विचारधारा का नेतृत्व करने वाला स्वयं इतना परिग्रही ! इस का कारण क्या है ?

जीवन विज्ञान का सूत्र

हमने इस सचाई को क्यों नहीं पकड़ा, यह बड़ा आश्चर्य है और आश्चर्य नहीं भी है। जब तक अध्यात्म की एषणा नहीं करेंगे, उस पर गहरा चिन्तन नहीं करेंगे, तब तक इसको पकड़ा भी नहीं जा सकता और छोड़ा भी नहीं जा सकता। पर्यावरण के संदर्भ में कहा गया—पदार्थ सीमित है, उपभोक्ता ज्यादा है, इसलिए बांट-बांट कर खाओ। 'सबके लिए हो' यह अवधारणा राजनीति में प्राचीनकाल से चलती आ रही है। चाणक्य ने कहा—'अकेले मत खाओ, खाओ और खिलाओ।' इसे आज इस रूप में लिया जा रहा है—रिश्वत खाओ और खिलाओ। स्वयं रिश्वत लो और दूसरों को भी रिश्वत खाने दो। इसलिए ऊपर का अधिकारी, बीच का अधिकारी और नीचे का अधिकारी—तीनों में मेल होता है। अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, पर्यावरण शास्त्र से जो अवधारणा अछूती रह गयी, वह है अध्यात्मशास्त्र की। उसे जब तक जोड़ा नहीं जायेगा, तब तक समाज स्वस्थ नहीं बनेगा। जीवन विज्ञान का वक्तव्य है—समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, सृष्टि विज्ञानशास्त्र—सब चलेंगे, किन्तु इन सबके साथ कामना के संयम की बात जोड़ दें, स्वस्थ समाज का आधार निर्मित हो जाएगा।

समाज की प्राणशक्ति

संयम समाज की प्राणशक्ति है। इस प्राणशक्ति को प्रतिष्ठित कैसे करें ? एक उपाय है शिक्षा। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी के मस्तिष्क में प्रारंभ से ही अहिंसा की चेतना जागृत की जाये। यह काम-संयम की चेतना अहिंसा की चेतना है। जितना काम का असंयम, उतनी हिंसा। जितना काम का असंयम, उतना आर्थिक अपराध। जड़ की बात है— काम संयम या अहिंसा की चेतना को जागृत करें और उसका सशक्त माध्यम है शिक्षा। प्रारंभ से ही विद्यार्थी के मस्तिष्क में यह धारणा बिठाएं— जो इच्छा पैदा होती है, उसे भोगो मत,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी काट-छांट करना सीखो। अनेक व्यक्ति अपनी कोठियों में हरी दूब लगाते हैं। दूब बढ़ती है तो उसकी काट-छांट करते हैं, जिससे वह बराबर मुलायम गद्दे जैसी बिछ जाए और सुन्दर लगे। यह आश्चर्य का विषय है— हम बाहर के सौन्दर्य की ओर बहुत ध्यान देते हैं और अन्तः सौंदर्य की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। जो भी इच्छा पैदा होती है, उसे भोग लेते है, उसकी काट-छांट करना नहीं जानते। जो इच्छा पैदा हो, उस पर तीन कोणों से विचार करें—

- क्या इसे पूरा करना अनिवार्य है ?
- क्या इसे पूरा करना आवश्यक है ?
- क्या यह मात्र लालसा है ?

पहली भूमिका है अनिवार्यता की; दूसरी भूमिका है आवश्यकता की और तीसरी भूमिका संयम की। प्रत्येक इच्छा का इन तीनों भूमिकाओं के संदर्भ में विश्लेषण करें।

योजनाएं असफल क्यों होती हैं

हमारी सारी योजनाएं असफल क्यों होती हैं ? असफल बनाने वाला एक कालचक्र है और वह है कामचक्र। इसका परिष्कार करें। विद्यार्थी के मस्तिष्क में संयम की चेतना को जागृत करें। अगर कामचक्र का संयम नहीं किया जा सकता तो कोई भी संन्यासी न बनता, त्यागी न बनता। सामाजिक जीवन में भी अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं कि अमुक व्यक्ति ने अपना सर्वस्व त्याग दिया। आज भी मिलते हैं, किन्तु कम मिलते हैं। इस भावना और प्रेरणा को व्यापक बनाने के लिए शिक्षा के साथ इसे जोड़ना जरूरी है। ऐसा नहीं सोचा जा सकता कि इससे सब व्यक्ति ठीक हो जाएंगे, सारा समाज ठीक हो जायेगा। सब की बात अभी न सोचें। किन्तु इतना अवश्य है कि शिक्षा के साथ यदि काम नियंत्रण की चेतना या अहिंसा की चेतना को जागृत करने की प्रविधियां जोड़ी जाएं तो पचास प्रतिशत से ज्यादा ठीक हो जायेगा, यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है। मनुष्य इतना विचित्र है और तर्कशास्त्र की भाषा में कहें तो क्षयोपशम का तारतम्य, योग्यता का तारतम्य इतना विचित्र है कि सबको ठीक करना भगवान् के लिए भी संभव नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनकी मस्तिष्कीय चेतना विकसित ही नहीं है, वे कैसे ठीक हो जाएंगे ? जिनकी कामना इतनी ज्यादा प्रबल है कि कोई दवा काम नहीं करती, वे कैसे ठीक हो जाएंगे ? किन्तु यदि आधे लोग भी ठीक होते हैं तो समाज के स्वस्थ होने की कांफी संभावनाएं हैं।

वीतरागी बनाने की बात न सोचें

स्वस्थ्य का लक्षण यह नहीं है कि सब कुछ ठीक रहे। हमारा शरीर ऐसा है कि कहीं न कहीं, कुछ न कुछ गड़बड़ चलती ही रहती है। यदि पाचनतंत्र, उत्सर्जनतंत्र, श्वासतंत्र ठीक काम कर रहे हैं तो मानना चाहिए—व्यक्ति स्वस्थ है। वैसे ही समाज में कामना की प्रबलता से होने वाली हिंसा और आर्थिक अपराध अगर रुक जाते हैं, कम हो जाते हैं तो समझें—समाज स्वस्थ बन गया। समाज को वीतरागी बनाने की बात न सोचें। समाज को पूर्णतः अहिंसक बनाने की बात न सोचें। अहिंसक होने का मतलब सिर्फ इतना ही है कि सामाजिक व्यक्ति अनावश्यक हिंसा नहीं करता। इतना हो जाए तो काफी परिवर्तन आ सकता है। इस चेतना को जगाया जा सकता है और उसे जगाने की पद्धति है जीवन विज्ञान। उसके द्वारा मस्तिष्क को प्रशिक्षित किया जा सकता है, बदला जा सकता है। यह असंभव कल्पना नहीं है। सर्कस के जानवरों को देखें—वे कैसे मनुष्यों जैसे करतब कर लेते हैं। मनो वैज्ञानिकों ने पशुओं के मस्तिष्क पर इलेक्ट्रोड लगा कर परीक्षण किया। इलेक्ट्रोड के प्रभाव से आश्यचर्यजनक मस्तिष्कीय परिवर्तन देखे गए। एक शेर के सिर पर इलैक्ट्रोड लगाया तो वह इतना डर गया कि दुबक कर एक कोने में जा बैठा अैर खरगोश के सिर पर दूसरी तरह का इलेक्ट्रोड लगाया गया तो वह इतना आक्रामक हो गया कि बार-बार शेर पर झपटने लगा। यह मस्तिष्कीय परिवर्तन है—अभय के बिन्दु पर इलेक्ट्रोड लगाते ही चूहा भी बिल्ली की ओर आक्रामक होकर दौड़ पड़ता है। काफी प्रयोग इस प्रकार के हुए हैं, हो रहे हैं।

रहस्यपूर्ण विधि

जब भय के बिन्दु को जागृत किया जा सकता है, अभय के बिन्दु को जागृत किया जा सकता है तो क्या कामना के बिन्दु पर हम साधना के द्वारा नियंत्रण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं पा सकते। ऐसी विधियां खोजी गई हैं, और भी खोजी जा सकती हैं, जिससे काम नियंत्रित हो जाए। स्वस्थ समाज रचना का आर्थिक अपराध को कम करने का और बढ़ती हुई हिंसा की गति को रोकने का एक संकल्प जीवन विज्ञान प्रस्तुत करता है और वह शिक्षा द्वारा कामकेन्द्र पर नियंत्रण करना। जीवन विज्ञान ने उन विधियों को प्रस्तुत किया है, जिनसे चेतना को गोनाड्‌ और एड्रीनल ग्रंथियों से हटा कर पिट्यूटरी और पीनियल ग्लैण्ड के परिपार्श्व में ले जाएं और वहां स्थापित करें। इससे समाज स्वस्थ बनेगा, व्यक्ति स्वस्थ बनेगा और अपराध कम होंगे। इस समस्त रहस्यपूर्ण विधि का मूल्यांकन करें, उसे अपनाएं, शिक्षा के साथ जोड़ें, स्वस्थ समाज का सपना एक दिन सच बन जाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन विज्ञान के प्रयोग

समाधि की तीन बाधाएं हैं—आधि, व्याधि और उपाधि। आधि और व्याधि—ये हमारे बाह्य जगत् के कारक तत्त्व हैं। किन्तु उपाधि हमारे अन्तर्जगत् का तत्त्व है और वहीं से हमारा संचालन होता है। आज की समस्या यह है—धर्म का क्षेत्र हो, शिक्षा अथवा चिकित्सा का क्षेत्र, हम बाह्य जगत् तक पहुंचते हैं, उसके आगे जो भाव का जगत् है, वहां हम प्रवेश नहीं करते। वहां प्रवेश किये बिना समाधि नहीं मिलती, समस्या का समाधान नहीं होता। आज यह कहावत चरितार्थ हो रही है—मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की। चिकित्सा के क्षेत्र में हास्पिटल बढ़ते जा रहे हैं, डॉक्टर बढ़ते जा रहे हैं, औषधियां बढ़ती जा रही हैं और बीमारियां भी बढ़ती ही जा रही हैं। कारण एक ही है कि मूल का स्पर्श नहीं हुआ है और जब तक मूल को नहीं छुआ जायेगा, यह सिलसिला चलता रहेगा। मूल बात को पकड़ें कि भाव का परिष्कार कैसे करें ?

भाव परिष्कार की कल्पना

जीवन विज्ञान की सारी कल्पना भाव-परिष्कार की कल्पना है। प्रेक्षाध्यान के शिविरों से हमें अनुभव मिला—आदमी बदलता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि आदमी बदलता नहीं है। राजस्थानी का प्रसिद्ध दोहा है—

जाकां पड़्या सभाव, जासी जीव सूं।
नीम न मीठो होय, सींचों गुड़-घीव स्यूं।।

जिसका जो स्वभाव हो गया, वह बदलेगा नहीं। नीम को चाहे गुड़ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घी से सींचो, वह कभी मीठा नहीं होगा।

आज के वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों से दुनिया को बहुत बदल दिया है। अमरूद को बिना बीज का बना दिया। उसके रंग बदल दिये, उसमें सुगंध भी पैदा कर दी। कलम करके न जाने कितने फलों और अनाजों की नस्लों को बदल दिया गया। जब इतना सब कुछ हो रहा है तो हम क्यों मानें कि आदमी नहीं बदल सकता। हमारा चिन्तन यह है—यदि अध्यात्म, योग और धर्म के द्वारा व्यक्तित्व का रूपान्तरण नहीं होता है तो इन तीनों को गंगा-यमुना में विसर्जित कर देना चाहिए। फिर इनका कोई उपयोग नहीं है।

प्रेक्षाध्यान शिविरों का यह अनुभव रहा—बड़े क्रोधी और गुस्सैल लोग दस दिन के बाद लौट कर जब घर जाते हैं तो घर वाले आश्चर्य करते हैं कि यह कायापलट कैसे हो गया ? जब इतना परिवर्तन सामने आया, अनेक आश्चर्यजनक घटनाएं सामने आयीं तब पूज्य गुरुदेव के मन में एक बात आई। आपने कहा—'हम लोग बड़े लोगों पर प्रयोग करते हैं। देश के दूर-दराज इलाकों में शिविर लगते हैं। अब तो देश के बाहर इंग्लैण्ड और अमेरिका में भी शिविर लगने लगे हैं। क्यों नहीं हम विद्यार्थियों पर इसका प्रयोग शुरू करें। पक्के घड़े को ठीक कर रहे हैं, उसकी अपेक्षा कच्चे पात्र को हम मनचाहे ढंग से क्यों न गढ़ें। इस कल्पना और उद्देश्य से जीवन विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। निश्चय किया गया—इस प्रयोग को शिक्षा के साथ जोड़ें।

पुस्तकों का बोझ बढ़ाने से क्या होगा ?

विद्यार्थियों पर प्रयोग शुरू हुए। समस्या यह थी—प्रयोग कौन कराए ? विद्यार्थी बदल सकता है, उसका जीवन-निर्माण हो सकता है, पर प्रयोग कराए कौन ? उन दिनों राजस्थान के शिक्षा मंत्री थे चन्दनमल जी बैद। उन्होंने घोषणा की—राजस्थान में हम नैतिक शिक्षा लागू करेंगे। पूज्य गुरुदेव का जयपुर में आगमन हुआ। हमने शिक्षामंत्रीजी से कहा—आपने नैतिक शिक्षा को लागू करने की घोषणा कर दी। यह पुस्तकों के द्वारा पढ़ा दी जायेगी। पहले भी विद्यार्थी पर पुस्तकों का बोझ कुछ कम नहीं था, अब कुछ और बढ़ जायेगा। हम तो यह चाहते हैं—पुस्तकों का भार कुछ कम हो। यह जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तकाधारित शिक्षा चल रही है और कच्चे दिमाग पर इतना भार बढ़ रहा है, अच्छा तो बिल्कुल नहीं है। एक-दो पुस्तकों का भार और बढ़ जायेगा, इससे होगा क्या ? चन्दनमल जी बैद ने कहा—हम और क्या कर सकते हैं ? गुरुदेव ने कहा—कुछ चिन्तन करो।

गलत नहीं, अपर्याप्त है

शिक्षा मंत्री ने पूरे मंत्रालय की एक संगोष्ठी बुलाई। सचिव, अपर सचिव, शिक्षाधिकारी, यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर आदि-आदि जितने भी शिक्षा से संबद्ध लोग थे, वे सब उसमें सम्मिलित हुए। पूज्य गुरुदेव ने कहा—'वर्तमान की जो शिक्षा चल रही है, उस प्रणाली को आप गलत बता रहे हैं, और भी लोग इसे गलत बता रहे हैं। मैं ऐसा नहीं मानता। मैं मानता हूं कि शिक्षाप्रणाली गलत नहीं है, बल्कि अपर्याप्त है। अगर शिक्षा प्रणाली गलत है तो इतने अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक कैसे आ रहे हैं ? वर्तमान में जो शिक्षा प्रणाली चल रही है, उसी से तो आ रहे हैं। यह अपर्याप्त इस अर्थ में है कि इससे जो अपेक्षा की जा रही है, वह पूरी नहीं हो रही है।' आप चाहते हैं चरित्र का विकास हो, नैतिकता, प्रामाणिकता, अनुशासन, ईमानदारी, दायित्वबोध, कर्तव्यबोध की भावना विद्यार्थी में जागे। इन्हें उत्पन्न करने वाले तत्त्व शिक्षा में ही नहीं हैं और आप अपेक्षा करते हैं ऐसे संस्कारों की। बीज बोया जा रहा है बबूल का और अपेक्षा आम के फल की की जा रही है। कैसे संभव होगा ?

विद्यालयों का चुनाव

तत्कालीन शिक्षा सचिव के. के. भटनागर बोले—'आचार्यश्री ! आज पहली बार हमने यह बात सुनी है। आपने तो हमें एक नयी दृष्टि दे दी। आप इस अधूरेपन को भरने का मार्ग सुझाएं। हमने मार्ग सुझाया—सबसे पहले आप अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करें। हम उन्हें जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण देंगे फिर वे प्रशिक्षित अध्यापक अपने विद्यालय में विद्यार्थियों को प्रशिक्षण देंगे। शिक्षामंत्रालय ने अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था कर दी। अध्यापकों के शिविर लगने शुरू हुए। एक शिविर में सैकड़ों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यापकों ने प्रशिक्षण लिया। कुछ रिसोर्स पर्सन भी तैयार हुए। फिर कुछ विद्यालयों को चुना गया। प्रथम बार में कुल बारह विद्यालयों को चुना गया। वहां जीवन विज्ञान के प्रयोग शुरू हुए। एक वर्ष के बाद जो परिणाम आए, वे आश्चर्यजनक थे। कोटा-भीलवाड़ा आदि कई नगरों के परिणाम देखकर ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित स्कूलों से भी मांग आयी—ये प्रयोग हमारे यहां भी कराए जाएं।

बम्बई का एक उपनगर है ठाणा। वहां एक स्कूल में जीवन विज्ञान का प्रयोग कराया गया। उसके निकट के मिशनरी स्कूल के लोगों ने उसे ध्यान से देखा। उन्होंने आग्रह किया—आप हमारे स्कूल में भी ऐसे प्रयोग कराएं।

विद्यार्थियों के अनुभव

पूज्य गुरुदेव उदयपुर पधारे। गुरुगोविन्द सिंह विद्यालय में जीवन विज्ञान का प्रयोग चला। वहां के प्रिंसिपल नियाज बेग ने अनुरोध किया—आप स्वयं चलकर हमारे विद्यालय में जीवन विज्ञान के प्रयोग को देखें। हम गए, वहां देखा। प्रयोग के बाद हमने विद्यार्थियों से बात की, उनके अनुभव सुने। अनेक विद्यार्थियों ने कहा—'पहले हमें गुस्सा बहुत आता था, इस प्रयोग के बाद गुस्सा आना अब बिल्कुल बन्द हो गया है। कुछ विद्यार्थियों ने कहा—पहले पढ़ाई में हमारा मन बिल्कुल नहीं लगता था, अब पढ़ाई में मन लग रहा है। हमारी एकाग्रता बढ़ गई है और अब हम विषय को अच्छी तरह पकड़ रहे हैं। प्रिंसिपल नियाज बेग ने कहा—'हमारे विद्यालय में अनुशासनप्रियता बढ़ी है।' उनके अनुभवों ने हमें और उत्साहित किया।

आश्चर्य अभिभावकों का

बीकानेर में जीवन विज्ञान के प्रयोग चले। तुलसी अध्यात्म नीडम् के निदेशक और राजस्थान सरकार के शिक्षाधिकारी दोनों निरीक्षण के लिए गए। प्रिंसिपल से पूछा—आपके विद्यालय में कैसा रहा यह प्रयोग ? उन्होंने कहा—पहले हमने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। क्योंकि सरकार कोई न कोई योजना लागू करती ही रहती है। किस-किस पर ध्यान दें हम ? इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोग में भी हमने कोई रुचि नहीं दिखाई। किन्तु आपके द्वारा प्रशिक्षित एक शिक्षक ने बड़े मनोयोग से इन प्रयोगों में रुचि ली। उनके प्रयत्नों से जो परिणाम आया, वह विस्मयकारी है। हमारा ध्यान इस ओर तब गया, जब कुछ छात्रों के अभिभावक हमारे पास आए और उन्होंने पूछा— आजकल आप हमारे लड़के को क्या पढ़ा रहे हैं ? प्रतिदिन घर पहुंचने से पहले उनकी शिकायतें हमारे पास पहुंचती थीं, किन्तु एक-दो महीनों में उनकी एक भी शिकायत हमारे पास नहीं आयी है। तब हमारा ध्यान इस प्रयोग की ओर गया। हमें लगा—यह तो बहुत परिवर्तनकारी प्रयोग है। हमने उन अभिभावकों को जीवन विज्ञान के प्रयोगों के बारे में बताया।

यदि मेरे अधिकार में होता…

ब्यावर में एक जैन गुरुकुल है। वहां जीवन विज्ञान के प्रयोग चलते थे। प्रिंसिपल ईसाई हैं। हमने उनसे पूछा—आपके स्कूल में इन प्रयोगों का क्या परिणाम रहा ? उन्होंने कहा—'आप क्या पूछते हैं ? इन प्रयोगों ने तो हमारे स्कूल का सारा वातावरण ही बदल दिया। अगर मेरे अधिकार में होता तो मैं आज से ही इसे पूरे राजस्थान में अनिवार्य कर देता।'

मेरा भला हो गया

जहां-जहां ये प्रयोग शुरू हुए, एक भी स्थान से यह रिपोर्ट नहीं मिली कि ये प्रयोग निरर्थक हैं, इनके कोई परिणाम नहीं आए। हर जगह से यही रिपोर्ट मिली—न केवल विद्यार्थियों में परिवर्तन आया, बल्कि अभिभावकों में भी परिवर्तन आया, अध्यापकों में भी परिवर्तन आया।

पूज्य गुरुदेव जैन विश्व भारती के प्रागंण में विराज रहे थे। अध्यापकों का प्रशिक्षण शिविर संपन्न हुआ। अध्यापक अपना अनुभव सुना रहे थे। एक अध्यापक बोला—'गुरुदेव ! विद्यार्थियों का भला कब होगा, मैं नहीं जानता, मेरा भला तो हो गया। मैं नशा बहुत करता था। बीड़ी, सिगरेट ही नहीं पीता था, सब प्रकार के नशे का आदी था। किन्तु वह सब अब छूट गया है, मेरा कल्याण हो गया है।

अध्यापकों के शिविर बहुत सफल रहे। नागोर जिले में प्रशिक्षण अभियान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत सघन रूप में चला, वहां अध्यापकों ने बड़ी संख्या में जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण लिया।

यह वही है

नागौर जिले के पर्वतसर के पास नावा गांव है। एक दिन जिला शिक्षा अधिकारी विद्यालय के अचानक निरीक्षण के लिए पहुंचे। वे कुछ विलम्ब से आए। प्रिंसिपल ने कहा—विद्यालय में तो छुट्टी हो चुकी है, किन्तु यहां जीवन विज्ञान का एक प्रयोग चलता है विद्यार्थियों के लिए। आप चाहें तो उसे देख सकते हैं। अधिकारी ने उस प्रयोग को देखना चाहा। प्रिंसिपल के साथ प्रयोग-स्थल पर आए। तीस-चालीस छात्रों को एक अध्यापक प्रयोग करवा रहे थे। शिक्षा अधिकारी उस अध्यापक की प्रयोग पद्धति से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने प्रिंसिपल से उस अध्यापक की बड़ी प्रशंसा की। प्रिंसिपल ने कहा—'आप जिसकी तारीफ कर रहे हैं, यह हमारे विद्यालय का सबसे उद्दण्ड अध्यापक था। जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण लेने के बाद यह बहुत अच्छा अध्यापक बन गया है, लेकिन किसी समय हमें सबसे ज्यादा सतानेवाला अध्यापक यही था। नाम इसका नहूं खां है।

बोकारो में

बोकारो के स्कूलों में यह प्रयोग शुरू हुआ। वहां के योगाचार्य पाण्डेजी जैन विश्व भारती आए। उन्होंने जीवन विज्ञान के बारे में समुचित जानकारी ली। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—'यह तो बहुत अच्छा प्रयोग है। मैं बोकारों में इसे कई स्थानों पर शुरू करूंगा। वहां जाकर उन्होंने प्रयोग शुरू कराए। उन प्रयोगों की इतनी सुगंध फैली कि आज चालीस स्कूलों में जीवन विज्ञान के प्रयोग चल रहे हैं। सात हजार विद्यार्थी इस प्रशिक्षण में भाग ले रहे हैं। जीवन विज्ञान के सन्दर्भ में उन्होंने एक आयोजन भी किया, जिसमें बीस हजार अभिभावकों ने भाग लिया।

बदलने का बिन्दु

ऐसी कितनी ही घटनाएं हैं। उन सब घटनाओं और अनुभवों को बताना संभव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। मूल सिद्धान्त को समझना है कि आदमी बदलता कैसे है ? बदलने का बिन्दु कौन-सा है ? जब तक हम रूपान्तरण के बिन्दु को नहीं पकड़ेंगे, तब तक कितनी ही नैतिक शिक्षा की बात करें, सार्थकता नहीं होगी। बदलने का बिन्दु है हमारा मस्तिष्क। वहां जब तक हम नहीं पहुंचेंगे, परिवर्तन नहीं होगा। बहुत बार लोग नैतिकता, धर्म, अध्यात्म की चर्चा सुनते हैं, सेमिनारों, कान्फ्रेन्सों में भाग लेते हैं, किन्तु वहां सिर्फ भाषायुक्त शिक्षा दी जाती है, केवल वाङ्मय होता है। जो शिक्षा केवल वाणी के द्वारा ही दी जाती है, उसका कुछ इंप्रेशन भी होता है, मस्तिष्क में भी वह जाती है, किन्तु उसका प्रभाव अस्थायी होता है। अगर वाणी का असर ज्यादा होता तो आज सारे धार्मिक जगत् का कायापलट हो जाता, सब बदल जाते किन्तु बदलते नहीं हैं। शिकायत यही है कि इतना सुनते हैं किन्तु कुछ भी असर नहीं होता।

परिवर्तन की प्रक्रिया

बदलाव क्यों नहीं आता ? इनके हेतु को अध्यात्म के आचार्यों ने दो-तीन हजार वर्ष पहले पकड़ लिया था। महावीर ने कहा—**सवणे, नाणे, विन्नाणे, पच्चक्खाणे'**—पहले सुनें, फिर ज्ञान होता है, फिर विवेक की चेतना जागती है, फिर प्रत्याख्यान होता है। हेय को छोड़ना, उपादेय को स्वीकार करना और उपेक्षणीय की उपेक्षा करना संभव होता है। पूरी प्रक्रिया से चलें। उपनिषद् का सूत्र है—श्रवण, मनन और निदिध्यासन। कोरा सुनने, पढ़ने से अधूरा काम होता है। श्रवण के बाद मनन चले। मनन से भी पूरा काम नहीं होता। उसके बाद निध्यासन चले, अनुशीलन और अभ्यास चले। एक बात सुन ली। मात्र सुनने से परिणाम नहीं आयेगा। उसका अभ्यास करें। दीर्घकाल तक और निरन्तर वह अभ्यास चले, तब संस्कार का निर्माण होगा।

समस्या चरित्र की

एक भाई ने कहा—महाराज ! मन बड़ा चंचल और बेचैन है, कोई उपाय बताए ? अभी तो मैं जा रहा हूं। मैंने कहा—'तुम अगर कोई बौद्धिक प्रश्न पूछते तो दो मिनट में उत्तर दे देता। किन्तु प्रश्न है भीतर का और उसका उत्तर तुम चाहते हो दो मिनट में। मेरे बताने से भी कुछ नहीं होगा। इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए तुम कम से कम दस दिन यहां रहो, अभ्यास करो, फिर तुम्हारी समस्या का अपने आप समाधान हो जायेगा।'

शिक्षा जगत् में आज मात्र बौद्धिक क्रिया चल रही है। बुद्धि चिन्तन की शक्ति का विकास करती है। फिजिक्स, कैमिस्ट्री, बायोलाजी आदि में प्रैक्टिकल अनिवार्य है, उसमें कोरा बौद्धिक विलास काम नहीं देता। यह आर्ट फैकल्टी ही ऐसा अंग है, जो केवल बुद्धि पर आधारित है। एक वैज्ञानिक प्रयोग करके अपने विषय का निष्णात बन जायेगा किन्तु चरित्र की समस्या तो उसके सामने भी रहेगी।

आत्महत्याएं क्यों ?

पूज्य गुरुदेव दिल्ली (सन् १९८७) में थे। डॉ॰ दौलतसिंहजी कोठारी चार-पांच फिजिक्स के प्रोफेसरों के साथ दर्शन करने आए। उन्हीं दिनों पूसा यूनिवर्सिटी के एक वैज्ञानिक ने आत्महत्या कर ली। समस्या थी पदोन्नति की। बातचीत के दौरान मैंने कहा—इतना बड़ा वैज्ञानिक, इतनी प्रखर बौद्धिक, वह मामूली सी बात को लेकर आत्महत्या जैसा कदम उठा लेता है, यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है ? डॉ॰ कोठारी एक सुलझे हुए विद्वान् थे। वे बोले—'महाराज ! उन्हें अहिंसा का प्रशिक्षण नहीं मिला था। वह मिला होता तो इस हद तक न जाते, आज अनेक डॉक्टर बड़ी-बड़ी बीमारियों से ग्रस्त हैं। दूसरों का इलाज कर रहे हैं और स्वयं बीमार हैं। टेंशन इतना है कि कभी-कभी वे भी आत्महत्या कर लेते हैं।

अनुभव श्रीमती इंदिरा गांधी का

हमारा एक पक्ष है चरित्र का पक्ष। इसे हम मानसिक शान्ति का पक्ष कहें या अहिंसा का पक्ष, एक ही बात है। इसकी विद्या की हर शाखा के साथ अनिवार्यता है। जीवन विज्ञान का प्रायोगिक पक्ष यह रहा—विद्या की प्रत्येक शाखा के साथ मन की शान्ति, अहिंसा या चरित्र निर्माण का पक्ष जुड़ना चाहिए। क्योंकि यह हर क्षेत्र के व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है।

अध्यात्म साधना केन्द्र में पूज्य गुरुदेव विराज रहे थे। श्रीमती इन्दिरा गांधी दर्शन करने आयीं। उस समय वे प्रधानमंत्री नहीं थीं। जनता पार्टी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का शासन था। लम्बी बातचीत चली। उदास और तनावग्रस्त देखकर पूज्य गुरुदेव ने उनसे कहा–'आपको प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करना चाहिए।' उन्हें कुछ प्रयोग भी बताए गए। उसके बाद इन्दिरा जी ने हमें कुछ नहीं बताया, किन्तु पुपुल जयकर को सारी बातें बताईं। पुपुल जयकर ने इन्दिरा गांधी के जीवन के बारे में जो पुस्तक लिखी, उसमें लिखा है–इन्दिराजी ने मुझे बताया कि मैं आचार्य तुलसी के पास गई। वहां ध्यान के कुछ प्रयोग सीखे, उनसे मुझे काफी शान्ति मिली। उन दिनों संजय जेल में था। मैं तनाव में थी किन्तु आचार्य तुलसी से मिलने के बाद मैंने बड़ी शान्ति अनुभव की।'

सामान्यीकरण करें

एक नहीं, अनगिनत अनुभव हैं सबकी सचाई एक ही है। जीवन विज्ञान कला भी है और विज्ञान भी है। यह जीने की कला है, जीने का विज्ञान है। विज्ञान इस अर्थ में है कि इसमें वैज्ञानिक सत्यों का प्रतिपादन है। जीने की कला हर व्यक्ति को सीखनी चाहिए, चाहे वह विद्या की किसी भी शाखा में जाए। इसका विशिष्टीकरण नहीं, बल्कि सामान्यीकरण करना होगा। जो शान्ति से जीना चाहता है और अहिंसा के साथ जीना चाहता है, उसे जीवन विज्ञान अपनाना ही होगा। आज सबसे बड़ी समस्या हिंसा की है। हिंसा का आशय केवल मारकाट से ही नहीं है। हर क्षेत्र में हिंसा व्याप्त है और उस हिंसा के स्फुलिंग नाना रूपों में सामने आ रहे हैं। यही कारण है कि सीमा सुरक्षा के लिए सरकार जितनी चिंतित है, उसे कहीं ज्यादा आन्तरिक सुरक्षा के लिए चिन्ता है। इसका अगर कोई दीर्घकालीन नीतिगत उपाय नहीं सोचा गया तो एक दिन जंगल और नगर में कोई अन्तर दिखाई नहीं देगा। जंगली कानून नगर में भी लागू हो जायेगा। हिंस्र पशु और मनुष्य में फिर शायद अन्तर नहीं रहेगा। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने एनीमल ब्रेन को निष्क्रिय बनाएं और नियोकार्टेक्स या रीजनिंग माइण्ड को अधिक जागृत और सक्रिय बनाएं, जिससे कि हम हिंसा को कम कर सकें। अगर शिक्षातंत्र के अधिकारियां ने इस सचाई को नहीं समझा तो इक्कीसवीं शताब्दी का युवक अवश्य यह कहेगा– हमारे पूर्वज बहुत समझदार नहीं थे। उन्होंने हमारे साथ, भावी पीढ़ी के साथ न्याय नहीं किया। यह बड़ा गम्भीर प्रश्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और इस पर उतनी ही गम्भीरता से विचार करना चाहिए। पूज्य गुरुदेव ने इन दिनों अनेक विशिष्ट राजनेताओं का ध्यान इस समस्या की ओर आकृष्ट किया—आप लोग अनेक विषयों को लोकसभा में गम्भीरता से उठाते हैं, तो क्या यह प्रश्न गम्भीर नहीं है ? सबका एक ही स्वर था—आप काम शुरू करें, हम आपके साथ हैं।'

अगर ऐसा कुछ चरित्र-विकास का अभिक्रम चले तो भावी पीढ़ी के साथ न्याय होगा समाज में उच्छृंखलता, अराजकता की जो स्थिति है, वह समाप्त होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नया मानव : नया विश्व

बिन्दु और सिंधु का सम्बन्ध बहुत पुराना है। पिण्ड और ब्राह्मण्ड का सम्बन्ध भी दर्शन जगत् में प्रचलित रहा है। दार्शनिक भाषा को छोड़ें तो बहुत सीधा शब्द है मानव और विश्व। विश्व में केवल एक मानव नहीं है, मानव भी है, प्राणीजगत् और जड़जगत् भी है। इन सबका समुच्चय विश्व है।

आंतरिक सम्बन्ध

प्रत्येक मानव का सम्बन्ध विश्व के साथ है। एक मानव को समझना है तो पूरे विश्व को समझना जरूरी है और पूरे विश्व की व्याख्या करनी है तो मानव को समझना जरूरी है। इनमें इतना आन्तरिक सम्बन्ध और अन्तःक्रिया है कि एक को छोड़कर हम दूसरे की व्याख्या नहीं कर सकते। परमाणु की व्याख्या करनी है, उसे समझना है तो पूरे विश्व को समझना जरूरी है। महावीर ने कहा था—'**जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ।' जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ**' जो एक को जानता है वह सबको जानता है और जो सबको जानता है, वह एक को जानता है। सबको जाने बिना एक को जाना नहीं जा सकता। बाहर से सब पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं किन्तु अन्तर्जगत् में सब परस्पर जुड़े हुए हैं। मेरे हाथ में एक कपड़ा है। यह कपड़ा इतना छोटा है, किन्तु पूरे विश्व के साथ जुड़ा हुआ है। इसके साथ एक आकाश प्रदेश जुड़ा हुआ है, उससे दूसरा और फिर तीसरा जुड़ा हुआ है। एक पूरी श्रृंखला है हमारे जुड़ाव की। इस कपड़े में कंपन होता है—इसका मतलब पूरे विश्व में कंपन होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समीचीन व्याख्या

दर्शन जगत् में दो विचारधाराएं चलीं—अद्वैत और द्वैत की। द्वैत ने माना—दो तत्त्व हैं—चेतन और अचेतन। जड़ जगत् भी स्वतंत्र है और चेतन जगत् भी स्वतंत्र है। अद्वैतवाद ने स्वीकार किया— एक ही जगत् है चेतन। जड़ तत्त्व का अस्तित्व नहीं है। वस्तुतः द्वैत और अद्वैत को पृथक् नहीं किया जा सकता। अनेकान्तवाद ने दोनों को एक साथ देखा है इसीलिए मानव की समीचीन व्याख्या हुई है, विश्व की समीचीन व्याख्या हुई है। हम अपनी सुविधा के लिए, मानव और विश्व को समाचीन बनाने के लिए, आचार और व्यवहार को समीचीन बनाने के लिए मानव की व्याख्या करें तो उसका अर्थ होगा वैयक्तिक चेतना का विकास। विश्व की व्याख्या करें तो उसका अर्थ होगा—सामुदायिक चेतना का विकास।

चेतना के दो आयाम

प्रत्येक मनुष्य की चेतना को दो आयाम चाहिए। अणुव्रत वैयक्तिक चेतना के विकास का सूत्र है। जब वैयक्तिक चेतना का विकास नहीं होता है, तब तक सामुदायिक चेतना के विकास की पृष्ठभूमि में छलना-प्रवंचना चलती है, धोखा चलता है, अनेक समस्याएं पैदा होती हैं।

राजनीतिक प्रणालियों ने समाजवाद और साम्यवाद के विकास का प्रयास किया। भावना गलत नहीं थी, बहुत उदात्त और करुणापूर्ण थी किन्तु एक बात को भुला दिया। सामुदायिक विकास की चेतना का प्रयत्न किया, किन्तु उसकी पृष्ठभूमि में जो वैयक्तिक चेतना है, उसको भुला दिया। परिणाम यह हुआ—जो पवित्रता आनी चाहिए थी, वह नहीं आयी। छलना पनपती रही और उस छलना ने सामुदायिक चेतना को भी ग्रस लिया।

अणुव्रत की आचार संहिता

वैयक्तिक चेतना का विकास बहुत आवश्यक है। अणुव्रत की आचार सहिंता, वैयक्ति चेतना के विकास की आचार संहिता है। कहा जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—अणुव्रत का प्रयत्न सामाजिक चेतना को जगाने का प्रयत्न नहीं है। पश्चिम की ओर से बहुत बार यह स्वर आता है कि हम लोग सामाजिक दिशा में काम कर रहे हैं और आप लोग वैयक्तिक दिशा में काम कर रहे हैं। इस तरह एक-एक व्यक्ति को कब तक ठीक किया जा सकेगा ? पांच-छह अरब आदमी हैं दुनिया में। सामुदायिक चेतना जाग जाए तो पूरा समाज एक झटके में ठीक हो जायेगा। कल्पना बहुत अच्छी है किन्तु जब तक वैयक्तिक चेतना की पवित्रता का आधार नहीं मिलेगा, समाज-चेतना जग नहीं पाएगी।

समाज-चेतना का परिणाम

राजा ने मंत्री से कहा—एक आदेश प्रसारित करो—राज्य का प्रत्येक नागरिक आज रात्रि में एक-एक लोटा दूध खाली तालाब में डाले। प्रातःकाल हम तालाब को लबालब दूध से भरा हुआ देखना चाहते हैं। मंत्री ने राजाज्ञा प्रसारित कर दी। प्रातः राजा तालाब देखने गया। तालाब पूरा भरा था, दूध से नहीं, पानी से। सब के मन में एक ही बात आयी— इतने लोग दूध डालेंगे, मैं एक लोटा पानी डाल दूंगा तो क्या फर्क पड़ेगा। इतने दूध में एक लोटा पानी का क्या अस्तित्व ? वह दूध में मिल जायेगा। एक ने सोचा, दूसरे ने सोचा, तीसरे ने सोचा और सब ने यही सोचा, वैसा ही किया। परिणाम था—तालाब दूध के स्थान पर पानी से भर गया।

वैयक्तिक चेतना जिस धरातल पर, जिस स्तर पर काम कर रही थी, उस स्तर का चिन्तन यही था—एक लोटा पानी इतने दूध में चल जायेगा। जिस स्तर की चेतना होती है, चिंतन भी उसी स्तर का होता है।

कहा जाता है— सुभोग नाम का चक्रवर्ती समुद्र के ऊपर से जा रहा था। उसके विमान को सोलह हजार देवता उठाए हुए ले जा रहे थे। एक देवता के मन में आया— इतने सारे लोग उठाए हुए हैं, एक मैं छोड़ दूं तो क्या फर्क पड़ेगा ? दूसरे ने भी यही सोचा, तीसरे ने भी यही सोचा। सामुदायिक चेतना का ऐसा जागरण हुआ कि सोलह हजार देवताओं ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही सोचा और सब ने एक साथ हाथ खींच लिया। विमान समुद्र में गिर गया।

आधारशिला है अणुव्रत

जब तक वैयक्तिक चेतना का आधार सामुदायिक चेतना को नहीं मिलता है, तब तक कल्पना नहीं की जा सकती—विश्व अच्छा बनेगा या मानव अच्छा बनेगा। अणुव्रत का आधार सूत्र रहा—वैयक्तिक चेतना को पवित्र बनाओ, उसका आधार ऐसा निर्मित करो, जिस पर सामुदायिक चेतना का प्रासाद खड़ा किया जा सके। प्रासाद बड़ा और मजबूत बनाना है, मल्टी स्टोरी बिल्डिंग बनानी है तो उसका आधार, उसकी नींव मजबूत बनानी होगी। मजबूत आधार के बिना कोरा प्रासाद खड़ा किया जाये तो प्रासाद खड़ा नहीं होगा और खड़ा भी हो जाएगा तो टिकेगा नहीं। अणुव्रत एक आधारशिला है, जिस पर सामुदायिकता का विकास किया जा सकता है।

सामुदायिकता का आधार

जिस समाज में अहिंसा की पृष्ठभमि नहीं है, वह समाज चल नहीं सकता। हम समाज के इतिहास को देखें। जब समाज का संगठन बना था तब अहिंसा की पृष्ठभूमि पर ही बना था। आदमी जंगल में रहता था। आदिम युग में उसका जीवन जंगली था। एक जोड़ा रहता, छोटा परिवार रहता, स्वतंत्र रहता। किन्तु जब जंगल छोड़ा, गांव बसाए, नगर बसाए तो एक समझौता हुआ। उस समझौते का नाम था परस्परता। तुम मुझे कष्ट नहीं दोगे, मैं तुम्हें कष्ट नहीं दूंगा। हम सब मिल कर रहेंगे, सहयोग के साथ रहेंगे, एक दूसरे को बाधा नहीं पहुंचाएंगे। इस समझौते के आधार पर समाज की रचना हुई।

वैयक्तिक चेतना का आधार

सामुदायिक चेतना का आधार है परस्परता और वैयक्तिक चेतना का आधार है संयम। ये दो ही तत्त्व हैं, जिन पर हमारा ध्यान केन्द्रित होना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। वैयक्तिक चेतना को पवित्र बनाना है तो संयम के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। अपनी इच्छा का संयम, अपनी वृत्ति का संयम, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, शरीर का संयम, आहार का संयम। यह संयम हमारी पवित्रता है। यदि संयम के आधार पर सामुदायिक चेतना का विकास किया जाये तो परस्परता का विकास होगा। जहां संयम के अभाव में परस्परता का प्रयत्न होता है, वहां समाज टूट जाता है। दो भाई हैं। संयम नहीं है तो एक भाई सोचेगा—अच्छा अवसर है। भाई तो आ नहीं रहा है। जितना हजम कर सकूं, अपने खाते में कर लूं। अधिकारी सोचेगा—कोई दूसरा देखने वाला नहीं है। धन सरकारी है, जनता का है, इसे अपना बनाया जा सकता है। इसी चिंतन के आधार पर गबन होता है , भ्रष्टाचार होता है, हेराफेरी होती है। कभी शेयर मार्केट में, कभी बैंकों में और कभी सरकारी खजाने में घोटाले हो जाते हैं। इसका कारण क्या है ? एक ही कारण है कि पवित्रता नहीं है, वैयक्तिक चेतना का विकास नहीं है। वैयक्तिक चेतना का विकास किये बिना, संयम का विकास किये बिना समाज कभी स्वस्थ नहीं रह सकता।

दूसरा प्रस्थान

प्रश्न यह है—वैयक्तिक चेतना पवित्र कैसे बने, उसका विकास कैसे हो ? संयम कैसे आए ? इच्छा बहुत बलवती है, उसका निरोध कैसे किया जाये ? इसके लिए हमें दूसरे प्रस्थान पर जाना होगा। संयम पहला प्रस्थान है और अभ्यास दूसरा प्रस्थान। अभ्यास के बिना संयम नहीं सधेगा, पवित्रता नहीं आयेगी। संयम को पुष्ट करने के लिए अभ्यास करना होगा। संयम को दुर्बल बनाने वाली हैं मन और वृत्तियों की चंचलता । हम ऐसा अभ्यास करें, जिससे मन की चंचलता कम हो, शरीर और वाणी की चंचलता भी अनावश्यक न हो, वृत्तियों का निरोध किया जा सके। प्रेक्षाध्यान की साधना व्यक्ति को इस भूमिका पर ले जाती है, संयम को पुष्ट करती है। प्रेक्षाध्यान की साधना चित्त की निर्मलता के लिए करें या संयम के लिए, एक ही बात है। जैसे-जैसे चित्त की निर्मलता बढ़ेगी, संयम बढ़ेगा। जैसे-जैसे संयम बढ़ेगा, चित्त की निर्मलता बढ़ेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गेहूं और रोटी

संयम को पुष्ट या परिपक्व करने का अभ्यास कच्चे माल को पक्का बनाने का उपक्रम है गेहूं को रोटी में बदलने का उपक्रम है। इस दृष्टि से अणुव्रत को हम गेहूं कह सकते हैं। उसे रोटी बनाए बिना कैसे खाएंगे ?

बहिन के घर भोज था। अनेक लोग आमंत्रित थे। सबको भोजन के लिए बैठाया गया। सजी हुई सुन्दर थालियां कपड़े से ढकी थीं। सबने कपड़े को हटा कर भोजन करना शुरू किया। भाई ने कपड़े को हटाया, देखा—थाली में मात्र गेहूं थे। भाई शर्मिन्दा होकर उठ गया। भाई ने बहिन से कहा—यह कैसा मजाक ? इतने लोगों में शर्मिन्दा होना पड़ा। बहिन ने कहा—'भइया ! मूल तो गेहूं ही है। भोजन तो इसी से बनता है ? भाई चुपचाप चला गया। दो-चार महीने बीते। बहिन के बेटे की शादी का अवसर था। भाई अनेक संदूकों में सामान भर कर लाया। बहिन बहुत खुश हुई। लोगों की उपस्थिति में लाया, उन्हें खोला गया। उनमें रुई ही रुई भरी हुई थी। बहिन की आंखें शर्म से नीचे झुक गईं। उसने भाई से कहा—'यह कैसा मजाक ?' भाई बोला— बहिन ! आखिर सारे कपड़े तो रुई से ही बनते हैं न ? मैंने भी तो मूल ही दिया है।'

किसे परोसें ?

जब तक रोटी न बने, गेहूं काम में नहीं आता। जब तक कपड़ा न बने, रुई भी काम की नहीं होती। गेहूं से रोटी बनाने की एक प्रक्रिया है। बिनाई, पिसाई, गुंथाई, फिर रोटी। अणुव्रत मूल आधार है संयम का। उसे परिपक्व या उपयोगी बनाने की जो प्रक्रिया है, साधना है, वह है प्रेक्षाध्यान। रोटी बन जाने के बाद फिर परोसने की बात आती है। प्रश्न है— किसको परोसें ? कुछ लोगों को ही क्यों परोसें ? खुला निमंत्रण क्यों न दें ? सबको निमंत्रित कर लिया, इतना व्यापक रूप दे दिया कि कोई भी आए। विद्यालय ही वह स्थान है, जहां हजारों की संख्या में छात्र पढ़ते हैं। छात्रों के जीवन विकास की दृष्टि से जीवन विज्ञान को प्रस्तुत किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैयक्तिक चेतना के सूत्र

जब आधारभूमि मजबूत बन जाती है, नींव और खम्भे मजबूत बन जाते हैं तब प्रासाद को खड़ा किया जा सकता है। जब वैयक्तिक चेतना पवित्र बनती है, तब सामुदायिक चेतना के विकास की बात आती है।

अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान—ये प्रारंभ में वैयक्तिक चेतना के सूत्र हैं किन्तु बाद में सामुदायिक चेतना के सूत्र बन जाते हैं। ये तीनों सध जाएंगे तो संवेदनशीलता जागेगी, करुणा जागेगी और परस्परता का सूत्र मजबूत बन जायेगा। हमारा परस्पर का व्यवहार ऋजुतापूर्ण, मृदुतापूर्ण और विनम्रतापूर्ण बन जायेगा। जिनका व्यवहार बड़ा विनम्र होता है, उनमें सामुदायिक चेतना जागृत रहती है। सामुदायिक चेतना के जागरण के बिना न समाजवाद सफल हो सकता है, न साम्यवाद सफल हो सकता है।

विनम्र व्यवहार का निदर्शन

पश्चिमी विचारक ट्रिपलिंग बहुत सधे हुए व्यक्ति थे। समाचारपत्र में छपा—ट्रिपलिंग की मृत्यु हो गई। ट्रिपलिंग ने पढ़ा—मेरी मृत्यु का समाचार छपा है। संपादक को पत्र लिखा—'आप बड़े प्रामाणिक व्यक्ति हैं। आपका सामाचार पत्र बहुत प्रतिष्ठित है। पूरी छानबीन के बाद ही किसी समाचार को प्रकाशित करता है। आपको सही सूचना मिली है तभी आपने ट्रिपलिंग की मृत्यु का समाचार छापा है। अब कृपया अपनी ग्राहक सूची से मेरा नाम काट दें, क्योंकि अब मैं इस दुनिया में नहीं हूं।' पत्र पढ़कर संपादक को बड़ी ग्लानि हुई। पत्र लिखने वाला कितना विनम्र था। गालियां नहीं बकीं, आक्रोश नहीं जताया, मुकद्दमा दायर करने की धमकी नहीं दी।

विश्वमानव

यह है वैयक्तिक चेतना की पवित्रता पर होने वाला विनम्र व्यवहार। जिस व्यक्ति में यह व्यवहार है, वह सामुदायिक चेतना को भी निश्चित रूप से प्रभावित करेगा। व्यवहार में ही विश्व है। एक में व्यवहार नहीं होता। जब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक से दो हुए तब हम विश्व के साथ जुड़ गए। जहां व्यक्ति की चर्चा करते हैं, वहां मानव और विश्व–यह रूप बनेगा और जहां सामुदायिक चेतना की चर्चा हो, वहां हमारा तार्किक आधार बदल जायेगा, भाषा का आकार बदल जायेगा और वह होगा विश्वमानव। विश्व पहले आ जायेगा और मानव बाद में। विश्वमानव हमारी सामुदायिक चेतना है। इस भूमिका पर कोई भी व्यक्ति अपने आपको पहले नहीं देखेगा। वह पहले विश्व को देखेगा, फिर आपने आपको देखेगा। किन्तु यह स्पष्ट है– यह हमारी परस्परता की भूमिका बन सकती है, व्यवस्था की भूमिका बन सकती है, किसी समाज या राजनीतिक प्रणाली की भूमिका बन सकती है, किन्तु हमारी पवित्रता की भूमिका नहीं बन सकती।

दूसरी भूल

विश्वमानव के आधार पर होने वाली प्रणाली तभी पवित्र रहेगी, जब उसकी पृष्ठभूमि में मानवीय चेतना या वैयक्तिक चेतना की भूमिका पवित्र बनी हुई है। इतिहास को देखें। जितनी को-ओपरेटिव सोसायटियां हुई हैं, उनका रेकार्ड अच्छा नहीं रहा है। वैयक्तिकता के पुट के बिना सामुदायिकता कभी चलती नहीं है। इसीलिए जहां साम्यवादी प्रणाली थी, वहां भी व्यक्तिगत स्वामित्व की स्वीकृति देनी ही पड़ी। सोवियत संघ ने अपने अंतिम दिनों में दी और चीन को भी देनी पड़ी। आंशिक ही सही, पर इस सचाई को स्वीकार करना पड़ा–वैयक्तिक स्वामित्व की स्वीकृति के बिना कम्यून की बात या सामुदायिक राष्ट्रीय संग्रह की बात आगे नहीं बढ़ती। यह अनुभव किया गया–जो पूंजीवाद राष्ट्र थे, वे आर्थिक क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ गए और समाजवादी पिछड़ गए। एक भूल हुई–वैयक्तिकता को सर्वथा नकार दिया गया और केवल सामुदायिकता को स्वीकार कर लिया गया। अब दूसरी भूल होने जा रही है–वैयक्तिकता को पवित्रता की भूमिका न देकर केवल उपभोक्ता की भूमिका पर विकसित किया जा रहा है। पूंजीवाद भी कितना टिक पायेगा, कहा नहीं जा सकता। इसकी भूमि भी लड़खड़ाती प्रतीत हो रही है। यह भी उतनी ही खतरनाक है। आप यह सोच सकते हैं–यह कैसी बातें कही जा रही हैं कि वैयक्तिकता की भूमि को भी खतरा है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामुदायिकता की भूमि को भी खतरा है, फिर आखिर जाएं कहां ? गति क्या होगी ? यह बात बिना सोचे नहीं कही जा रही है। हमारे पास उसका आधार है और वह है अनेकान्त।

तीसरी प्रजाति

अनेकान्त ने जो दर्शन दिया, वह विचित्र दर्शन हैं। उसे तीसरी प्रजाति कह सकते हैं। दर्शन की भाषा है—न नित्यवाद, न अनित्यवाद, किन्तु तीसरी प्रजाति—नित्यानित्यवाद। न वैयक्तिकता, न सामुदायिकता। किन्तु वैयक्तिकता+सामुदायिकता—वैयक्तिकतायुक्त सामुदायिकता और सामुदायिकतायुक्त वैयक्तिकता। इस आधार पर हम नये समाज की रचना की बात सोचें, नए समाज की रचना का संकल्प करें तो मुझे लगता है—हम सचाई के बहुत निकट पहुंच जाएंगे और एक दिन सचाई तक भी पहुंच जाएंगे।

अनेकांत की सचाई

विद्यार्थी ने स्कूल से लौट कर घर आया। वह बड़ा प्रसन्न था। मां ने प्रसन्नता का कारण पूछा। वह बोला—'मां आज स्कूल में मुझे पुरस्कार मिला है।' किस बात का पुरस्कार ? 'मास्टरजी ने परीक्षा लेते हुए पूछा—गाय के कितने पैर होते हैं ? सब इस सवाल पर अटक गए। सब ने कहा—दो। मैंने कहा—'तीन।' मास्टरजी बोले—'तुम्हारा उत्तर पूरा सही तो नहीं है, किन्तु तुम सच्चाई के निकट आ गए हो, इसलिए तुम्हें पुरस्कार मिलेगा।'

हमें भी पहले तीन तक पहुंच कर, फिर चार तक पहुंचना है। यह सचाई अनेकान्त की सचाई होगी। न साम्यवाद और न पूंजीवाद, न वैयक्तिकता और न सामुदायिकता—दोनों को मिलाएं, दोनों की अच्छाइयों को एकत्र करें, एक तीसरी प्रजाति बन जायेगी। न अस्तित्व और न नास्तित्व, किन्तु अस्तित्वनास्तित्व—यह तीसरा प्रकल्प है। आज पूरे विश्व को एक नये प्रकल्प की खोज है। मैं मानता हूं—यह तीन सप्ताह का चिन्तन-मंथन नए विकल्प की खोज का प्रयत्न है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राष्ट्रीय स्वयंसयेवक संघ के वरिष्ठ विचारक दत्तोपंत ठेंगड़ी का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा—'अनेकान्त पर कुछ कहा जाये, लिखा जाये। क्योंकि अब विश्व की जो व्यवस्था होगी, उसका आधार अनेकान्त ही बन सकता है।' बड़ी उदारता के साथ उन्होंने इस बात की चर्चा की। हम किसी एकांगी दृष्टिकोण में न जाएं। न इधर झुकें, न उधर झुकें किन्तु अनेकान्त के द्वारा सबको समन्वित कर नये मानव और नये विश्व की कल्पना करें। नया मानव और नया विश्व ही वर्तमान समस्या का समाधान बन सकता है।

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य महाप्रज्ञ की प्रमुख कृतियां

- मन के जीते जीत
- आभा मण्डल
- किसने कहा मन चंचल है
- जैन योग
- चेतना का ऊर्ध्वारोहण
- एकला चलो रे
- मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि
- अपने घर में
- एसो पंच णमोक्कारो
- मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता
- समस्या को देखना सीखें
- नया मानव : नया विश्व
- भिक्षु विचार दर्शन
- अर्हम्
- मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति
- समय के हस्ताक्षर
- आमंत्रण आरोग्य को
- महावीर की साधना का रहस्य
- घट-घट दीप जले
- अहिंसा तत्व दर्शन
- अहिंसा और शान्ति
- कर्मवाद
- संभव है समाधान
- मनन और मूल्यांकन
- जैन दर्शन और अनेकान्त
- शक्ति की साधना
- धर्म के सूत्र
- जैन दर्शन : मनन और मीमांसा

आदि-आदि

Jain Education International www.jainelibrary.org

नया मानव
नया विश्व

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org